श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

श्रीगौड़ीय–गीतिगुच्छ

संस्कृत, बंगला और हिन्दीके भक्तिमूलक
स्तव–स्तुतियों, कीर्तनपदों, प्रार्थनाओं
और आरतियों आदिका
अपूर्व सुन्दर–संग्रह

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी ॐविष्णुपाद
१०८ श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी–
चरणके अनुगृहीत

त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
द्वारा संग्रहीत एवं संपादित

प्रकाशक—
श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)

चतुर्थ संस्करण—सम्वत् २०५९
१५ मई २००३, श्रीनृसिंह चतुर्दशी

प्राप्ति स्थान—

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो–नवद्वीप, नदिया (प॰ बं॰)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ॰ प्र॰) दूरभाषः २५०२३३४
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प॰ बं॰)
४. श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ॰ प्र॰) दूरभाषः २४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ॰ प्र॰)
७. श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन (उ.प्र.) दूरभाष–२८१५६६८
८. श्रीदाऊजी गौड़ीय मठ, कैलास मार्ग, बल्देव, मथुरा (उ.प्र.)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता–४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, जिला–कूचबिहार
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, जिला–बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशवगोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग (प॰बं॰)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प॰ बं॰)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला–वर्द्धमान (प॰बं॰)
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो॰ वासुगाँव, जिला–कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गोरा हिल्स (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गा (कूचबिहार)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, चैतन्य एवेन्यु, दुर्गापुर (प॰ बं॰)
२१. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ॰ प्र॰)
२२. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
२३. श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ, बी ब्लाक, जनकपुरी, दिल्ली

प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पासे उन्हींके प्रीति-विधानके लिए उन्हींके द्वारा बंगला-भाषामें प्रकाशित "श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छ" का यह संक्षिप्त हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो रहा है। श्रीभगवन्नाम, रूप, गुण और लीलाके श्रवण, कीर्तन और स्मरण द्वारा ही भगवत्प्राप्ति होती है; विशेषतः कलियुगमें श्रीहरिनाम-संकीर्तन द्वारा ही सर्वार्थकी सिद्धि होती है—सभी शास्त्रोंने एक स्वरसे ऐसी घोषणा की है। श्रीकृष्ण-संकीर्तनके मूल प्रवर्तक कलियुग पावनावतारी स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने, 'कीर्तनीयः सदा हरिः'—इस मंत्रमें साधारणको दीक्षित होनेका उपदेश दिया है। श्रीमद्भागवतमें भी 'कलौ तद्धरिकीर्तनात्' आदि द्वारा कलियुगके लिए केवल 'हरिकीर्तन' को ही सर्वोपरि परमार्थप्रद बतलाया गया है।

प्रस्तुत श्रीगौड़ीय गीति-गुच्छमें महाजनों द्वारा रचित एवं गाये गये कीर्तन-पदोंको ही गुम्फित किया गया है। इसमें भक्त कवि समाजमें परम प्रसिद्ध श्रीलजयदेव गोस्वामी, श्रीविद्यापति, श्रीचंडीदास, श्रीलरूप गोस्वामी, श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीलनरोत्तम ठाकुर, श्रीलगोविन्ददास, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभृति श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके अतिरिक्त श्रीसूरदास, मीराबाई, जैसे अन्यान्य भक्त कवियोंके भी कीर्तनपद संग्रहीत हैं। इनमेंसे कोई भी प्राकृत कवि नहीं हैं। अतएव इनके पदोंकी तुलना अर्वाचीन ग्राम्य पदकर्ताओंके पदोंसे नहीं करनी चाहिए। इन दोनोंको एक समान समझना भारी भूल है।

श्रीहरिकीर्तन और बैठकी गाना-बजानारूप मनोरञ्जनमें आकाश-पातालका अन्तर है। इसको भलीभाँति समझ लेना चाहिए।

हमारे परमाराध्य श्रीश्रीलगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने सन् १९५७ ई. में श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छका बंगलाभाषामें प्रथम संस्करण प्रकाशित किया था। उनके अप्रकटलीलाविष्कारके पश्चात् समितिके वर्तमान

सभापति एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने इसके बहुत-से संस्करण प्रकाशित किए हैं। उन्हींकी प्रेरणा और उत्साहदानसे प्रेरित होकर तथा हिन्दी भाषी गौड़ीय वैष्णवोंके पुनः-पुनः अनुरोधसे संक्षिप्त हिन्दी-संस्करण प्रस्तुत किया गया। उक्त संस्करण पाठकोंको इतना रुचिकर प्रतीत हुआ कि वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। और अब यह दूसरा संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है। इस संस्करणमें पाठकोंके साधन-भजनके व्यापक हितमें कुछ और भी अधिक उपयोगी स्तव-स्तुतियाँ, कीर्तन-पदों एवं आरतियोंकी वृद्धि की गई है।

हिन्दी और बंगलामें विशेष अन्तर नहीं है। बंगला पदोंके अर्थ सरल-सुगम हैं, फिर भी बंगला-पदोंके आवश्यक शब्दोंका अर्थ पदोंके नीचे दिया गया है। संस्कृत पदोंका भावार्थ भी उसके नीचे दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने एवं प्रूफ-संशोधन आदि विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीमान ओमप्रकाश व्रजवासी एम. ए., एल. एल. बी., 'साहित्यरत्न', स्नेहास्पद—श्रीमान शुभानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान प्रेमानन्द ब्रह्मचारी, श्रीमान नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीमान परमेश्वरी ब्रह्मचारी, श्रीमान पुरन्दर ब्रह्मचारी, श्रीमान शुभकृष्ण ब्रह्मचारी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा सराहनीय एवं उल्लेख योग्य है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरधारी उनपर प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें—यही प्रार्थना है।

इस ग्रन्थके मुद्रण कार्यमें अत्यन्त शीघ्रताके कारण कुछ मुद्रा-कर प्रमादादि त्रुटि-विच्युतियोंका रहना सम्भव है। सुधी पाठकवृन्द उनका संशोधन पूर्वक पाठ करनेसे हम लोग आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इसका पाठ और कीर्त्तन कर परमार्थ-पथ पर अग्रसर हों—यही प्रर्थना है। अलमतिविस्तरेण—

परमाराध्य
श्रीश्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी
तिरोभाव-तिथि-पूजा-वासर
शुक्रवार, १२ आषाढ़,

श्रीगुरुवैष्णवकृपालेश-प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ. प्र.)

प्रस्तावना

तृतीय-संस्करण

यह बड़े हर्षका विषय है कि श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छ हिन्दी प्रथम एवं द्वितीय संस्करण इतना लोकप्रिय हुआ कि कुछ ही दिनोंमें सारी पुस्तकें वितरित हो गईं। भारत तथा विदेशोंके हिन्दी भाषी श्रद्धालु इसकी बहुत अधिक रूपमें माँग करने लगे। बहुतसे श्रद्धालुभक्तोंने अनुरोध किया कि बंगला पदों एवं संस्कृतके स्तव-स्तुतियों एवं पदोंका हिन्दी अनुवाद आवश्यक है। इसके बिना इन पदों एवं स्तव-स्तुतियोंके गम्भीर भावोंको समझना बहुत ही कठिन है। बड़े-बड़े विद्वानोंके लिए भी उन भावोंको स्वयं समझना असंभव है। अतः उनके पुनः पुनः अनुरोधके कारण इस तृतीय संस्करणमें पाठकोंके साधन-भजनके व्यापक हितमें कुछ और भी स्तव-स्तुतियों एवं कीर्तनपदोंकी वृद्धि की गई है तथा साथ ही उनका भावार्थ भी दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, भावार्थ लिखने, प्रूफसंशोधन, कम्पूटर द्वारा कम्पोज आदि विविध सेवाकार्योंके लिए श्रीमान ओमप्रकाश ब्रजवासी एम.ए.एल.एल.बी. साहित्यरत्न, श्रीमान परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी, श्रीमान हरिप्रियदास ब्रह्मचारी, श्रीमान पुरन्दरदास ब्रह्मचारी, श्रीमती शान्ति देवी आदिकी सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय व उल्लेखनीय है। श्रीगुरु-गौराङ्ग-गिरिधारी इनपर प्रचुर कृपा आशीर्वाद वर्षण करें, यह मेरी प्रार्थना है।

यह संस्करण भी अत्यन्त शीघ्र प्रकाशित हुआ है। जिससे इसमें कुछ मुद्राकर प्रमाद आदि त्रुटि-विच्युतियोंका रहना संभव है। सुधी पाठकवृन्द द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम लोग आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इसका पाठ एवं कीर्तनकर परमार्थ-पथपर अग्रसर हों, यही प्रर्थना है।

परमाराध्य ॐविष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामीके
तिरोभाव तिथि-पूजा-वासर, शरदपूर्णिमा
सोमवार, ५ अक्टूबर १९९८ ई.

अलमतिविस्तरेण—
श्रीगुरुवैष्णवकृपालेश-प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

प्रस्तावना

चतुर्थ संस्करण

यह बड़े हर्षका विषय है कि श्रीगौड़ीय गीतिगुच्छ हिन्दी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संस्करण इतना लोकप्रिय हुआ कि कुछ ही दिनोंमें सारी पुस्तकें वितरित हो गईं। भारत तथा विदेशोंके हिन्दी–भाषी श्रद्धालु इसकी बहुत अधिक रूपमें माँग करने लगे। इस संस्करणमें पाठकोंके साधन–भजनके व्यापक हितमें कुछ और भी स्तव–स्तुतियों एवं कीर्तनपदोंकी वृद्धि की गई है तथा साथ ही उनका भावार्थ भी दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने, भावार्थ लिखने, प्रूफसंशोधन, कम्पूटर द्वारा कंपोज आदि विविध सेवा कार्योंके लिए श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, श्रीमान् प्रेमानन्ददास ब्रह्मचारी, श्रीमान् परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी, श्रीमान् माधवप्रियदास ब्रह्मचारी, श्रीमान् कृष्णकृपादास ब्रह्मचारी, श्रीमान् अमलकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीमान् सुबलसखा दास ब्रह्मचारी, श्रीमान् उत्तमकृष्णदास ब्रह्मचारी आदिकी सेवा प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय व उल्लेखनीय है। श्रीगुरु–गौराङ्ग–गान्धर्विका–गिरिधारी इनपर प्रचुर कृपा आशीर्वाद वर्षण करें, यह मेरी प्रार्थना है।

यह संस्करण भी अत्यन्त शीघ्र प्रकाशित हुआ है, जिससे इसमें कुछ मुद्राकर प्रमाद आदि त्रुटि–विच्युतियोंका रहना संभव है। सुधी पाठकवृन्द द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम लोग आनन्दित होंगे।

परमार्थ प्राप्तिके इच्छुक श्रद्धालुजन इसका पाठ एवं कीर्तनकर परमार्थ–पथपर अग्रसर हों, यही प्रर्थना है।

अलमतिविस्तरेण—

श्रीगदाधर पण्डितजीका आविर्भाव
बृहस्पतिवार, १ मई २००३ ई.

श्रीगुरुवैष्णवकृपालेश–प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

झ

ठ

त

द

न

पृष्ठ संख्या

प

ब

भ

म

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ

मंगलाचरण

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपद-कमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण-रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजन सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवम्
श्रीराधा-कृष्ण-पादान् सहगण-ललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च।।१।।

श्रीगुरु-प्रणामः

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
नमः ॐ विष्णुपादाय आचार्य-सिंह-रूपिणे।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव इति नामिने।।
अतिमर्त्य-चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च-पालिने।
जीव-दुःखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने।।
गौराश्रय-विग्रहाय कृष्णकामैक-चारिणे।
रूपानुग-प्रवराय विनोदेति-स्वरूपिणे।।
प्रभुपादान्तरङ्गाय सर्वसद्गुणशालिने।
मायावाद-तमोघ्नाय वेदान्तार्थविदे नमः।।१।।

श्रीश्रीगुरुदेव—श्रीदीक्षा-गुरु और भजन-शिक्षा गुरुदेव, परम-परात्पर प्रभृति गुरुवर्ग अर्थात् श्रीआनन्द तीर्थ-माधवेन्द्र पुरी प्रमुख गुरुवर्ग, चतुर्युगोद्भूत वैष्णवों, ज्येष्ठ भ्राता श्रीसनातन गोस्वामी—निजगण श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि सहित श्रीरूप गोस्वामी, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु और परिजनों सहित श्रीकृष्ण चैतन्यदेव तथा सखीमञ्जरीगण सहित श्रीललिता-विशाखा-युक्त श्रीराधाकृष्ण—इनके श्रीचरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ।।१।।

अज्ञानरूपी अंधकारको ज्ञानाञ्जनरूपी शलाकासे आँखोंको खोलनेवाले श्रीगुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम है।।

अतिमर्त्य चरित्र सम्पन्न, अपने आश्रितोंके प्रति अत्यन्त वात्सल्य भावसे पालन करने वाले, कृष्ण–विमुख जीवोंके दुःखसे सदा द्रवित चित्तवाले तथा श्रीनाम–प्रेम वितरण करने वाले आचार्यसिंह जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुवरको प्रणाम करता हूँ। जो महाप्रभुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करनेवालोंके लिए आश्रय विग्रहस्वरूप हैं, जो कृष्णकी इच्छापूर्तिके लिए आचरण करते हैं, जो रूपानुगोंमें श्रेष्ठ हैं, जो प्रभुपादके अन्तरंग पार्षद हैं, जो सभी सद्‌गुणोंसे सम्पन्न हैं, जो मायावादरूप अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, जो वेदान्तविद हैं तथा स्वरूपतः जो विनोदमञ्जरी हैं, उनके श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम है।।२।।

श्रील प्रभुपाद–वन्दना

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्ण–प्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त–सरस्वतीति–नामिने।।
श्रीवार्षभानवी–देवी–दयिताय कृपाब्धये।
कृष्ण–सम्बन्ध–विज्ञान–दायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्य्योज्ज्वल–प्रेमाढ्य– श्रीरूपानुग–भक्तिद।
श्रीगौर–करुणा–शक्ति–विग्रहाय नमोऽस्तु ते।।
नमस्ते गौर–वाणी–श्रीमूर्तये दीन–तारिणे।
रूपानुग–विरुद्धाऽपसिद्धान्त–ध्वान्त–हारिणे।।३।।

कृष्ण–सम्बन्ध–विज्ञानके दाता, कृष्णके प्रिय, श्रीवार्षभानवीदेवी राधिकाके प्रियपात्र, इस भूतलपर अवतीर्ण ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी नामक कृपा–वारिधि प्रभुकी वन्दना करता हूँ। जो माधुर्यके द्वारा उज्ज्वलीकृत, प्रेमपूर्ण, श्रीरूपानुग–भक्ति–दानकारी तथा श्रीगौरांग–महाप्रभुकी करुणा–शक्तिके विग्रह–स्वरूप हैं, उन सरस्वती ठाकुरको मैं पुनः–पुनः नमस्कार करता हूँ। जो गौर–वाणीके श्रीमूर्ति–स्वरूप, दीनजनोंके त्राण–कर्त्ता और श्रीरूपानुग विचारके विरुद्ध कुसिद्धान्त–रूप अन्धकारका विनाश करने वाले हैं, उन श्रील सरस्वती ठाकुरको नमस्कार करता हूँ।।३।।

श्रील गौरकिशोर–वन्दना

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्य मूर्त्तये।
विप्रलम्भ–रसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।४।।

श्रील भक्तिविनोद–वन्दना

नमो भक्ति–विनोदाय सच्चिदानन्द–नामिने।
गौर–शक्ति–स्वरूपाय रूपानुग–वराय ते।।५।।

श्रील जगन्नाथ–वन्दना

गौराविर्भाव–भूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जन–प्रियः।
वैष्णव–सार्वभौम–श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।६।।

श्रीवैष्णव–वन्दना

वाञ्छा–कल्पतरुभ्यश्च कृपा–सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।७।।

श्रीमन्महाप्रभु–वन्दना

नमो महावदान्याय कृष्ण–प्रेम–प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्ण–चैतन्य–नाम्ने गौरत्विषे नमः।।८।।

जो साक्षात् मूर्त्तिमन्त वैराग्य और विप्रलम्भ–रसके समुद्रस्वरूप हैं, उन श्रीगौरकिशोरके चरण–कमलोंमें नमस्कार है।।४।।

जो रूपानुग भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुके शक्तिस्वरूप हैं, उन सच्चिदानन्द श्रीभक्तिविनोदको नमस्कार करता हूँ।।५।।

जो सज्जनोंके प्रिय और श्रीगौरसुन्दरकी आविर्भाव–भूमिके निर्देशक हैं, उन वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथको नमस्कार है।।६।।

जो वांछा–कल्पतरु, कृपाके समुद्र तुल्य और पतितपावन हैं, उन वैष्णवोंको पुनः–पुनः नमस्कार करता हूँ।।७।।

जो देव–दुर्लभ, कृष्ण–प्रेम प्रदाता, परम करुणामय, श्रीकृष्ण चैतन्य नामधारी और गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं; उन्हीं (श्रीराधा–द्युति–सुवलित) गौर–कान्तिमय गौराङ्ग–महाप्रभुको नमस्कार है।।८।।

श्रीकृष्ण-प्रणामः

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तु ते।।९।।

श्रीराधा-प्रणामः

तप्तकाञ्चनगौराङ्गि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।१०।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणामः

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्द-मतेर्गती।
मत्सर्वस्व पदाम्भोजौ राधा-मदनमोहनौ।।११।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणामः

दीव्यद्-वृन्दारण्य-कल्पद्रुमाधः श्रीमद्रत्नागार-सिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्द-देवौ प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।१२।।

हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! हे जगत्पते! हे गोपेश! हे गोपीकान्त! हे राधावल्लभ! श्रीकृष्ण! प्रभो! आपके लिए मेरा कोटिशः प्रणाम है।।९।।

हे तप्तकाञ्चनगौराङ्गि! हे वृन्दावनेश्वरि! हे वृषभानुनन्दिनि! हे हरिप्रिये! हे देवि! श्रीमती राधिके! मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।।१०।।

श्रीराधामदनमोहनकी जय हो, अर्थात् वे दोनों सर्वदा सर्वोत्कर्षके सहित विराजमान रहें, क्योंकि वे दोनों परमदयालु हैं, मुझ पंगु अर्थात् दूसरे स्थानमें जानेकी शक्तिसे रहित मन्दमति अर्थात् मन्दबुद्धिके भी, अज्ञानी एवं वृद्ध होनेके नाते, जो गति अर्थात् रक्षक हैं, तथा जिन दोनोंके श्रीचरण-कमल मेरे सर्वस्व हैं, मैं उनकी वन्दना करता हूँ।।११।।

परमरमणीय श्रीवृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे दिव्यातिदिव्य रत्नोंके द्वारा निर्मित भवनमें, मणिमय सिंहासनपर विराजमान, अपनी अतिशय प्रिय श्रीललिता-विशाखा आदि सखियोंके द्वारा प्रतिक्षण सेवित श्रीमती राधिका एवं श्रीमान् गोविन्ददेवका मैं स्मरण करता हूँ।।१२।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव–प्रणामः

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवट–तटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।१३।।

श्रीतुलसी–प्रणामः

वृन्दायै तुलसी देव्यै प्रियायै केशवस्य च।
कृष्णभक्ति–प्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।१४।।

श्रीपञ्चतत्त्व–प्रणामः

पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्।।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुनित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि–गौरभक्तवृन्द।।१५।।

महामन्त्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

वे श्रीश्रीराधागोपीनाथजी हमारे कल्याणके लिए सर्वदा विराजमान रहें, जो रास सम्बन्धी रसका आरम्भ करनेवाले हैं, अतएव वंशीवटके मूलदेशमें स्थित हैं, अतएव अपनी वंशीध्वनिके द्वारा गोपकिशोरियोंको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।।१३।।

वृन्दा एवं सत्यवती नामक तुलसीदेवीके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है तथा श्रीकृष्णकी प्रियतमा तुलसीदेवीके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। हे कृष्णभक्तिको देने वाली तुलसीदेवि! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।।१४।।

भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त, भक्तशक्ति—इन पञ्चतत्त्वात्मक श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ।।१५।।

श्रीगुरुदेव-प्रणामः

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपं
रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्।
राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिकामाधवाशां
प्राप्तो यस्य प्रथितकृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि।।१।।

नमस्ते गुरुदेवाय सर्वसिद्धिप्रदायिने।
सर्वमङ्गलरूपाय सर्वानन्दविधायिने।।२।।

विज्ञप्ति

हे श्रीगुरो ज्ञानद दीनबन्धो
स्वानन्ददातः करुणैकसिन्धो।
वृन्दावनासीन हितावतार
प्रसीद राधाप्रणयप्रचार।।१।।

त्रायस्व भो जगन्नाथ गुरो संसारवह्निना।
दग्धं मां कालदष्टं च त्वामहं शरणं गतः।।२।।

श्रीगुरुरूप सखी-प्रणामः

राधासन्मुख-संसक्तिं सखीसंग-निवासिनीम्।
तामहं सततं वन्दे गुरुरूपां परां सखीम्।।

श्रीमन्महाप्रभु-विज्ञप्ति

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्ब सन्दीपितः
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः।।१।।

संसारदुःखजलधौ पतितस्य काम-
क्रोधादिनक्रमकरैः कवलीकृतस्य।
दुर्वासना-निगडितस्य निराश्रयस्य
चैतन्यचन्द्र मम देहि पदावलम्बम्।।२।।

चैतन्यचन्द्र मम हृत्कुमुदं विकाश्य
हृद्यं विधेहि निज-चिन्तन-भृङ्गरङ्गैः।
किञ्चापराध-तिमिरं निबिडं विधूय
पादामृतं सदय पायय दुर्गतं माम्।।३।।

श्रीनित्यानन्दप्रभु-प्रणामः

सङ्कर्षणः कारणतोयशायी
गर्भोदशायी च पयोब्धिशायी।
शेषश्च यस्यांशकलाः स नित्या-
नन्दाख्यरामः शरणं ममास्तु।।१।।

नित्यानन्द! नमस्तुभ्यं प्रेमानन्द-प्रदायिने।
कलौ कल्मष-नाशाय जाह्नवापतये नमः।।२।।

श्रीगौरनित्यानन्द-प्रणामः

आजानुलम्बित-भुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ।।

श्रीकृष्ण-ध्यानम्

बर्हापीडाभिरामं मृगमद-तिलकं कुण्डलाक्रान्तगण्डं
कञ्जाक्षं कम्बुकण्ठं स्मित-सुभग-मुखं स्वाधरे न्यस्तवेणुम्।
श्यामं शान्तं त्रिभंगं रविकर-वसनं भूषितं वैजयन्त्या
वन्दे वृन्दावनस्थं युवतिशतवृतं ब्रह्म गोपाल-वेशम्।।१।।
कस्तुरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वर-मौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्री-परिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः।।२।।
वंशीन्यस्तास्यचन्द्रं स्मितयुतमतुलं पीतवस्त्रं वरेण्यं
कञ्जाक्षं सर्वदक्षं नवघनसदृशं वर्हचूडं शरण्यम्।
त्रैभंगर्भङ्गिमांगं व्रजयुवतियुतं ध्वस्तकेश्यादिशूरं
वन्दे श्रीनन्दसूनुं मधुररस-तनुं धुर्य-माधुर्य-पूरम्।।३।।
फुल्लेन्दीवर-कान्तिमिन्दु-वदनं बर्हावतंसप्रियं
श्रीवत्साङ्कमुदार-कौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम्।
गोपीनां नयनोत्पलार्चित-तनुं गोगोप-संघावृतं
गोविन्दं कलवेणु-वादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे।।४।।

श्रीकृष्ण-प्रणामः

नमो नलिननेत्राय वेणुवाद्यविनोदिने।
राधाधरसुधापानशालिने वनमालिने।।१।।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।२।।

श्रीराधिका-ध्यानम्

अमलकमलकान्तिं नीलवस्त्रां सुकेशीं
शशधरसमवक्त्रां खञ्जनाक्षीं मनोज्ञाम्।
स्तनयुगगतमुक्तादामदीप्तां किशोरीं
व्रजपतिसुतकान्तां राधिकामाश्रयेऽहम्।।

विज्ञप्ति

हा! देवि काकुभरगद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके तव गणे गणनां विधेहि।।१।।

राधे वृन्दावनाधीशे करुणामृतवाहिनि।
कृपया निजपादाब्जदास्यं मह्यं प्रदीयताम्।।२।।

श्रीयुगलकिशोर-ध्यानम्

कनक-जलद-गात्रौ नीलशोणाब्जनेत्रौ
मृगमदवर-भालौ मालती-कुन्दमालौ।
तरल-तरुण-वेशौ नीलपीताम्बरेशौ
स्मर निभृत-निकुञ्जे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।१।।

अङ्गश्यामलिमच्छटाभिरभितो मन्दीकृतेन्दीवरं
जाड्यञ्जागुडरोचिषां विदधतां पट्टाम्बरस्य श्रिया।
वृन्दारण्य-निवासिनं हृदि लसद्दामाभिरामोदरं
राधास्कन्ध-निवेशितोज्ज्वल-भुजं ध्यायेम दामोदरम्।।२।।

श्रीनवद्वीपधाम–प्रणामः

नवीन–श्रीभक्तिं नव–कनक–गौराकृति–पतिं
नवारण्य–श्रेणी–नव–सुरसरिद्‌वात–वलितम्।
नवीन–श्रीराधाहरि–रसमयोत्कीर्तन–विधिं
नवद्वीपं वन्दे नव–करुण–माद्यन्नव–रुचिम्।।

श्रीवृन्दावनधाम–प्रणामः

जयति जयति वृन्दारण्यमेतन्मुरारेः
प्रियतममतिसाधुस्वान्तवैकुण्ठवासात्।
रमयति स सदा गाः पालयन् यत्र गोपीः
स्वरितमधुरवेणुर्वर्धयन् प्रेम रासे।।

श्रीपौर्णमासीदेवी–प्रणामः

राधेश–केलि–प्रभुता–विनोद–
विन्यास–विज्ञां व्रज–वन्दितांघ्रिम्।
कृपालुताद्याखिल–विश्ववन्द्यां
श्रीपौर्णमासीं शिरसा नमामि।।

श्रीगोवर्धन–प्रणामः

गोवर्धनो जयति शैलकुलाधिराजो
यो गोपिकाभिरुदितो हरिदासवर्यः।
कृष्णेन शक्रमखभङ्गकृतार्चितो यः
सप्ताहमस्य करपद्मतलेऽप्यवात्सीत्।।१।।
सप्ताहमेवाच्युत–हस्त–पङ्कजे
भृङ्गायमानं फलमूल – कन्दरैः।
संसेव्यमानं हरिमात्मवृन्दकै–
र्गोवर्धनाद्रिं शिरसा नमामि।।२।।

श्रीगोपीश्वर–शिव–प्रणामः

वृन्दावनावनिपते! जय सोम! सोममौले।
सनक – सनन्दन – सनातन – नारदेड्य।
गोपीश्वर! व्रजविलासि–युगांघ्रि–पद्मे
प्रेम प्रयच्छ निरुपाधि नमो नमस्ते।।

श्रीयमुना–प्रणामः

चिदानन्दभानोः सदा नन्दसूनोः
　　　　परप्रेमपात्री　　　द्रवब्रह्मगात्री।
अघानां लवित्री जगत्क्षेमधात्री
　　　　पवित्रीक्रियान्नो　　वपुर्मित्रपुत्री।।१।।

गंगादि–तीर्थ–परिषेवित–पादपद्मां
　　　　गोलोक–सौख्यरस–पूरमहिं महिम्ना।
आप्लाविताखिल–सुधासु–जलां सुखाब्धौ
　　　　राधामुकुन्द–मुदितां यमुनां नमामि।।२।।

श्रीव्रजवासिवृन्द–प्रणामः

मुदा यत्र ब्रह्मा तृणनिकर–गुल्मादिषु परं
　　　　सदा कांक्षन् जन्मार्पित–विविध–कर्माप्यनुदिनम्।
क्रमाद् ये तत्रैव व्रजभुवि वसन्ति प्रियजनाः
　　　　मया ते ते वन्द्याः परमविनयाः पुण्यखचिताः।।

श्रीनृसिंह–प्रणामः

नमस्ते नरसिंहाय प्रह्लादाह्लाद–दायिने।
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटङ्क–नखालये।।१।।

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे।।२।।

इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहो नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।।३।।

जय–ध्वनि

श्रीश्रीगुरु–गौरांग–गान्धर्विका–गिरिधारी–राधा विनोद बिहारीजीकी जय (उसके पश्चात् अपने–अपने श्रीगुरुदेवका नाम उच्चारण करते हुए जय देनी चाहिए)।

जय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी जय।

जय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी जय।

जय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस बाबाजी श्रीश्रील गौरकिशोरदास गोस्वामी महाराजकी जय।

जय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी जय।

जय नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद वैष्णवसार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी जय।

जय श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुकी जय।

जय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी जय।

जय श्रील नरोत्तम–श्रीनिवास–श्रीश्यामानन्द प्रभुत्रयकी जय।

जय श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुकी जय।

जय श्रीरूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्रीजीव, गोपाल भट्ट दासरघुनाथ षड़गोस्वामी प्रभुकी जय।

जय श्रीस्वरूप दामोदर–राय रामानन्दादि श्रीगौरपार्षदवृन्दकी जय।

जय श्रीनामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुरकी जय।

प्रेमसे कहो श्रीकृष्ण चैतन्य–प्रभुनित्यानन्द–श्रीअद्वैत–गदाधार–श्रीवासादि श्रीगौरभक्त–वृन्दकी जय। श्रीअन्तर्द्वीप मायापुर, सीमन्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप, कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, जन्हुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप, रुद्रद्वीपात्मक श्रीनवद्वीप धामकी जय। श्रीश्रीराधाकृष्ण गोपगोपी–गो–गोवर्धन–द्वादश वनात्मक श्रीब्रजमण्डलकी जय।

द्वादश उपवनकी जय। श्रीश्यामकुण्ड–राधाकुण्ड–यमुना–गंगा–तुलसी–भक्तिदेवीकी जय। श्रीजगन्नाथ–बलदेव–सुभद्राजीकी जय। भक्तप्रवर श्रीप्रह्लाद महाराजकी जय। चारों धामकी जय। चारों सम्प्रदायोंकी जय। चारों आचार्योंकी जय। आकर मठराज श्रीचैतन्य मठकी जय। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी जय। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ और अन्यान्य शाखा मठसमूहकी जय। श्रीहरिनाम सङ्कीर्तनकी जय। अनन्त कोटि वैष्णववृन्दकी जय। समागत भक्तवृन्दकी जय। श्रीगौर प्रेमानन्दे हरि हरि बोल।

श्रीनाम–वन्दना

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे–
विरमित–निजधर्म–ध्यान–पूजादि–यत्नम्।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्,
परमममृतमेकं जीवनं भूषणं मे।।
मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां
सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर! नरमात्रं तारयेत्
कृष्णनाम।।

श्रीगुरु–परम्परा

कृष्ण हइते चतुर्मुख, हय कृष्ण सेवोन्मुख,
ब्रह्मा हइते नारदेर मति।
नारद हइते व्यास, मध्व कहे व्यासदास,
पूर्णप्रज्ञ पद्मनाभ–गति।।
नृहरि माधव वंशे, अक्षोभ्य–परमहंसे,
शिष्य बलि' अङ्गीकार करे।
अक्षोभ्येर शिष्य जय– तीर्थ नामे परिचय,
ताँर दास्ये ज्ञानसिन्धु तरे।।
ताँहा हइते दयानिधि, ताँर दास विद्यानिधि,
राजेन्द्र हइल ताँहा हइते।
ताँहार किङ्कर जय– धर्म नामे परिचय,
परम्परा जान भाल मते।।
जयधर्म दास्ये ख्याति, श्रीपुरुषोत्तम यति,
ताँहा हइते ब्रह्मण्यतीर्थ सूरि।
व्यासतीर्थ ताँर दास, लक्ष्मीपति व्यासदास,
ताँहा हइते माधवेन्द्र पुरी।।

माधवेन्द्रपुरीवर, शिष्यवर श्रीईश्वर,
नित्यानन्द श्रीअद्वैत विभु।
ईश्वरपुरीके धन्य, करिलेन श्रीचैतन्य,
जगद्‌गुरु गौर महाप्रभु।।
महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य,
रूपानुग जनेर जीवन।
विश्वम्भर प्रियङ्कर, श्रीस्वरूप–दामोदर,
श्रीगोस्वामी रूप–सनातन।।
रूपप्रिय महाजन, जीव रघुनाथ हन,
ताँर प्रिय कवि कृष्णदास।
कृष्णदास प्रियवर, नरोत्तम सेवापर,
जाँर पद विश्वनाथ आश।।
विश्वनाथ भक्तसाथ, बलदेव जगन्नाथ,
ताँर प्रिय श्रीभक्तिविनोद।
महाभागवतवर, श्रीगौरकिशोरवर,
हरि भजनेते जाँर मोद।।
श्रीवार्षभानवी–वरा, सदा सेव्य–सेवा–परा,
ताँहार दयितदास नाम।
प्रभुपाद–अन्तरंग, श्रीस्वरूप–रूपानुग,
श्रीकेशव भक्ति प्रज्ञान।।
गौड़ीय–वेदान्तवेत्ता, मायावाद–तमोहन्ता,
गौरवाणी प्रचाराचार–धाम।।
केशव प्रिय महाजन वामन नारायण हन,
गौरवाणी जाँदेर प्राण–धन।
एइ सब हरिजन, गौराङ्गेर निजजन,
ताँदेर उच्छिष्टे मोर काम।।

अनुवाद—श्रीकृष्ण मूल जगद्‌गुरु हैं। उनसे चतुर्मुख ब्रह्माके हृदयमें शुद्ध ज्ञान-विज्ञानरूप भक्तिकी धारा प्रवाहित हुई। पुनः उनसे श्रीनारद, श्रीवेदव्यासको क्रमशः यह विद्या प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वेदव्यासजीकी परम्परामें क्रमानुसार श्रीमध्वाचार्य, श्रीपद्मनाभ, श्रीनृहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ्य, श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीदयानिधि, श्रीविद्यानिधि, श्रीराजेन्द्र, श्रीजयधर्म, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थ, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, श्रीव्यासतीर्थ तथा श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ आचार्य हुए। पुनः लक्ष्मीपतिके शिष्य श्रीमाधवेन्द्रपुरी थे, उनके शिष्य श्रीईश्वरपुरी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्य उनके अनुगत हुए। जगद्‌गुरु श्रीगौरांग महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीका चरणाश्रयकर उनको धन्य किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय श्रीस्वरूप दामोदर हुए, उनके प्रिय श्रीरूप व सनातन गोस्वामी हुए। श्रीजीव व रघुनाथदास गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। उन दोनोंके प्रिय पात्र श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी हुए। श्रील कविराज गोस्वामीके प्रिय नरोत्तम एवं उनके प्रिय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर हुए। उनके कृपापात्र श्रीबलदेव विद्याभूषण तथा उनके प्रिय सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज हुए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके प्रिय महाभागवत श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी तथा उनके प्रियपात्र श्रीवार्षभानवी-दयितदास जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीने सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित व प्रचारित शुद्धाभक्ति (प्रेमाभक्ति) की धारा प्रवाहित की है। इन्हीं सरस्वती ठाकुरके प्रियतम कृपापात्रोंमें स्वरूप-रूपानुगवर जगद्‌गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं। वे गौड़ीयवेदान्तविद्, मायावादरूपी अन्धकारका हरण करनेवाले और गौरवाणीके प्रचारक हैं। उनके प्रिय श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज व श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज हैं जिन्होंने गौरवाणीको ही अपने प्राणस्वरूप बनाया है। ये सभी श्रीहरि-श्रीगौरसुन्दरके प्रिय परिकर हैं। हम उन्हींके उच्छिष्टकी कामना करते हैं।।

श्रीगुर्वष्टकम्

संसार-दावानल-लीढ़-लोक, त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याण-गुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।१।।
महाप्रभोः कीर्त्तन-नृत्य-गीत, वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन।
रोमाञ्च-कम्पाश्रु-तरङ्ग-भाजो, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।२।।
श्रीविग्रहाराधन-नित्य नाना, शृङ्गार तन्मन्दिर-मार्ज्जनादौ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।३।।
चतुर्विध-श्रीभगवत्प्रसाद, स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।४।।
श्रीराधिका-माधवयोरपार, माधुर्य्य-लीला-गुण-रूप-नाम्नाम्।
प्रतिक्षणास्वादन लोलुपस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।५।।

संसाररूपी-दावानलसे सन्तप्त लोगोंकी रक्षाके लिए जो करुणाके घने मेघस्वरूप होकर कृपावारि वर्षण करते हैं, मैं उन्हीं कल्याणगुणनिधि श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ।।१।।

सङ्कीर्त्तन, नृत्य, गीत तथा वाद्यादिके द्वारा उन्मत्तचित्त श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमरसमें जिनके रोमाञ्च, कम्प और अश्रु तरङ्ग उद्गत होते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ।।२।।

जो श्रीभगवद्विग्रहकी नित्य-सेवा, शृङ्गाररसोद्दीपक तरह-तरहकी वेश रचना और श्रीमन्दिरके मार्जन आदि सेवाओंमें स्वयं नियुक्त रहते हैं तथा (अनुगत) भक्तजनको नियुक्त करते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ।।३।।

जो श्रीकृष्णभक्त-वृन्दको चर्व्य, चुष्य, लेह्य और पेय-इन चतुर्विध रस-समन्वित सुस्वादु महाप्रसादान्न द्वारा परितृप्त कर (अर्थात् प्रसाद-सेवनके द्वारा प्रपञ्चनाश और प्रेमानन्दका उदय करवाकर) स्वयं तृप्ति लाभ करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ।।४।।

जो राधामाधवके अनन्त माधुर्यमय नाम, रूप, गुण और लीला समूहका आस्वादन करनेके लिए सर्वदा लुब्धचित्त हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ।।५।।

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै, यां यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।६।।
साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै, रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।७।।
यस्य प्रसादाद्भगवत्प्रसादोः यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्।।८।।
श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चै-र्ब्राह्मे मुहूर्त्ते पठति प्रयत्नात्।
यस्तेन वृन्दावन-नाथ साक्षात् सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव।।९।।

निकुञ्ज बिहारी 'ब्रज-युव-द्वन्द्व' के रतिक्रीड़ा-साधनके निमित्त सखियाँ जिन युक्तियोंका अवलम्बन करती हैं, उस विषयमें अति निपुण होनेके कारण जो उनके अतिशय प्रिय हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ।।६।।

निखिल शास्त्रोंने जिनका साक्षात् हरिके अभिन्न-विग्रहरूपसे गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकारसे चिन्ता किया करते हैं, तथापि जो प्रभु भगवानके एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्के अचिन्त्य-भेदाभेद-प्रकाश-विग्रह) श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ।।७।।

एकमात्र जिनकी कृपा द्वारा ही भगवद्-अनुग्रह लाभ होता है, जिनके अप्रसन्न होनेसे जीवोंका कहीं भी निस्तार नहीं है, मैं त्रिसन्ध्या उन्हीं श्रीगुरुदेवकी कीर्त्ति समूहका स्तव और ध्यान करते-करते उनके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ।।८।।

जो व्यक्ति इस गुरुदेवाष्टकका ब्राह्म मुहूर्त्तमें (अरुणोदयसे चार दण्ड पहले) अतिशय यत्नके साथ उच्चस्वरसे पाठ करते हैं, वे वस्तु-सिद्धिके समय वृन्दावनचन्द्रका सेवाधिकार प्राप्त करते हैं।।९।।

श्रीगुरु महिमा

श्रीगुरुचरण-पद्म, केवल भकति-सद्म,
वन्दों मुँइ सावधान मते।
जाँहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाई,
कृष्ण प्राप्ति हय जाँहा हइते।।
गुरुमुखपद्म वाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य,
आर ना करिह मने आशा।
श्रीगुरुचरणे रति, एई से उत्तमा गति,
जे प्रसादे पूरे सर्व आशा।।
चक्षुदान दिला जेई, जन्मे-जन्मे प्रभु सेई,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेमभक्ति जाँहा हइते, अविद्या विनाश जाते,
वेदे गाय जाँहार चरित।।
श्रीगुरु करुणा-सिन्धु, अधम जनार-बन्धु,
लोकनाथ लोकेर जीवन।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
तुया पदे लईनु शरण।।

अनुवाद—भक्तिके एकमात्र आश्रयस्वरूप श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी सावधानीपूर्वक अर्थात् गुरु-अवज्ञारूप नामापराधसे बचते हुए प्रीतिपूर्वक वन्दना करता हूँ। भाइयो! उन्हींकी कृपासे इस भवसागरको पार किया जा सकता है तथा उन्हींकी कृपासे व्रजमें श्रीराधाकृष्णकी प्रेममयी सेवाकी प्राप्ति भी होती है। श्रीगुरुदेवके मुख निःसृत उपदेशोंको ही हृदयमें धारण करना चाहिए, इसके अतिरिक्त किसीके ऊपर आशा नहीं रखनी चाहिए; क्योंकि उनके उपदेशोंके द्वारा ही उत्तम गति प्राप्त होती है। श्रीगुरुके चरणकमलोंमें रति हो जानेपर समस्त प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो दिव्यचक्षु प्रदानकर हृदयकी अज्ञानतारूपी अन्धकारका विनाश करते हैं, दिव्य ज्ञानका प्रकाशकर हृदयमें प्रेमाभक्तिको उदित कराते हैं, स्वयं वेद भी जिनके अलौकिक चरित्रका गुणगान करते हैं, वे ही मेरे जन्म-जन्मान्तरोंके प्रभु हैं। श्रीगुरुदेव करुणाके सागर हैं, अधमजनोंके परमबन्धु हैं तथा जगतके जीवनस्वरूप हैं। हे प्रभो! आप मुझपर कृपाकर अपने

चरणोंकी छाया प्रदान कीजिए। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

श्रीगुरु कृपा प्रार्थना

गुरुदेव!
कृपाबिन्दु दिया, करो एई दासे,
तृणापेक्षा अति हीन।
सकल सहने, बल दिया कर,
निज माने स्पृहाहीन।।
सकले सम्मान, करिते शकति,
देह नाथ! यथायथ।
तबे तो गाइबो, हरिनाम सुखे,
अपराध हबे हत।।
कबे हेन कृपा, लभिया ए जन,
कृतार्थ हईबे नाथ।
शक्ति-बुद्धि हीन, आमि अति दीन,
कर मोरे आत्मसात।।
योग्यता बिचारे, किछु नाहि पाई,
तोमार करुणा सार।
करुणा ना हइले, काँदिया काँदिया,
प्राण ना राखिबो आर।।

अनुवाद—हे गुरुदेव! आप अपनी कृपाकी मात्र एक बूँद प्रदानकर अपने इस दासको तृणसे भी अधिक सुनीच बना दीजिए। आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिए कि मैं सब कुछ सहन कर सकूँ तथा अपने सम्मानकी स्पृहासे निर्मुक्त हो जाऊँ। हे नाथ! कृपाकर मुझे सबका यथायोग्य सम्मान करनेकी शक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं शुद्ध हरिनाम कीर्तन करता रहूँ तथा कीर्तनके प्रभावसे मेरे सारे अपराध नष्ट हो जायँ। हे नाथ! यह दीनजन कब आपकी ऐसी अहैतुकी कृपा प्राप्तकर कृतार्थ होगा? यद्यपि मैं शक्तिहीन, बुद्धिहीन तथा अत्यन्त दीन हूँ, फिर भी आप कृपापूर्वक मुझे आत्मसात (अंगीकार) कर लीजिए। हे नाथ! योग्यताका विचार करनेपर मैं स्वयंको सर्वथा इससे रहित पाता हूँ। इसलिए मुझे तो

एकमात्र आपकी करुणापर ही विश्वास है। यदि आपकी अहैतुकी करुणा न हुई, तो मैं रोते-रोते अपने प्राणोंका विसर्जन कर दूँगा।

n

गुरुदेव !

कबे मोर सेइ दिन हबे?

मन स्थिर करि', निर्जने बसिया, कृष्णनाम गा'बो जबे।
संसार-फुकार, काने ना पशिबे, देह रोग दूरे र'बे।।
'हरे कृष्ण' बलि', गाइते गाइते, नयने बहिबे लोर।
देहेते पुलक, उदित हइबे, प्रेमेते करिबे भोर।।
गद-गदवाणी, मुखे बाहिरिबे, काँपिबे शरीर मम।
घर्म्म मुहुर्मुहुः विवर्ण हइबे, स्तम्भित प्रलय-सम।।
निष्कपटे हेन, दशा कबे हबे, निरन्तर नाम गा'बो।
आवेशे रहिया, देहयात्रा करि', तोमार करुणा पा'बो।।

अनुवाद—हे गुरुदेव! मेरा ऐसा दिन कब आयेगा जब मैं निर्जन अर्थात् साधुसंगमें मनको स्थिरकर कृष्णनामका कीर्तन करूँगा, जिससे कि सांसारिक विषयवार्ता मेरे कानोंमें नहीं पहुँच पाएगी तथा मेरे शारीरिक रोग दूर हो जाएँगे। "हरे कृष्ण" महामंत्रका कीर्तन करते-करते प्रेममें आत्मविभोर होकर मेरा शरीर पुलकित हो जाएगा, मेरी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगेगी, हृदय गद्गद हो जानेके कारण मेरा कंठ भी अवरुद्ध हो जाएगा जिससे ठीक-ठीक शब्दोंका उच्चारण भी नहीं कर पाऊँगा, मेरा शरीर काँपने लगेगा, सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो जाएगा, शरीर भी विवर्ण हो जाएगा तथा मैं मूर्च्छित हो जाऊँगा। हे गुरुदेव! निष्कपट रूपसे (यथार्थतः) मेरी ऐसी दशा कब होगी जब मैं आपकी कृपा प्राप्तकर निरन्तर आवेशमें रहकर हरिनाम कीर्तन करते हुए समय व्यतीत करूँगा।

श्रीवैष्णव वन्दना

वृन्दावनवासी जत वैष्णवेर गण।
प्रथमे वन्दना करि सबार चरण।।

नीलाचलवासी जत महाप्रभुर गण।
भूमिते पड़िया वन्दों सबार चरण।।

नवद्वीपवासी जत महाप्रभुर भक्त।
सबार चरण वन्दों हइया अनुरक्त।।

महाप्रभुर भक्त जत गौड़देशे स्थिति।
सबार चरण वन्दों करिया प्रणति।।

जे देशे जे देशे बैसे गौरांगेर गण।
ऊर्ध्व बाहु करि बन्दों सबार चरण।।

हैयाछेन हइबेन प्रभुर जत दास।
सबार चरण बन्दों दन्ते करि' घास।।

ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने।
ए वेद पुराणे गुण गाय जेवा सुने।।

महाप्रभुर गण सब पतित पावन।
ताइ लोभे मुइ पापी लइनु शरण।।

वन्दना करिते मुइ कत शक्ति धरि।
तमो-बुद्धि-दोषे मुइ दम्भ मात्र करि।।

तथापि मूकेर भाग्य मनेर उल्लास।
दोष क्षमि' मो—अधमे कर निज दास।।

सर्ववांछा सिद्धि हय यमबन्ध छुटे।
जगते दुर्लभ हइञा प्रेमधन लुटे।।

मनेर वासना पूर्ण अचिराते हय।
देवकीनन्दन दास एइ लोभे कय।।

अनुवाद—सर्वप्रथम मैं वृन्दावनवासी समस्त वैष्णवोंकी चरणवन्दना करता हूँ। तत्पश्चात् नीलाचलमें वास करनेवाले महाप्रभुके भक्तोंकी साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम पूर्वक वन्दना करता हूँ। इसके अतिरिक्त नवद्वीपमें जितने भक्त निवास करते हैं, मैं अनुरक्त होकर उन सबके श्रीचरणोंकी भी वन्दना करता हूँ। महाप्रभुके गौड़ (बंगाल) देशमें रहने वाले भक्तोंकी प्रेमपूर्वक चरणवन्दना करता हूँ। इसके अतिरिक्त जिस किसी भी देशमें गौरचन्द्रके गण (भक्त) रहते हैं, मैं दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर दीनतापूर्वक सबकी चरण वन्दना करता हूँ। महाप्रभुके जितने भी भक्त हो चुके हैं, अभी वर्त्तमान हैं या

भविष्यमें होंगे, मैं दाँतोंमें तृण धारणकर अत्यन्त दीनतापूर्वक सबकी चरणवन्दना करता हूँ। महाप्रभुके एक-एक भक्त एक-एक ब्रह्माण्डका उद्धार करनेमें समर्थ हैं, वेद एवं पुराणोंमें वैष्णवोंकी ऐसी महिमाका गुणगान किया गया है। अतः जो व्यक्ति वैष्णवोंका गुणगान करता है या सुनता है तो उसका भी उद्धार हो जाता है। महाप्रभुके सभी भक्त पतितपावन हैं। इसी लोभसे मुझ जैसे पापीने भी उनके श्रीचरणोंमें शरण ग्रहण की है। मेरे जैसे तामसी बुद्धिवाले व्यक्तिके लिए उनकी अलौकिक महिमाका वर्णन भी सम्भव नहीं है, फिर भी मैं जो कुछ वर्णन कर रहा हूँ, उससे केवल मेरा दम्भ ही प्रकाशित होता है। तथापि मेरे जैसे मूक व्यक्तिका सौभाग्य ही है कि उनका गुणगान करनेसे मेरे मनमें उल्लास होता है। अतः हे प्रभु! आप मेरे दोषोंको क्षमाकर मुझ अधमको अपना दास बना लीजिए। क्योंकि यदि कोई वैष्णवोंकी शरणमें चला जाता है, तो उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, यमके बंधनसे (जन्म-मरणके चक्करसे) उसे छुटकारा मिल जाता है एवं जगतके लिए सुदुर्लभ होनेपर भी वह कृष्णप्रेमको प्राप्त कर लेता है। देवकीनन्दन दास इस आशासे यह सब वर्णन कर रहा है कि अतिशीघ्र ही उसके मनकी वासना भी पूर्ण हो जाएगी।

श्रीवैष्णव कृपा-प्रार्थना

ओहे!
वैष्णव ठाकुर, दयार सागर,
ए दासे करुणा करि'।
दिया पदछाया, शोध हे आमारे,
तोमार चरण धरि।।
छय वेग दमि', छय दोष शोधि,
छय गुण देह दासे।
छय सत्संग, देह हे आमारे,
बसेछि संगेर आशे।।
एकाकी आमार, नाहि पाय बल,
हरिनाम - सङ्कीर्त्तने।

तुमि कृपा करि, श्रद्धाबिन्दु दिया,
देह कृष्ण-नाम-धने।।
कृष्ण से तोमार, कृष्ण दिते पारो,
तोमार शकति आछे।
आमि त' कांगाल, कृष्ण कृष्ण बलि',
धाइ तव पाछे पाछे।।

(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

शोध=संशोधन करो, आमारे=मुझे, तोमार=तुम्हारे, छय वेग=वाणी, मन, क्रोध, जिह्वा, उदर और जननेन्द्रियका वेग। छय दोष=अधिक आहार, भक्ति-प्रतिकूल चेष्टा, प्रजल्प, भक्तिके नियमोंमें दुराग्रह अथवा अनाग्रह, कुसंग, भक्तिके अतिरिक्त दूसरे असत् मतवादोंको ग्रहण करनेकी तृष्णा।

छय गुण—भक्ति साधनमें उत्साह, निश्चयता, धैर्य, भक्तिपोषक कार्योंका अनुष्ठान, कुसंग त्याग, सदाचार या सद्वृत्ति।

छय सत्संग—प्रीति पूर्वक भक्तोंको आवश्यक वस्तु देना, उनके द्वारा दी गई वस्तुओंको ग्रहण करना, उनके समीप हृदयकी बातें व्यक्त करना, भक्ति रहस्यको सुनना, प्रसाद-सेवन करना और प्रसाद सेवन कराना।

अनुवाद—हे वैष्णव ठाकुर! आप तो दयाके सागर हैं। इस दासपर करुणा करके अपने श्रीचरणोंमें शरण देकर मेरे अनर्थ ग्रस्त हृदयको निर्मल कीजिए—मैं आपके श्रीचरणोंको पकड़कर प्रार्थना करता हूँ। आप कृपापूर्वक मेरे षड्वेगोंका दमन कीजिए तथा मेरे छः दोषोंको सुधारकर छः गुणोंको प्रदान कीजिए। हे वैष्णव ठाकुर! मुझे छः प्रकारका सत्संग प्रदान कीजिए। मैं सत्संगकी आशा लगाए बैठा हूँ। क्योंकि एकाकी हरिनाम संकीर्तन करना भी मेरे बस की बात नहीं है, अतः आप मुझे कृपाकर कृष्णनामरूपी धनके प्रति श्रद्धाकी एक बूँदमात्र प्रदान कीजिए। क्योंकि श्रीकृष्ण आपके हृदयके धन हैं, अतः आप कृष्णभक्ति प्रदान करनेमें समर्थ हैं। मैं तो कंगाल (दीन-हीन) हूँ, केवलमात्र "कृष्ण कृष्ण" कहकर आपके

पीछे पीछे दौड़ रहा हूँ अर्थात् आपका अनुगमन कर रहा हूँ।

n

कृपा कर वैष्णव ठाकुर।
सम्बन्ध जानिया, भजिते भजिते,
अभिमान हउ दूर।।
'आमि त' वैष्णव' ए बुद्धि हइले,
अमानी ना ह'ब आमि।
प्रतिष्ठाशा आसि', हृदय दूषिबे,
हइब निरयगामी।।
तोमार किङ्कर, आपने जानिबो,
'गुरु—अभिमान त्यजि'।
तोमार उच्छिष्ट, पदजलरेणु,
सदा निष्कपटे भजि।।
'निजे श्रेष्ठ' जानि', उच्छिष्टादि दाने,
ह'बे अभिमान—भार।
ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा।
ना लइबो पूजा का'र।।
अमानी मानद, हइले कीर्तने,
अधिकार दिबे तुमि।
तोमार चरणे, निष्कपटे आमि,
काँदिया लुटिब भूमि।।

(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—हे वैष्णव ठाकुर! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं श्रीभगवानके साथ अपना सम्बन्ध जानकर भगवद्भजन कर सकूँ, जिससे कि मेरा जड़ीय अभिमान दूर हो जाए। क्योंकि यदि मेरी "में वैष्णव हूँ" ऐसी बुद्धि हो जाएगी, तो मैं कदापि अमानी नहीं रह पाऊँगा तथा दूसरोंसे प्रतिष्ठा प्राप्तिकी आशासे मेरा हृदय दूषित हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप मैं नरकगामी हो जाऊँगा। आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं गुरु होनेका मिथ्या अभिमानका परित्यागकर अपनेको आपका दास मान सकूँ, तथा आपके उच्छिष्ट

एवं चरणामृतको निष्कपटरूपसे ग्रहण कर पाऊँ। क्योंकि अपनेको श्रेष्ठ (गुरु) मानकर अपना उच्छिष्ट दूसरोंको प्रदान करनेसे अभिमान आकर मेरा सर्वनाश कर देगा। अतः आप ऐसी कृपा कीजिए कि मैं सदैव आपका शिष्य होकर रहूँ तथा किसीसे भी पूजा-प्रतिष्ठा ग्रहण न करूँ। इस प्रकार अमानी अर्थात् दूसरोंसे अपने सम्मानकी अभिलाषा न रखकर तथा मानद अर्थात् दूसरोंको सम्मान देनेवाला होनेपर आप मुझे शुद्धरूपसे कीर्तन करनेका अधिकार प्रदान करेंगे आपके श्रीचरणोंमें मैं निष्कपटरूपसे रोते-रोते भूमिपर लौटते हुए यही प्रार्थना करता हूँ।

हरि हरि कबे मोर हबे हेन दिन।
विमल वैष्णवे, रति उपजिबे, वासना हइबे क्षीण।।
अन्तर-बाहिरे, सम व्यवहार, अमानी मानद ह'बो।
कृष्ण-संकीर्तने, श्रीकृष्ण स्मरणे, सतत मजिया र'बो।।
ए देहेर क्रिया, अभ्यासे करिब, जीवन यापन लागि।
श्रीकृष्ण भजने, अनुकूल जाहा, ताहे हबो अनुरागी।।
भजनेर जाहा, प्रतिकूल ताहा, दृढ़भावे तेयागिबो।
भजिते भजिते, समय आसिले, ए देह छाड़िया दिबो।।
भकतिविनोद, एइ आशा करि, वसिया गोद्रुम-वने।
प्रभु-कृपा लागि, व्याकुल अन्तरे, सदा काँदे संगोपने।।

अनुवाद—हे हरि! मेरा ऐसा दिन कब आएगा, जब मेरे हृदयसे समस्त प्रकारकी विषय वासनाएँ नष्ट हो जाएँगी तथा विमल (शुद्ध) वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंमें मेरी रति उत्पन्न हो जाएगी। अन्दर तथा बाहरमें मेरा व्यवहार एक समान होगा अर्थात् मेरा हृदय निष्कपट हो जाएगा तथा मैं अमानी (अपना सम्मान न चाहकर) एवं मानद (दूसरोंको सम्मान प्रदान करूँगा) होऊँगा तथा निरन्तर श्रीकृष्णके कीर्तन स्मरणमें निमग्न रहूँगा। केवलमात्र जीवन निर्वाहके उपयुक्त शारीरिक क्रियाओंको करूँगा तथा श्रीकृष्ण भजनके अनुकूल विषयोंमें मेरी प्रीति होगी। मैं भजनके प्रतिकूल विषयोंका दृढ़तापूर्वक परित्याग करूँगा। इस प्रकार भजन करते-करते समय आनेपर मैं

इस शरीरको त्याग दूँगा। भक्तिविनोद इसी आशाके साथ गोद्रुम वनमें बैठकर सर्वदा प्रभुकी कृपाके लिए व्याकुल हृदयसे एकान्तमें निरन्तर रोता रहता है।

श्रीवैष्णव-विज्ञप्ति

एइबार करुणा कर वैष्णव गोसांई।
पतित पावन तोमा बिने केह नांइ।।
काहार निकटे गेले पाप दूरे जाय।
एमन दयाल प्रभु केबा कोथा पाय?।।
गङ्गार परश हैले पश्चाते पावन।
दर्शने पवित्र कर—एइ तोमार गुण।।
हरि स्थाने अपराधे तारे हरिनाम।
तोमा स्थाने अपराधे नाहिक एड़ान।।
तोमार हृदये सदा गोविन्द विश्राम।
गोविन्द कहेन—मम वैष्णव पराण।।
प्रतिजन्मे करि आशा चरणेर धूलि।
नरोत्तमे कर दया आपनार बलि।।

अनुवाद—हे वैष्णव ठाकुर! आप मुझपर एकबार कृपा कीजिए; क्योंकि पतितोंको भी पावन करनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा और कोई नहीं है। किसकी शरणमें जानेपर पाप दूर हों अर्थात् केवलमात्र आप ही ऐसे दयालु हैं। आप जैसा दयालु किसे और कहाँ मिलेगा? भगवती गंगाजीका स्पर्श करनेके बाद ही वे पवित्र करती हैं, परन्तु आपका तो ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि आपके दर्शनमात्रसे ही पतितसे पतित व्यक्ति भी सर्व प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। हे वैष्णव ठाकुर! श्रीहरिके चरणोंमें किसीका अपराध होनेपर हरिनाम उस अपराधको नष्ट कर सकता है; परन्तु आपके श्रीचरणोंमें अपराध होनेपर उस अपराधसे कदापि निस्तार नहीं हो सकता। आपके हृदयमें सर्वदा गोविन्द विराजमान रहते हैं। स्वयं भगवान भी कहते हैं कि वैष्णव लोग मुझे प्राणोंके समान प्यारे हैं। अतः मैं जन्म-जन्मान्तरोंमें आपकी चरणधूलिकी ही कामना करता

हूँ। नरोत्तमको अपना दास जानकर इसपर कृपा कीजिए।

n

किरूपे पाइबो सेवा मुइ दुराचार।
श्रीगुरु-वैष्णवे रति ना हइल आमार।।

अशेष मायाते मन मगन हइल।
वैष्णवेते लेशमात्र रति ना जन्मिल।।

विषये भुलिया अन्ध हइनु दिवानिशि।
गले फाँस दिते फिरे माया से पिशाची।।

इहारे करिया जय छाड़ान ना जाय।
साधुकृपा बिना आर नाहिक उपाय।।

अदोष दरशि प्रभो, पतित उद्धार।
एइबार नरोत्तमे करह निस्तार।।

अनुवाद—अहो! मेरे जैसे दुराचारीका श्रीगुरु-वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें लेशमात्र भी रति नहीं हुई, अतः मैं किस प्रकार भगवानकी सेवा प्राप्त करूँगा। मेरा मन तो सर्वदा विषयोंमें रमा हुआ है तथा विषयोंमें फँसकर अन्धा (अविद्याग्रस्त) होकर रात-दिन विषयी लोगोंकी सेवा कर रहा है और यह माया पिशाची मेरे गलेमें फंदा डालनेके लिए तैयार है। अब तो साधु (वैष्णवों) की कृपाके अतिरिक्त इससे बचनेका कोई उपाय नहीं दीखता। हे वैष्णव ठाकुर! आप तो अदोषदर्शी हैं अर्थात् दोषोंको अनदेखाकर पतितोंका भी उद्धार कर देते हैं, अतः अभी इस नरोत्तमका भी उद्धार कीजिए।

n

सकल वैष्णव गोसाञि दया कर मोरे।
दन्ते तृण धरि कहे ए दीन पामरे।।

श्रीगुरु-चरण आर श्रीकृष्णचैतन्य।
पादपद्म पावाइया मोरे कर धन्य।।

तोमा सबार करुणा बिने इहा प्राप्ति नय।
विशेषे अयोग्य मुञि कहिल निश्चय।।

वाञ्छा-कल्पतरु हउ करुणा-सागर।
एइ त' भरसा मुञि धरिये अन्तर।।

गुण-लेश नाहि मोर अपराधेर सीमा।
आमा उद्धारिया लोके देखाओ महिमा।।

नाम-संकीर्तन-रुचि आर प्रेम-धन।
ए राधामोहने देह' हैया सकरुण।।

अनुवाद—हे वैष्णव ठाकुर! मैं आप सभीके श्रीचरणोंमें दीन-हीन होकर प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पतितको श्रीगुरुपादपद्म और श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणकमल प्राप्त करवाकर धन्य कर दें। मैं नितान्त अयोग्य हूँ, आप सभीकी कृपाके बिना और किसी भी उपायसे यह सम्भव नहीं है। हे करुणासागर! मैं इसी विश्वासको ही अपने हृदयमें धारण करता हूँ कि जब आप वाञ्छाकल्पतरुके समान सभीकी वाञ्छाएँ पूर्ण करते हैं, तब मेरी वाञ्छाको भी अवश्य ही पूर्ण करेंगे। मुझमें लेशमात्र भी गुण नहीं है, मेरे अपराधोंकी भी सीमा नहीं है। मेरे जैसे व्यक्तिका उद्धार करके आप अपनी महिमाको ही प्रकाश करें। इस राधामोहनदासको नाम-संकीर्त्तनमें रुचि और प्रेम-धन प्रदानकर अपनी करुणाका विस्तार करें।

श्रीवैष्णव-पादोदक-महिमा

ठाकुर वैष्णव-पद, अवनीर सुसम्पद,
सुन भाई, हइञा एकमन।
आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे,
आर सब मरे अकारण।।
वैष्णव-चरण-जल, प्रेम-भक्ति दिते बल,
आर केह नहे बलवन्त।
वैष्णव चरण-रेणु, मस्तके भूषण बिनु,

आर नाहि भूषणेर अन्त।।
तीर्थ-जल पवित्र गुणे, लिखियाछे पुराणे
से सब भक्तिर प्रवञ्चन।
वैष्णवेर पादोदक— सम नहे एइ सब,
जाते हय वाञ्छित पूरण।।
वैष्णव संगेते मन, आनन्दित अनुक्षण,
सदा हय कृष्ण-परसंग।
दीन नरोत्तम कान्दे, हिया धैर्य नाहि बान्धे,
मोर दशा केन हइल भंग।।

अनुवाद—अरे भाई! एकाग्रचित्त होकर सुनो—वैष्णवोंके श्रीचरणकमल ही इस जगतकी एकमात्र सम्पदा है। जो उनका आश्रय लेकर कृष्णका भजन करता है, कृष्ण उसे कभी भी नहीं त्यागते हैं। परन्तु वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किए बिना ही जो भजन करता है, वह व्यर्थ ही मारा जाता है अर्थात् उसका भजन-साधन सब व्यर्थ हो जाता है। प्रेमाभक्ति प्रदान करनेमें वैष्णवोंके चरणजलके (चरणामृत) समान और कोई दूसरा उपाय शक्तिशाली नहीं है। वैष्णवोंके चरणरजरूपी भूषणके अतिरिक्त और किसी भी प्रकारके जड़ आभूषणोंसे मस्तककी वास्तविक शोभा नहीं होती। शास्त्रोंमें तीर्थोंके जलको पवित्र बताया गया है, परन्तु भक्तिके लिए यह सब प्रवञ्चनामात्र है, क्योंकि वैष्णवोंके चरणामृतसे तीर्थजलकी कोई तुलना ही नहीं है। वैष्णवोंका चरणामृत पान करनेसे समस्त प्रकारकी वाञ्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वैष्णवोंके संगमें सदैव कृष्णकथाकी चर्चा होती है, जिससे मन सर्वदा आनन्दित रहता है। हाय! ये स्थितियाँ इस दीन नरोत्तमको क्यों प्राप्त नहीं हुई? मेरी धैर्यकी सीमा टूट चुकी है—रोते-रोते नरोत्तम ठाकुर ऐसा कह रहे हैं।

श्रीरूपानुगत्य-माहात्म्य

सुनियाछि साधुमुखे बले सर्वजन।
श्रीरूप-कृपाय मिले युगल-चरण।।

हा! हा! प्रभु सनातन गौर-परिवार।
सबे मिलि वाञ्छा पूर्ण करह आमार।।

श्रीरूपेर कृपा जेन आमा प्रति हय।
से पद आश्रय यार, सेइ महाशय।।

प्रभु लोकनाथ कबे सङ्गे लइया जाबे।
श्रीरूपेर पादपद्मे मोरे समर्पिबे।।

हेन कि हइबे मोर-नर्म्मसखीगणे।
अनुगत नरोत्तमे करिबे शासने।।

अनुवाद—मैंने साधुओंके श्रीमुखकमलसे सुना है कि श्रीरूपगोस्वामीकी कृपासे ही राधाकृष्ण युगलके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है। हे श्रीसनातन गोस्वामी एवं श्रीमन्महाप्रभुके अन्य पार्षदवृन्द! आप सब लोग मिलकर कृपापूर्वक मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिए कि श्रीरूपगोस्वामीकी मुझपर भी कृपा हो जाए तथा वे मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय प्रदान करें। क्योंकि श्रीरूपगोस्वामीके श्रीचरणोंमें जिसे शरण प्राप्त हो जाती है, वे ही महात्मा धन्य हैं। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर अभिलाषा करते हैं कि वह दिन कब आयेगा जब श्रीलोकनाथदास गोस्वामी मुझे अपने साथ ले जाकर श्रीरूपगोस्वामीके (श्रीरूपमञ्जरी) श्रीचरणोंमें समर्पित कर देंगे तथा श्रीराधाजीकी नर्मसखियाँ अपने अनुगत जानकर मुझपर शासन करेंगी।

श्रीरूप-सनातन दैन्यमयी प्रार्थना

विषय वासनारूप चित्तेर विकार।
आमार हृदये भोग करे अनिवार।।
कत ये यतन आमि करिलाम हाय।
ना गेल विकार बुद्धि शेषे प्राण जाय।।
ए घोर विकार मोरे करिल अस्थिर।
शान्ति ना पाइल स्थान, अन्तर अधीर।।
श्रीरूप गोस्वामी मोरे कृपा वितरिया।
उद्धारिबे कबे युक्तवैराग्य अर्पिया।
कबे सनातन मोरे छाड़ाये विषय।
नित्यानन्दे समर्पिबे हइया सदय।।
श्रीजीव गोस्वामी कबे सिद्धान्त-सलिले।
निवाइबे तर्कानल, चित्त जाहे ज्वले।।

श्रीचैतन्य-नाम शुने उदिबे पुलक।
राधा कृष्णामृत-पाने हइब अशोक।।
कांगालेर सुकांगाल दुर्जन ए-जन।
वैष्णव-चरणाश्रय याचे अकिञ्चन।।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—विषय-वासना मेरे हृदयमें उदित होकर सदैव क्रीड़ा करती रहती है। हाय! मैंने इसे दूर करनेका कितना प्रयास किया, परन्तु फिर भी मेरे मनसे यह विकार नहीं गया। इस विषय-वासनारूपी विकारने मुझे अस्थिर कर दिया है, जिससे मुझे तनिक भी शान्ति नहीं मिल रही है। मैं अत्यन्त पीड़ित हूँ। श्रीरूप गोस्वामीपाद कब अपनी कृपाके द्वारा मुझे युक्त वैराग्य प्रदान कर मेरा उद्धार करेंगे। श्रीसनातन गोस्वामीपाद कब मुझे विषयोंसे छुड़ाकर दयावानकी भाँति श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरणोंमें समर्पित करेंगे। श्रीजीव गोस्वामीपाद कब मुझे सिद्धान्तोंके समुद्रमें स्नान करायेंगे, जिससे मेरा तार्किक हृदय शीतलता प्राप्त करेगा। श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम सुनकर मेरे शरीरमें रोमाञ्च और पुलकादि होंगे तथा श्रीराधा-कृष्णका लीलामृत पानकर शोकरहित बन जाऊँगा। मैं अतिशय दीन-हीन कंगाल हूँ, मैं अकिंचन बनकर वैष्णवोंके चरणाश्रयकी प्रार्थना करता हूँ।

श्रीनित्यानन्द-निष्ठा

निताइ-पद-कमल, कोटिचन्द्र सुशीतल,
जे छायाय जगत् जुड़ाय।
हेन निताइ बिने भाइ, राधाकृष्ण पाइते नाइ,
दृढ़ करि धर निताइयेर पाय।।
से सम्बन्ध नाहि जार, वृथा जन्म गेल ता'र,
सेई पशु बड़ दुराचार।
निताइ ना बलिल मुखे, मजिल संसार-सुखे,
विद्याकुले कि करिबे ता'र।।
अहंकारे मत्त हइञा, निताई-पद पासरिया,
असत्येरे सत्य करि मानि।

निताइयेर करुणा ह'बे, ब्रजे राधाकृष्ण पा'बे,
धर निताइयेर चरण दु'खानि।।
निताइयेर चरण सत्य, ताँहार सेवक नित्य,
निताइ-पद सदा कर आश।
नरोत्तम बड़ दुःखी, निताइ मोरे कर सुखी,
राख रांगा चरणेर पाश।।

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभुजीके श्रीचरणकमल तो करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतलताको भी पराभूत करनेवाले हैं। क्योंकि चन्द्र तो केवल इस जड़ शरीरको ही क्षणभरके लिए शीतल करता है, परन्तु नित्यानन्दप्रभुके श्रीचरणकमल तो त्रितापोंसे दग्धीभूत हो रहे जीवोंके हृदयको चिरकालके लिए सुशीतल कर देते हैं। ऐसे श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किये बिना राधाकृष्णकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः हे भाइयो! नित्यानन्दप्रभुके श्रीचरणोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ लो अर्थात् दृढ़ विश्वासपूर्वक उनका आश्रय ग्रहण करो। उनसे जिसका सम्बन्ध नहीं हुआ, समझो कि पशु सदृश उस दुराचारीका दुर्लभ मानव जन्म व्यर्थ ही चला गया। जो सांसारिक विषय भोगोंमें प्रमत्त होकर नित्यानन्दप्रभुजीके कल्याणप्रद श्रीनामका कीर्तन नहीं करता है, उच्चकुलमें जन्म तथा जड़ विद्यासे भी उसका कल्याण नहीं होगा। वह तो जड़ीय अहंकारमें प्रमत्त होकर नित्यानन्दप्रभुजीके श्रीचरणकमलोंको भूल गया तथा सांसारिक अनित्य विषयोंको नित्य मानकर उनमें ही रमा हुआ है। अरे भाई! नित्यानन्दप्रभुजीकी करुणा होनेपर ही ब्रजमें श्रीराधाकृष्णकी सेवा प्राप्त होती है। अतः उनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करो। नित्यानन्दप्रभुजीके चरण सत्य हैं और उनके सेवक भी नित्य हैं अतः उनके चरणोंमें ही सर्वदा आशा करो। यह नरोत्तम बहुत दुःखी होकर प्रार्थना कर रहा है कि हे नित्यानन्द प्रभु! आप मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय प्रदानकर सुखी करें।

n

निताइ मोर जीवन-धन, निताइ मोर जाति।
निताइ विहने मोर आर नाहि गति।।
संसार-सुखेर मुखे तुले दिव छाइ।
नगरे मागिया खाब गाईया निताइ।।

जे-देशे निताइ नाइ, से देशे ना याब।
निताइ-विमुख-जनार मुख ना हेरिब।।

गङ्गा जाँर पदजल, हर शिरे धरे।
हेन निताइ ना भजिया दुःख पेये मरे।।

लोचन बले मोर निताइ जेबा नाहि माने।
अनल भेजाइ ताँर माझ-मुखखाने।।

अनुवाद—श्रीनित्यानन्द प्रभु ही मेरे जीवनधन हैं तथा निताइ ही मेरी जाति हैं। उन निताइके बिना मेरी और कोई गति नहीं है। मैं संसारके सुखों पर राख डाल दूँगा अर्थात् समस्त सांसारिक वस्तुओंको त्याग दूँगा। नगर-नगरमें निताइका नाम गाते-गाते माँगकर खाऊँगा। जिस देशमें निताइ नहीं हैं तथा निताइका आदर नहीं है, उस देशमें नहीं जाऊँगा। निताइसे विमुख व्यक्तियोंका मुख भी नहीं देखूँगा। जिस गंगाको शिवजी अपने मस्तक पर धारण करते हैं, वे गंगा भी जिनका चरण-जल है, ऐसे नित्यानन्द प्रभुका भजन नहीं करके लोग दुःख प्राप्त करके मरते हैं। श्रील लोचनदास ठाकुरजी कहते हैं कि मेरे निताइको जो नहीं मानता, मैं उनके मुँहमें आग देता हूँ।

n

अक्रोध परमानन्द नित्यानन्द-राय।
अभिमान-शून्य निताइ नगरे बेड़ाय।।

अधमपतित जीवेर द्वारे द्वारे गिया।
हरिनाम महामंत्र दिच्छेन बिलाइया।।

जारे देखे ता'रे कहे दन्ते तृण धरि।
आमारे किनिया लह, बोलो गौरहरि।।

एत बलि, नित्यानन्द भूमे गड़ि, जाय।
सोनार पर्वत जेन धूलाते लोटाय।।

हेन अवतारे जार रति ना जन्मिल।
लोचन बले सेइ पापी एलो आर गेलो।।

अनुवाद—अहो! क्रोधशून्य परमानन्दस्वरूप श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुजी की जय हो, जो अपने भगवत्ताके अभिमानको भी त्यागकर

स्वयं नगर-नगरमें भ्रमण कर रहे हैं तथा अधम व पतित जीवोंके घर-घर जाकर उन्हें हरिनाम महामंत्र प्रदान कर रहे हैं। वे जिसे भी देखते हैं, उसीसे अत्यन्त ही दीनतापूर्वक कहते हैं—अरे भाई! तुम मात्र एकबार "गौरहरि" बोलकर मुझे खरीद लो। ऐसा कहते हुए जब वे प्रेममें आविष्ट होकर जमीनपर गिर जाते हैं तथा लोटने लगते हैं तो ऐसा जान पड़ता है, मानो कोई सोनेका पहाड़ धूलमें लोट रहा हो। श्रीलोचनदास ठाकुर कहते हैं—ऐसे दयालु श्रीनित्यानन्द प्रभुजीके श्रीचरणकमलोंमें जिसकी रति नहीं हुई उसका दुर्लभ मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला गया।

श्रीनित्यानन्द-गुणवर्णन

निताइ गुणमणि आमार निताइ गुणमणि।
आनिया प्रेमेर वन्या भासाइल अवनी।।१।।

प्रेमेर वन्या लइया निताइ आइल गौड़देशे।
डुबिल भकतगण दीन हीन भासे।।२।।

दीन हीन पतित पामर नाहि बाछे।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम सबाकारे याचे।।३।।

आबद्ध करुणा-सिन्धु काटिया मुहान।
घरे घरे बुले प्रेम-अमियार वान।।४।।

लोचन बले मोर निताइ जेवा ना भजिल।
जानिया सुनिया सेइ आत्मघाती हैल।।५।।

अनुवाद—गुणोंके भण्डारस्वरूप नित्यानन्दप्रभुजीने प्रेमरूप बाढ़को लाकर उसमें सम्पूर्ण जगतको डुबा दिया। प्रेमकी बाढ़को लेकर वे गौड़ देशमें आए। जिससे भक्त लोग तो उस बाढ़में डूबे ही, परन्तु उनके अतिरिक्त जितने भी दीन-हीन थे, वे भी उस बाढ़में बह गए। दीन-हीन एवं पतितोंकी अयोग्यताका भी विचार न कर ब्रह्माजीके लिए भी दुर्लभ प्रेम सबको वितरण किया। आज तक जो करुणाका सागर आबद्ध था, उसके मुहानेको काटकर घर-घरमें प्रेमामृतकी बाढ़ ला दी। श्रीलोचनदास ठाकुर कहते हैं—मेरे प्रभु श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुजीकी महिमाको जानकर भी जो उनका भजन नहीं करता है, वह तो आत्मघाती ही है।

श्रीगौर-तत्त्व

(प्रभु हे)! एमन दुर्मति, संसार-भितरे,
पड़िया आछिनु आमि।
तव निज-जन, कोन महाजने,
पाठाइया दिले तुमि।।१।।
दया करि मोरे, पतित देखिया,
कहिल आमारे गिया।
ओहे दीन जन, सुन भाल कथा,
उल्लसित हबे हिया।।२।।
तोमारे तारिते, श्रीकृष्ण चैतन्य,
नवद्वीपे अवतार।
तोमा हेन कत, दीन हीन जने,
करिलेन भवपार।।३।।
वेदेर प्रतिज्ञा, राखिवार तरे,
रुक्मवर्ण विप्रसूत।
महाप्रभु नामे, नदीया माताय,
संगे भाई अवधूत।।४।।
नन्दसुत जिनि, चैतन्य-गोसांई,
निज-नाम करि दान।
तारिल जगत्, तुमिओ जाइया,
लह निज परित्राण।।५।।
से कथा सुनिया, आसियाछि नाथ।
तोमार चरणतले।
भकति विनोद, काँदिया काँदिया,
आपन काहिनी बले।।६।।

अनुवाद—हे प्रभु! मैं ऐसा दुर्मति हूँ कि आपकी सेवासे विमुख होकर संसारमें पड़ा हुआ हूँ। परन्तु आपने अपने किसी महाजनको भेज दिया वे मेरी दुर्गतिको देखकर दया पूर्वक बोले—हे दीनजन! तुम ध्यानपूर्वक एक बहुत ही कल्याणकारी बात सुनो, जिससे तुम्हारा हृदय उल्लसित हो जाएगा। तुम्हारा उद्धार करनेके लिए ही श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने नवद्वीपमें अवतार ग्रहण किया है।

अवतरित होकर उन्होंने तुम्हारे समान कितने ही दीन-हीन व्यक्तियोंको भव सागरसे पार कर दिया। उन्होंने वेदके वचनोंकी रक्षाके लिए पीतवर्ण धारणकर एक ब्राह्मणके पुत्रके रूपमें महाप्रभुके नामसे अवतरित होकर अपने भाई नित्यानन्दके साथ सम्पूर्ण नदियाको ही प्रमत्त कर दिया। स्वयं श्रीनन्दनन्दनने ही चैतन्यमहाप्रभुके रूपमें अवतार ग्रहण कर अपना ही नाम प्रदान कर सारे जगतका उद्धार कर दिया। अतः तुम भी उनकी शरणमें जाकर अपना उद्धार करवाओ। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रोते-रोते आपबीती सुनाते हुए कहते हैं—हे प्रभु! उनकी इस बातको सुनकर ही मैं आपके श्रीचरणोंमें आया हूँ।

n

जय नन्दनन्दन, गोपीजन-बल्लभ,
राधानायक नागर श्याम।
सो शचीनन्दन, नदीया-पुरन्दर,
सुर-मुनिगण-मनोमोहन धाम।।
जय निजकान्ता, कान्ति कलेवर,
जय जय प्रेयसी-भाव-विनोद।
जय ब्रज-सहचरी- लोचन-मङ्गल,
जय नदीयावासी-नयन-आमोद।।
जय जय श्रीदाम, सुदाम सुबलार्ज्जुन,
प्रेमवर्द्धन नवघन रूप।
जय रामादि सुन्दर, प्रिय सहचर,
जय जगमोहन गौर अनूप।।
जय अतिबल बल- राम-प्रियानुज,
जय जय नित्यानन्द-आनन्द।
जय जय सज्जन, गण-भय-भञ्जन,
गोविन्ददास आश अनुबन्ध।।

अनुवाद—श्रीनन्दनन्दनकी जय हो। जो गोपियोंके बल्लभ तथा श्रीमती राधिकाजीके नायक हैं, उन श्यामकी जय हो। वे ही समस्त देवताओं एवं मुनियोंके मनको भी हरण करनेवाले, सबके आश्रयस्वरूप

एवं नदीया (नवद्वीप) के श्रेष्ठ शचीनन्दन श्रीगौरसुन्दर हैं। जो अपनी प्रेयसी श्रीमती राधिकाजीकी अंगकांति एवं भावको ग्रहणकर नवद्वीपमें प्रकट होकर अत्यन्त ही मनोहर लीलाओंके द्वारा नदीयावासियोंके नयनोंको उसी प्रकार आनन्द प्रदान करते हैं, जिस प्रकार ब्रजगोपियोंके नयनोंको आनन्द प्रदान करते थे, उनकी जय हो। इसके अतिरिक्त जो श्रीदाम, सुदाम, सुबल, अर्जुन, बलराम एवं अन्यान्य सखाओंके प्रेमको बढ़ानेवाले हैं, जिनका रूप वर्षाकालीन नवीन मेघके समान अत्यन्त ही सुन्दर एवं सारे जगतको मोहित करनेवाला है तथा वे ही अत्यन्त सुन्दर गौरसुन्दरके रूपमें प्रकटित हुए, उनकी जय हो। जो बलरामजीके प्रिय छोटे भाई हैं, वे ही गौरसुन्दरके रूपमें नित्यानन्द, जो बलराम ही हैं, उनको आनन्द प्रदान करनेवाले तथा सज्जनों (भक्तोंके) के समस्त प्रकारके भय (विघ्नोंको) को नष्ट करनेवाले हैं। गोविन्ददास उनकी कृपाकी आश लगाए बैठा है।

श्रीगौर-गुण-वर्णन

एमन गौराङ्ग बिना नाहि आर।
हेन अवतार, हबे कि हयेछे,
हेन प्रेम-परचार।
दुरमति अति, पतित पाषण्डी,
प्राणे ना मारिल का'रे।
हरिनाम दिया, हृदय शोधिल,
याचि गिया घरे-घरे।।
भव-विरिञ्चिर, वाञ्छित ये प्रेम,
जगते फेलिल ढालि'।
काङ्गाले पाइया, खाइल नाचिया,
बाजाइया करतालि।
हासिया-काँदिया, प्रेमे गड़ागड़ि,
पुलके व्यापिल अङ्ग।
चण्डाले-ब्राह्मणे, करे कोलाकुलि,
कबे वा छिल ए रङ्ग।
डाकिया-हाँकिया, खोल-करताले,

गाइया–धाइया फिरे।
देखिया शमन, तरास पाइया,
कपाट हानिल द्वारे।
ए तिन भुवन, आनन्दे भरिल,
उठिल मङ्गल शोर।
कहे प्रेमानन्द, एमन गौराङ्गे,
रति ना जन्मिल मोर।।

अनुवाद—अहो! चैतन्यमहाप्रभुके समान कोई अवतार आज तक न हुआ है, न भविष्यमें होगा तथा न ही ऐसे दुर्लभ प्रेमका प्रचार होगा। जिन्होंने दुर्मति परायण, पतितों एवं पाषण्डियोंका भी वध नहीं किया अपितु उनके घर–घर जाकर उन्हें हरिनाम प्रदानकर उनके हृदयको शुद्ध किया तथा शंकर एवं ब्रह्माके भी अभिलषित उस दुर्लभ प्रेमको जगतमें बिखेर दिया; जिसको काङ्गाल (दीन–हीन) लोग भी प्राप्तकर आनन्दपूर्वक दोनों हाथोंसे तालियाँ बजाते हुए नाचने लगे। कभी हँसने लगे तो कभी प्रेममें रोते–रोते जमीनपर लोट–पोट खाने लगे तथा उनके अंग पुलकित हो गए। ब्राह्मण भी अपने कुलका अभिमान त्यागकर एक चण्डालको आलिङ्गन करने लगे, कहो क्या कभी ऐसी अद्भुत बात हुई? लोग मृदङ्ग–करतालके साथ कीर्तन करते हुए नृत्य भी कर रहे हैं। यह तमाशा देखकर तो मृत्यु भी भयभीत हो गई तथा उसने अपने दरवाजे बन्द कर दिए। उस कीर्तनकी ध्वनिसे त्रिभुवन आनन्दसे भर गया। प्रेमानन्द कहता है—हाय–हाय! ऐसे गौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंमें मेरी रति नहीं हुई।

n

(यदि) गौरांग नहित, तबे कि हइत,
केमने धरित दे?
राधार महिमा, प्रेमरस–सीमा,
जगते जानात के?

मधुर वृन्दा विपिन-माधुरी,
प्रवेश चातुरी-सार।
बरज-युवती, भावेर भकति,
शकति हइत कार?
गाओ पुनः-पुनः, गौराँगेर गुण,
सरल हइया मन।
ए भव सागरे, एमन दयाल,
ना देखि ये एकजन।।
गौराङ्ग बलिया, ना गेनु गलिया,
केमने धरिनु दे।
नरहरि-हिया, पाषाण दिया,
केमने गड़ियाछे।।

अनुवाद—अहो! यदि गौरसुन्दर इस जगतमें नहीं आते तो क्या होता, किस प्रकार मैं प्राण धारण करता तथा इस जगतमें प्रेमरसकी पराकाष्ठा स्वरूप श्रीमती राधिकाजीकी महिमाको कौन जान पाता? यदि राधाभाव व कांतिके द्वारा देदीप्यमान श्रीकृष्णस्वरूप शचीनन्दन गौरहरि जगतमें आविर्भूत न होते तो श्रीधाम वृन्दावनकी माधुरीमें किसका प्रवेश होता? जो समस्त प्रकारकी माधुरियोंका खान है, उसमें प्रवेश करना ही बुद्धिमताकी चरमसीमा है। ऐसी व्रजमाधुरीमें कौन प्रवेश कर सकता था। विशेषतः ब्रजरमणियोंकी ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके प्रति पारकीय मधुरभावरूप उन्नत उज्ज्वलरसमें प्रवेश करनेकी किसकी शक्ति थी। अर्थात् यह किसीके लिए भी संभव नहीं था। केवल महावदान्य श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी अहैतुकी कृपासे ही यह सम्भव हुआ। हे भाइयो! सरल निष्कपट मनसे श्रीगौरसुन्दरके गुणोंका पुनः पुनः गान करो क्योंकि इस भवसागरमें ऐसा दयालु और कोई नहीं है। पदकर्ता श्रीनरहरि ठाकुर कह रहे हैं—हाय! मेरा हृदय किस पाषाणका बना है जो कि "गौरांग" नामका उच्चारण करनेपर भी द्रवित नहीं हुआ तथा मैं अभी तक किस प्रकार प्राण धारण किये हूँ।

n

एमन शचीर नन्दन बिने।
'प्रेम' बलि नाम, अति अद्भुत,
श्रुत हइत का'र काने?
श्रीकृष्ण नामेर, स्वगुण महिमा,
केवा जानाइत आर?
वृन्दा विपिनेर महा मधुरिमा,
प्रवेश हइत का'र?
केवा जानाइत, राधार माधुर्य्य,
रस-यश चमत्कार?
ता'र अनुभव, सात्त्विक विकार,
गोचर छिल वा का'र?
व्रजे जे विलास, रास महारास,
प्रेम परकीय तत्त्व।
गोपीर महिमा, व्यभिचारी सीमा,
का'र अवगति छिल एत?
धन्य कलि धन्य, निताई-चैतन्य,
परम करुणा करि।
विधि-अगोचर, जे प्रेम-विकार,
प्रकाशे जगत्-भरि।।
उत्तम अधम, किछु ना बाछिल,
याचिया दिलेक कोल।
कहे प्रेमानन्दे, एमन-गौरांगे,
अन्तरे धरिया दोल।।

अनुवाद—अहो! ऐसे श्रीशचीनन्दन गौरसुन्दरकी कृपाके बिना अत्यन्त ही अद्भुत "प्रेम" नाम कौन सुन पाता? श्रीकृष्ण नामकी अद्भुत महिमा कौन हमें बतलाता? यदि राधाभाव सुवलित श्रीकृष्णस्वरूप शचीनन्दन गौरहरि इस जगतमें प्रकट होकर श्रीवृन्दावनकी महामधुरिमाका प्रकाश नहीं करते, पात्र एवं अपात्रका विचार किये बिना कलियुगी जीवोंके उपर अहैतुकी कृपाकी वर्षाकर उन्हें उस ब्रजकी माधुरीमें प्रवेशका सौभाग्य प्रदान नहीं करते तो कौन इस महामधुरिमामें प्रवेश कर सकता था? श्रीमती राधिका उन्नत

उज्ज्वल मधुररसकी सीमा है। उनके चमत्कारपूर्ण महाभावके अधिरूढ़, मोदन, मादन आदि अलौकिक भावोंको इस धरा धाममें रसिकशेखर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके बिना कौन प्रकाशित करता? जगन्नाथ पुरीके काशीमिश्रभवनमें स्थित श्रीगम्भीरामें विप्रलम्भभावमें डुबी श्रीमती राधिकाके भावोंका आस्वादन करते समय उनके अप्राकृत शरीरमें जो प्रदीप्त सात्विक विकारसमूह उदित होते थे, उन्हें इस जगतमें किसके लिए देखना सम्भव था? मधुर वृन्दावनमेंअखिलरसामृत मूर्ति श्रीकृष्ण तथा महाभावकी मूर्तिमान विग्रह श्रीमती राधिका और उनकी कायव्यूहस्वरूपा गोपियोंके साथ जो महारास एवं प्रेमका विलास सम्पन्न हुआ था, उन गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति जो पारकीय भावमय उन्नत उज्ज्वल प्रेमतत्त्व, गोपियोंके प्रेमकी महिमा, प्रेममयी गोपियोंके अप्राकृत शरीरमें भाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक, व्यभिचारी आदि विकारों या भावोंकी अन्तिम सीमातक अभिव्यक्ति हुई थी, वह इस जगतमें किसके लिए संभव था? यह तो केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु गौरहरिकी कृपासे ही संभव हुआ। अहो यह कलियुग धन्य है। जिसमें कृपाकरके श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमन्महाप्रभुने जगतमें अवतरित होकर ब्रह्माजीके भी अगोचर (दुर्लभ) प्रेमको जगतमें प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने उत्तम अथवा अधम किसी भी प्रकारका विचार नहीं रखा तथा सभीको हृदयसे लगा लिया। प्रेमानन्दजी कहते हैं—अरे भाइयो! ऐसे श्रीगौरसुन्दरको अपने हृदयमें धारणकर करो।

n

श्रीगौर-महिमा

के जाबि के जाबि भाई भवसिन्धु-पार।
धन्य कलियुगेर चैतन्य-अवतार।।

आमार गौरांगेर घाटे अदान-खेया वय।
जड़ अन्ध, आतुर अवधि पार हय।।

हरिनामेर नौकाखानि श्रीगुरु-काण्डारी।
संकीर्त्त न केरोयाल दु'बाहु पसारि।।

सब जीव हैल पार प्रेमेर बातासे।
पड़िया रहिल लोचन आपनार दोषे।।

अनुवाद—अरे भाई! भवसागरसे पार कौन जाएगा? यह कलियुग धन्य है क्योंकि स्वयं भगवान श्रीचैतन्यमहाप्रभु अवतरित होकर हरिनामरूपी नाव लेकर अवतरित हुए। अतः जो इस भवसागरसे पार जाना चाहता है, वे सब मेरे गौरसुन्दरके घाटपर आ जाओ, जहाँपर नामरूपी नौका तैयार खड़ी है। स्वयं गुरुजी इसके नाविक हैं, जो हरिनाम संकीर्तनरूपी चप्पू (नाव चलाने वाला डण्डा) हाथ में लिए हुए हैं। इस घाटपर जड़, अन्धा तथा कातर जो कोई भी क्यों न हो, उसे निःशुल्क ही पार कराया जाता है। पदकर्त्ता श्रीलोचनदास ठाकुरजी कह रहे हैं कि सब जीव तो प्रेमकी हवाके स्पर्शसे ही पार हो गए, परन्तु मैं अपने कर्मोंके कारण यहीं पड़ा रह गया।

n

अवतार–सार, गोरा–अवतार,
केन ना भजिलि ताँरे।
करि' नीरे वास, गेल ना पियास,
आपन करम फेरे।।
कन्टकेर तरु सदाइ सेविलि (मन),
अमृत पाइवार आशे।
प्रेम–कल्पतरु, श्रीगौराङ्ग आमार,
ताँहारे भाविलि विषे।।
सौरभेर आशे, पलाश शुँकिलि (मन),
नाशाते पशिल कीट।
इक्षुदण्ड भावि, काठ चुषिलि (मन),
केमने पाइबि मिठ।।
हार बलिया, गलाय परिलि (मन),
शमन किङ्कर–साप।
शीतल बलिया, आगुन पोहालि (मन),
पाइलि बजर ताप।।

संसार भजिलि श्रीगौराङ्ग भूलिलि,
ना सुनिलि साधुर कथा।
इह परकाल, दुकाल खोयालि (मन),
खाइलि आपन माथा।।

(श्रील लोचनदास ठाकुर)

अनुवाद—अरे मन! तूने समस्त अवतारोंके शिरोमणि श्रीगौरसुन्दरका भजन क्यों नहीं किया? जलमें निवास करते हुए भी तेरी प्यास दूर नहीं हुई, तो इसमें तेरे ही कर्मोंका दोष है क्योंकि तू तो सर्वदा अमृत सदृश सुमिष्ट फलकी प्राप्तिकी आशासे काँटेदार वृक्षकी सेवा करता रहा। परन्तु प्रेमके कल्पवृक्षस्वरूप हमारे श्रीगौरसुन्दरको विष सदृश जानकर उनका परित्याग कर दिया। अरे मन! सुगन्ध प्राप्तिकी आशासे तूने कीड़ोंसे भरे हुए पलास पुष्पको सूँघा जिसके फलस्वरूप वे सब कीड़े तेरी नाकमें घुस गए तथा ईख जानकर एक सूखीसी लकड़ीको चूसा। तू स्वयं विचारकर कि तूझे सुमिष्ट रस कैसे मिलेगा? यमदूत रूपी सर्पोंको (मृत्युको) सुन्दर हार समझकर अपने गलेमें लपेट लिया, दहकती हुई आगको शीतल जानकर तू उसमें प्रवेश कर गया और असह्यकष्टसे बिल-बिलाने लगा। अरे मन! तूने जीवनमें कभी साधुकी बात तो मानी नहीं तथा श्रीगौरसुन्दरको भूलकर संसारका भजन किया। इस प्रकार तूने अपना यह लोक और परलोक दोनोंको ही नष्ट कर दिया।

n

गौरांगेर दूटी पद, जार धन सम्पद,
से जाने भकति रस सार।
गौरांगेर मधुर लीला, जार कर्णे प्रवेशिला,
हृदय निर्म्मल भेल तार।
जे गौरांगेर नाम लय, तार हय प्रेमोदय,
तारे मुइ जाइ बलिहारी।
गौरांग गुणेते झुरे, नित्यलीला तारे स्फुरे,
से जन भकति अधिकारी।।
गौरांगेर संगी गणे, नित्यसिद्ध करि माने,

से जाय ब्रजेन्द्रसुत पाश।
श्रीगौड़मण्डल-भूमि, जेवा जाने चिन्तामणि,
तार हय व्रजभूमे वास।।
गौर प्रेम रसार्णवे, से तरङ्गे जेवा डूबे,
से राधामाधव-अन्तरंग।
गृहे वा बनेते थाके, 'हा गौरांग' बोले डाके,
नरोत्तम मांगे तार सङ्ग।।

अनुवाद—श्रीगौरसुन्दरके श्रीयुगलचरण ही जिनके लिए एकमात्र आश्रयस्वरूप हैं, वे ही व्यक्ति भक्तिरसका अनुभव कर सकते हैं। श्रीगौरसुन्दरकी मधुर लीलाएँ जिनके कानोंमें प्रवेश करती हैं, उनका हृदय निर्मल हो जाता है। जो श्रीगौरसुन्दरका नाम लेते हैं, उनके हृदयमें प्रेम उदित हो जाता है। अतः मैं ऐसे श्रीगौरसुन्दरकी बलिहारी जाऊँ। श्रीगौरसुन्दरके गुणोंमें विभावित होनेसे जिनके हृदयमें भगवानकी लीलाएँ नित्यकाल स्फुरित होती रहती हैं, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। श्रीगौरचन्द्रके परिकरोंको जो नित्यसिद्ध मानते हैं तथा गौड़मण्डलकी भूमिको चिन्तामणि सदृश (अप्राकृत) मानते हैं, उन्हें ब्रजमें श्रीब्रजेन्द्रनन्दनकी सेवा प्राप्त होती है। जो गौरसुन्दरके प्रेमरसके सागरकी तरंगोंमें (लहरोंमें) डूब जाते हैं वे ही राधामाधवके अन्तरंग हो सकते हैं। अतः गृहस्थ आश्रमी हो अथवा त्यागी जो कोई भी गौरसुन्दरके प्रेमरसके सागरमें डूबकर हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग! पुकारते हैं, नरोत्तमदास उनके संगकी कामना करता है।

n

देवादिदेव गौरचन्द्र गौरीदास-मन्दिरे।
नित्यानन्द-संगे गौर अम्बिकाते विहरे।।
चारु-अरुण-गुञ्जाहार हृतकमले ये धरे।
विरिञ्चि-सेव्य पादपद्म लक्ष्मी-सेव्य सादरे।।
तप्तहेम-अङ्गकान्ति प्रातः-अरुण-अम्बरे।
राधिकानुराग प्रेम भक्ति वाञ्छा ये करे।।
शचीसुत गौरचन्द्र आनन्दित अन्तरे।
पाषण्ड-खण्ड नित्यानन्द सङ्गे रङ्गे विहरे।।

नित्यानन्द गौरचन्द्र गौरीदास-मन्दिरे।
गौरीदास करत आश सर्वजीव उद्धारे।।

अनुवाद—देवोंमें परमदेव श्रीगौरसुन्दर श्रीनित्यानन्दप्रभुके साथ अम्बिकाकालनामें गौरीदास पण्डितजीके घरमें विहार कर रहे हैं। उनके हृदयकमल पर अपूर्व सुन्दर अरुण-वर्ण वाले गुञ्जाके हार सुशोभित हो रहे हैं। ब्रह्मा एवं लक्ष्मीजी भी जिनके श्रीचरणकमलोंकी सेवा बहुत आदरपूर्वक करते हैं। उनकी अङ्गकान्ति तप्त-काञ्चन वर्णकी है अर्थात् तपे हुए सोने जैसी है और उन्होंने प्रातःकालके अरुणवर्णवाले वस्त्र धारण किये हैं। वे श्रीराधाजीकी अनुरागमयी प्रेमभक्तिकी वाञ्छा करते हैं। ऐसे श्रीशचीनन्दन गौरहरि अत्याधिक आनन्दित होकर पाषण्ड-दलनकारी श्रीनित्यानन्द प्रभुके संग अतिशय हास-परिहासपूर्वक गौरीदासजीके मन्दिरमें विहार कर रहे हैं। श्रीगौरीदास पण्डित समस्त जीवोंके उद्धार हेतु उन्हींके श्रीचरणोंमें आस लगाए बैठे हैं।

श्रीगौरसुन्दरकी विज्ञप्ति

ओहे, प्रेमेर ठाकुर गोरा।
प्राणेर यातना किवा कब नाथ!
हयेछि आपन-हारा।
कि आर बलिब, जे काजेर तरे
एनेछिले नाथ! जगते आमारे,
एतदिन परे कहिते से-कथा
खेदे दुःखे हइ सारा।
तोमार भजने ना जन्मिल रति,
जड़मोहे मत्त सदा दुरमति—
विषयीर काछे थेके थेके आमि
हइनु विषयीपारा।
के आमि, केन ये एसेछि एखाने,
से-कथा कखनो नाहि भावि मने,

कखनो भोगेर, कखनो त्यागेर
छलनाय मन नाचे।
कि गति हइबे कखनो भावि ना,
हरि-भकतेर काछेओ जाइ ना,
हरि-विमुखेर कुलक्षण जत
आमातेइ सब आछे।
श्रीगुरु-कृपाय भेङ्गेछे स्वपन,
बुझेछि एखन तुमिइ आपन
तव निजजन परम-बान्धव
संसार कारागारे।
आन ना भजिब भक्त-पद बिनु,
रातुल चरणे शरण लइनु,
उद्धारह नाथ! मायाजाल ह'ते
ए दासेर केशे ध'रे।
पातकीरे तुमि कृपा कर नाकि?
जगाइ-माधाइ छिल जे पातकी,
ताहाते जेनेछि, प्रेमेर ठाकुर!
पातकीरेओ तार तुमि।
आमि भक्तिहीन, दीन, अकिञ्चन-
अपराधी-शिरे दाओ दु'चरण,
तोमार अभय श्रीचरणे चिर-
शरण लइनु आमि।

(श्रीसज्जनतोषणी)

अनुवाद—हे प्रेमके ठाकुर श्रीगौरसुन्दर! हे नाथ! मैं अपने दुःख और कष्टोंकी बात क्या कहूँ। मैं तो अपने वास्तविक स्वरूपको ही भूल गया हूँ।

हे नाथ! जिस कामके लिए आपने मुझे जगतमें जन्म दिया आज इतने दिनोंके बाद जब त्रितापोंसे जर्जरित हुआ तो उसका ज्ञान हुआ। हे प्रभो! मैं ऐसा दुर्मति हूँ—आपके भजनमें तो मेरी रति नहीं हुई परन्तु जड़ मोहमें सदा-सर्वदा प्रमत्त रहा। विषयी लोगोंके साथ रहते-रहते मैं तो घोर विषयी हो गया हूँ। मैं कौन हूँ, इस जगतमें

क्यों आया हूँ, इन बातोंपर मैंने कभी विचार ही नहीं किया।

मेरी क्या गति होगी इसका मैंने कभी विचार ही नहीं किया। मैं कभी भी भगवद्भक्तोंके पास नहीं जाता हूँ। तथा भगवत विमुख व्यक्तिके जितने कुलक्षण होते हैं, वे सब मुझमें विद्यमान हैं। हे प्रभो! अब श्रीगुरुदेवकी कृपासे मेरी आँखें खुल गईं अर्थात् अज्ञान दूर हो गया है, अब मैं समझ गया हूँ कि आप ही एकमात्र मेरे हैं तथा आपके निजजन (भक्त) ही परमबन्धु हैं तथा यह संसार तो कारागार है। अब तो मैं भक्तोंके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त अन्य किसीकी सेवा नहीं करूँगा। हे नाथ! अब मैंने आपके अरुणवर्णवाले श्रीचरणकमलोंकी शरण ग्रहण की है। अतः आप मेरे केश पकड़कर मायाजालसे मेरा उद्धार कीजिए। क्या आप पतितोंपर कृपा नहीं करते हैं? तो फिर जगाइ-मधाइ तो पतित ही थे तथा आपने उनपर कृपा की। इसीसे मैं जान गया हूँ कि आप प्रेमके ठाकुर हैं तथा पतितोंका उद्धार करते हैं। हे प्रभो! मैं भी भक्तिहीन दीन एवं अकिञ्चन हूँ। मैं आपके श्रीचरणकमलोंकी नित्यकालके लिए शरण ग्रहण करता हूँ। आप इस अपराधीके सिरपर अपने चरणयुगल रखें।

n

गौराङ्ग तुमि मोरे दया ना छाड़िह।
आपन करिया राङ्गा चरणे राखिह।।
तोमार चरण लागि सब तेयागिलुँ।
शीतल चरण पाइया शरण लइलुँ।।
ए कुले ओ कुले मुञि दिलुँ तिलाञ्जलि।
राखिह चरणे मोरे आपनार बलि।।
वासुदेव घोष बले चरणे धरिया।
कृपा करि राख मोरे पदछाया दिया।।

अनुवाद—हे गौराङ्ग महाप्रभु! आप मेरे प्रति अपनी दया नहीं छोड़ना, मुझे अपना बनाकर रक्तवर्णविशिष्ट अपने श्रीचरणोंमें रखना। आपके श्रीचरणोंकी प्राप्ति हेतु मैंने सबकुछ त्याग कर दिया है, शीतल चरणोंको प्राप्तकर मैंने शरण ली है। मैंने इस कुल और उस कुलको त्याग दिया है, आप मुझे अपना कहकर अपने चरणोंमें

रखना। वासुदेव घोष आपके चरणोंको धारण करके आपसे प्रार्थना करता है कि कृपा करके मुझे अपने चरणोंकी छायामें रखिये।

n

कबे श्रीचैतन्य मोरे करिबेन दया।
कबे आमि पाइबो वैष्णव पद-छाया।।१।।

कबे आमि छाड़िबो ए विषयाभिमान।
कबे विष्णुजने आमि करिबो सम्मान।।२।।

गलवस्त्र कृताञ्जलि वैष्णव-निकटे।
दन्ते तृण करि' दाँड़ाइबो निष्कपटे।।३।।

काँदिया-काँदिया जानाइबो दुःखग्राम।
संसार-अनल हैते मागिबो विश्राम।।४।।

शुनिया आमार दुःख वैष्णव ठाकुर।
आमा लागि' कृष्णे आवेदिबेन प्रचुर।।५।।

वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।
ए हेन पामर प्रति ह'बेन सदय।।६।।

विनोदेर निवेदन वैष्णव-चरणे।
कृपा करि सङ्गे लह एइ अकिञ्चने।।७।।

अनुवाद—अहो! कब श्रीचैतन्य महाप्रभु मुझपर ऐसी कृपा करेंगे कि मैं वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय प्राप्त कर सकूँ। कब मैं विषयोंके अभिमानको त्यागकर वैष्णवोंका सम्मान करूँगा। गलेमें वस्त्र डालकर, दोनों हाथोंको जोड़कर तथा दाँतोंमें तृण धारणकर दीन-हीन भावसे उनके श्रीचरणोंके निकट खड़े होकर रोते-रोते अपने दुःखोंके विषयमें निवेदन करूँगा तथा संसाररूप दावानलसे मुक्ति माँगूँगा। तब वैष्णववृन्द मेरे दुःखोंको सुनकर द्रवितचित्त होकर मेरे लिए श्रीकृष्णके चरणोंमें आवेदन करेंगे तथा वैष्णवोंके निवेदनपर दयामय कृष्ण मेरे जैसे पतितके ऊपर कृपा करेंगे। भक्तिविनोद वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहे हैं कि हे वैष्णव ठाकुर! कृपापूर्वक इस अकिञ्चनको भी अपने चरणोंमें आश्रय प्रदान कीजिए।

आक्षेप

गौरा पंहु ना भजिया मैनु।
प्रेम-रतन-धन हेलाय हाराइनु।।

अधने यतन करि, धन तेयागिनु।
आपन करमदोषे आपनि डुबिनु।।

सत्संग छाड़ि' कैनु असते विलास।
ते-कारणे लागिल ये कर्मबन्ध फाँस।।

विषय विषम विष सतत खाइनु।
गौरकीर्तन-रसे मगन ना हैनु।।

केन वा आछये प्राण कि सुख पाइया।
नरोत्तमदास केन ना गेल मरिया।।

अनुवाद—हाय! हाय! मैंने श्रीगौरसुन्दरका भजन न कर अमूल्य प्रेमधनको उपेक्षा करके खो दिया। उस प्रेमधनका त्यागकर जीवनभर मैं सांसारिक नाशवान विषयोंके संग्रहमें लगा रहा। इस प्रकार अपने कर्मोंके दोषसे मैंने स्वयं ही अपने आपको संसाररूप दुःख सागरमें डुबो दिया। मैं सर्वदा सत्संगका परित्यागकर असत्संगमें रमा रहा तथा विषयरूपी विष खाता रहा। परन्तु श्रीगौरसुन्दरके कीर्तन रसमें मग्न नहीं हो सका, इसीलिए मैं कर्मोंके बन्धनमें (जन्म-मरणके चक्करमें) फँस गया। श्रीनरोत्तमदास ठाकुरजी कहते हैं कि श्रीगौरसुन्दरके भजनके बिना मेरे शरीरमें किस सुखके लिए अभी तक प्राण हैं? मैं अभी तक मर क्यों नहीं गया?।

श्रीश्रीगौरसुन्दरकी शिक्षा

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
प्रभु कहे, कहिलाम एइ महामंत्र।
इहा जप' गिया सबे करिया निर्बन्ध।।

इहा हैते सर्वसिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल' इथे विधि नाहि आर।।
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म।
सर्वमन्त्रसार 'नाम' एइ शास्त्र-मर्म।।
यदि आमा प्रति स्नेह थाके सबाकार।
तबे कृष्ण व्यतिरिक्त ना गाइबे आर।।
साध्य-साधनतत्त्व ये किछु सकल।
हरिनाम-संकीर्तने मिलिबे सकल।।
संकीर्तन हैते पाप-संसार नाशन।
चित्तशुद्धि, सर्वभक्ति-साधन-उद्‌गम।।
कृष्णप्रेमोद्‌गम, प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृत-समुद्रे-मज्जन।।
जे रूपे लइले नाम प्रेम उपजय।
तार लक्षण-श्लोक सुन स्वरूप, रामराय।।
उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम।।
वृक्ष येन काटिलेह किछु ना बोलय।
शुकाञा मैलेह कारे पानी ना मागय।।
जेइ जे मागये तारे देय आपन-धन।
घर्म-वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण।।
उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान।।
एइमत हञा जेइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे तार प्रेम उपजय।।
हर्षे प्रभु कहेन, सुन स्वरूप, रामराय।
नामसंकीर्तन-कलौ परम उपाय।।
संकीर्तन-यज्ञे कलौ कृष्ण-आराधन।
सेइ त सुमेधा पाय कृष्णेर चरण।।
नामसंकीर्तने हय सर्वानर्थ-नाश।
सर्वशुभोदय, कृष्ण प्रेमेर उल्लास।।

× × ×

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति।
कृष्णप्रेम, कृष्ण दिते धरे महाशक्ति।।
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम–संकीर्तन।
निरपराधे नाम लइले पाय प्रेमधन।।

× × ×

अविश्रान्त नामे, नाम–अपराध जाय।
ताहे अपराध कभु स्थान नाहि पाय।।
बल कृष्ण, भज कृष्ण गाओ कृष्ण–नाम।
कृष्ण बिनु केह किछु ना भाविह आन।।
कि भोजने कि शयने किवा जागरणे।
अहर्निश चिन्त कृष्ण बलह वदने।।
ग्राम्यकथा ना सुनिबे, ग्राम्यवार्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे।।
अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे।
ब्रजे राधाकृष्ण–सेवा मानसे करिबे।।

n

श्रीकृष्णकीर्त्तने यदि मानस तोहार।
परम यतने तँहि लभ अधिकार।।
तृणाधिक हीन दीन अकिञ्चन छार।
आपने मानवि सदा छाड़ि' अहङ्कार।।
वृक्षसम क्षमागुण, करवि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि' अन्ये करबि पालन।।
जीवन–निर्वाहे आने उद्वेग ना दिबे।
पर–उपकारे निज सुख पासरिबे।।
हइलेओ सर्वगुणे गुणी महाशय।
प्रतिष्ठाशा छाड़ि' कर अमानी हृदय।।
कृष्ण–अधिष्ठान सर्वजीवे जानि' सदा।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा।।

दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा वर्ज्जन।
चारिगुणे गुणी हइ', करह कीर्त्तन।।
भकति विनोद काँदि बले प्रभुपाय।
हेन अधिकार कबे दिबे हे आमय।।

अनुवाद—हे भाई! श्रीकृष्ण नाम संकीर्त्तनमें यदि तुम्हारा मन है, तो परम यत्नपूर्वक उसके अधिकारको प्राप्त करो। उसके लिए तुम समस्त प्रकारके अहंकारोंको छोड़कर अपनेको तृणसे अधिक दीन–हीन समझना अर्थात् निरभिमानी बनना, वृक्षके समान क्षमाशील बनकर व दूसरोंके प्रति हिंसा त्यागकर उनका पालन करना तथा अपनी जीविका निर्वाह हेतु किसीको उद्वेग नहीं देना और दूसरोंके उपकार हेतु अपने सुखको भी भूल जाना। समस्त गुणोंमें गुणी होकर भी तुम प्रतिष्ठाकी लालसा छोड़कर अमानी बनना तथा समस्त जीवोंमें कृष्णका अधिष्ठान जानकर उन सबको बहुत सम्मान देना। दैन्य, दया, दूसरोंको सम्मान प्रदान और प्रतिष्ठाका त्याग, इन चार गुणोंमें गुणी होकर तुम कीर्त्तन करना। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी रोते हुए प्रभुके चरणोंमें प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! आप कब मुझे ऐसा अधिकार प्रदान करेंगे।

श्रीगौरनित्यानन्द–विज्ञप्ति

परम करुण, पंहु दुइजन,
निताइ गौरचन्द्र।
सब अवतार, सार–शिरोमणि,
केवल आनन्द–कन्द।।१।।
भज भज भाई, चैतन्य–निताई,
सुदृढ़ विश्वास करि'।
विषय छाड़िया, से रसे मजिया,
मुखे बल हरि हरि।।२।।
देख ओरे भाई, त्रिभुवने नाइ,
एमन दयाल दाता।
पशु पाखी झुरे, पाषाण विदरे,
शुनि' यार गुणगाथा।।३।।

संसारे मजिया, रहिले पड़िया,
से पदे नहिल आश।
आपन करम, भुञ्जाय शमन,
कहये लोचनदास।।४।।

अनुवाद—अहो! श्रीगौरचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु दोनों ही परम करुण हैं। ये समस्त अवतारोंके भी शिरोमणि एवं आनन्दके भण्डार हैं। अरे भाई! दृढ़ विश्वासके साथ तुम श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभुका भजन करो तथा विषयोंको त्यागकर इन दोनोंके प्रेमरसमें डूबकर सर्वदा हरि हरि बोलते रहो। देखो भाई! इन तीनों लोकोंमें ऐसा दयालु और दूसरा नहीं है, जिनका गुणगान सुनकर पशु-पक्षियोंका हृदय भी द्रवित हो जाता है। श्रीलोचनदासजी कहते हैं—मैं तो सांसारिक विषयोंमें ही रमा रहा ऐसे दयालु श्रीगौरनित्यानन्दके चरणकमलोंमें मेरी प्रीति नहीं हुई। अतः मेरे दुष्कर्मोंके कारण ही यमके दूत मुझे दुःख भोग करा रहे हैं।

कबे हबे बल से-दिन आमार।
(आमार) अपराध घुचि, शुद्धनामे रुचि,
कृपाबले हबे हृदये सञ्चार।।
तृणाधिक हीन, कबे निज मानि,
सहिष्णुता-गुण हृदयेते आनि।
सकले मानद, आपनि अमानी,
ह'ये आस्वादिव नाम-रस-सार।।
धन जन आर, कविता सुन्दरी,
बलिब ना चाहि देह सुखकरी।
जन्मे जन्मे दाओ, ओहे गौरहरि,
अहैतुकी भक्ति चरणे तोमार।।
(कबे) करिते श्रीकृष्ण- नाम उच्चारण,
पुलकित देह गद्गद वचन।
वैवर्ण्य-वेपथु, ह'बे संघटन
निरन्तर नेत्रे ब'वे अश्रुधार।।

कबे नवद्वीपे, सुरधुनि-तटे
गौर-नित्यानन्द बलि निष्कपटे।
नाचिया गाहिया, बेड़ाइब छुटे,
बातुलेर प्राय छाड़िया विचार।।
कबे नित्यानन्द, मोरे करि दया,
छाड़ाइबे मोर विषयेर माया।
दिया मोरे निज चरणेर छाया
नामेर हाटेते दिबे अधिकार।।
किनिबो, लुटिबो, हरिनाम-रस,
नाम रसे माति हइबो विवश।
रसेर रसिक- चरण परश,
करिया मजिबो रसे अनिवार।।
कबे जीवे दया, हइबे उदय,
निजसुख भुलि सुदीन हृदय।
भकतिविनोद, करिया विनय,
श्रीआज्ञा-टहल करिबे प्रचार।।

अनुवाद—अहो! कब मेरा ऐसा शुभ दिन आएगा जब श्रीगौरसुन्दरकी कृपासे मेरे समस्त प्रकारके अपराध नष्ट हो जाएँगे। जिसके फलस्वरूप शुद्ध नाममें मेरी रुचि हो जाएगी तथा हृदयमें स्फूर्ति होगी। कब मैं अपने हृदयमें सहिष्णुताको धारणकर स्वयंको तृणसे भी अधिक दीन-हीन मानूंगा तथा स्वयं अमानी होकर (अपना सम्मान न चाहकर) दूसरोंको सम्मान प्रदान करूँगा तथा इस प्रकार निरन्तर नामरसका आस्वादन करूँगा। हे गौरसुन्दर! मैं धन, जन, विद्या, सुन्दरी तथा अन्य प्रकारके देहसुखकर वस्तुओंको नहीं चाहता हूँ। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि जन्मजन्मान्तरमें आपके श्रीचरणोंमें ही मेरी अहैतुकी भक्ति रहे।

अहो! कब श्रीकृष्ण नामका उच्चारण करते समय मेरा शरीर पुलकित तथा वाणी गद्गद हो जाएगी। सारा शरीर पसीनेसे लतपथ हो जाएगा तथा नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहेगी। कब मैं नवद्वीपमें गंगाके किनारे निष्कपट (प्रेमपूर्वक) हा गौर! हा

निताई! बोलते हए, नाचते-गाते हुए एक पागल व्यक्ति भी भाँति लोक-लज्जाका परित्यागकर इधर-उधर भागता रहूँगा। अहो! कब नित्यानंदप्रभु कृपा करके मेरे विषयोंके प्रति आनासक्तिको छुड़ाकर अपने श्रीचरणोंकी छाया अर्थात् आश्रय प्रदानकर नामके बाजारमें मुझे अधिकार प्रदान करेंगे। जिससे मैं उस नामके बाजारसे हरिनामरूपी रसको खरीदकर अथवा लूटकर भी पानकर लूंगा तथा नामरससे मेरी मति विवश हो जाएगी और रसिक वैष्णवोंके श्रीचरणोंको स्पर्शकर नामरसमें निमग्न हो जाऊँगा। श्रीभक्तिविनोदठाकुर विनयपूर्वक (दीनतापूर्वक) कह रहे हैं—कब मेरे हृदयमें जीवोंके प्रति दया होगी और मैं अपना सुख भूलकर भी श्रीगौरसुन्दरकी आज्ञा (नाम) पालन कर प्रचार करूँगा।

लालसामयी प्रार्थना

गौराङ्ग बलिते हबे पुलक शरीर।
हरि हरि बलिते नयने ब'बे नीर।।

आर कबे निताइचाँदेर करुणा हइबे।
संसार वासना मोर कबे तुच्छ हबे।।

विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन।।

रूप-रघुनाथ पदे हइबे आकुति।
कबे हाम बुझव से युगल पीरिति।।

रूप-रघुनाथ पदे रहु मोर आश।
प्रार्थना करये सदा नरोत्तमदास।।

अनुवाद—अहो! वह दिन कब आयेगा जब 'हा गौराङ्ग' पुकारते हुए मेरा शरीर पुलकित होगा तथा हरि-हरि बोलते हुए आखोंसे आँसुओंकी धारा बहेगी? कब श्रीनित्यानन्दप्रभुकी कृपासे मेरे हृदयसे सांसारिक वासनाएँ दूर होंगी? विषयोंका परित्यागकर मेरा मन कब शुद्ध होगा, जिससे कि मैं श्रीवृन्दावनधामके चिन्मय स्वरूपका दर्शन करूँगा। कब श्रीरूप गोस्वामी तथा रघुनाथदास गोस्वामीके चरणोंमें मेरी प्रीति होगी कि मैं उनकी कृपासे श्रीराधाकृष्णयुगलकी

प्रीतिको जान पाऊँगा। अतः नरोत्तमदास सर्वदा प्रार्थना करते हैं कि श्रीरूप गोस्वामी एवं रघुनाथदास गोस्वामीके श्रीचरणोंमें ही मेरी एकमात्र आशा रहे।

n

मन रे! कह ना गौर-कथा।
गौरेर नाम, अमियार धाम, पीरिति मूरति दाता।।
शयने गौर, स्वपने गौर, गौर नयनेर तारा।
जीवने गौर, मरणे गौर, गौर गलार हार।।
हियार माझारे, गौराङ्गे राखिये, विरले बसिया रब।
मनेर साधेते, से रूप-चाँदेरे, नयने नयने थोब।।
गौर बिहने, ना बाँचि पराणे, गौर करेछि सार।
गौर बलिया, जाउक जीवन, किछु ना चाहिब आर।।
गौर गमन, गौर गठन, गौर मुखेर हासि।
गौर पीरीति, गौर मूरति, हियाय रहल पशि।।
गौर धरम, गौर करम, गौर वेदेर सार।
गौर चरणे, पराण सँपिनू, गौर करिबेन पार।।
गौर शबद, गौर सम्पद, जाहार हियाय जागे।
नरहरि दास, तार दासेर दास, चरणे शरण मागे।।

अनुवाद—हे मन! गौर सुन्दरकी कथाओंका कीर्तन करो। गौरका नाम अमृतका भण्डार है। वे प्रेमकी मूर्ति हैं तथा दान करनेमें परम उदार हैं। मेरे शयनमें, स्वप्नमें तथा मेरी आँखोंके तारा स्वरूप गौर ही हैं। मेरे जीवनमें अथवा मरणमें केवल गौर ही हैं। गौर ही मेरे गलेका हार हैं। मैं अपने हृदयके मध्यमें गौराङ्गको रखकर एकान्तमें बैठा रहूँगा। मनमें इसी अभिलाषाको लेकर उस रूपचन्द्रको आँखोंके बीचमें रखूँगा। मुझे गौरके बिना जीना नहीं है, क्योंकि मैंने उन्हींको जीवनका सार बनाया है। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए, मेरी केवलमात्र एक ही अभिलाषा है कि जब इस देहसे प्राण निकले, तो गौर कहते-कहते ही निकले। मेरे चलनेमें, मेरे सजनेमें, मेरी हँसीमें, मेरी प्रीतिमें, मेरी मूर्तिमें, मेरे हृदयमें, मेरे धर्ममें, मेरे कर्ममें व वेदोंका सार केवल गौर ही हैं। मैंने अपने प्राणोंको

श्रीगौरसुन्दरके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, वे ही मुझे पार लगायेंगे। गौर-शब्द तथा गौर-सम्पद जिनके हृदयमें जाग उठता है, नरहरिदास उनके दासोंके दासके चरणोंकी शरण माँगते हैं।

n

कबे हबे हेन दशा मोर।
त्यजि जड़ आशा, विविध बन्धन,
छाड़िब संसार घोर।।
वृन्दावनाभेदे, नवद्वीप-धामे,
बाँधिब कुटीरखानि।
शचीर नन्दन, चरण-आश्रय,
करिब सम्बन्ध मानि।।
जाह्नवी-पुलिने, चिन्मय-कानने,
बसिया विजन-स्थले।
कृष्णनामामृत, निरन्तर पिबो,
डाकिबो 'गौराङ्ग' ब'ले।।
हा गौर-निताई, तोरा दुटी भाइ,
पतित जनेर बन्धु।
अधम पतित, आमि हे दुर्जन,
हओ मोरे कृपासिन्धु।।
काँदिते-काँदिते, षोलक्रोश-धाम,
जाह्नवी उभयकूले।
भ्रमिते-भ्रमिते, कभु भाग्यफले,
देखि किछु तरुमूले।।
हा हा मनोहर, कि देखिनु आमि,
बलिया मूर्च्छित ह'बो।
संवित पाइया, काँदिब गोपने,
स्मरि' दुँहु कृपा-लव।।

अनुवाद—अहो! मेरी ऐसी दशा कब होगी, जब मैं सांसारिक समस्त प्रकारकी आशाओं (इच्छाओं) को एवं समस्त प्रकारके सांसारिक बंधनोंको त्यागकर इस घोर अर्थात् दुःखपूर्ण संसारको ही

त्याग दूँगा तथा श्रीवृन्दावनसे अभिन्न श्रीनवद्वीप धाममें एक कुटी बनाकर सम्बन्धज्ञानके साथ श्रीशचीनन्दनके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करूँगा। जाह्नवी (गंगाजी) के चिन्मयकाननमें किसी निर्जन स्थानमें बैठकर सदैव श्रीकृष्ण नामरूपी अमृतका पान करते हुए 'हा गौराङ्ग! हा गौराङ्ग!' पुकारता रहूँगा। हे गौरसुन्दर! हे नित्यानन्दप्रभु! आप दोनों भाई पतितजनोंके परमबंधु हैं, तथा मैं अत्यन्त ही अधम तथा पतित हूँ। अतः मुझ जैसे दुर्जनके प्रति भी आप कृपा दृष्टि कीजिए। सोलह कोस परिमित श्रीनवद्वीपधाममें जाह्नवीके दोनों ही किनारोंपर रोते–रोते भ्रमण करते हुए कभी सौभाग्यवशतः किसी वृक्षके नीचे कुछ देखकर, अहो! यह मैंने क्या देखा, ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाऊँगा तथा कुछ देर बाद होशमें आनेपर एकान्तमें दोनोंकी कृपाका स्मरणकर रोता रहूँगा।

सगण श्रीगौर–कृपा–प्रार्थना

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु दया कर मोरे।
तोमा बिना के दयालु जगत संसारे।।

पतित पावन हेतु तव अवतार।
मो सम पतित प्रभु ना पाइबे आर।।

हा हा प्रभु नित्यानन्द प्रेमानन्द सुखी।
कृपावलोकन कर आमि बड़ दुखी।।

दया कर सीतापति अद्वैत गोसांई।
तब कृपाबले पाइ चैतन्य निताई।।

हा हा स्वरूप, सनातन, रूप, रघुनाथ।
भट्टयुग, श्रीजीव, हा प्रभु लोकनाथ।।

दया करो श्रीआचार्य प्रभु श्रीनिवास।
रामचन्द्र सङ्ग मांगे नरोत्तम दास।।

दया करो प्रभुपाद श्रीदयित दास।
वैष्णवेर कृपा माँगे ए अधम दास।।

दया करो गुरुदेव पतित पावन।
श्रीचरण सेवा मांगे ए पतित जन।।

[श्रीदयितदास=श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती।]

अनुवाद—हे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु! आप मुझपर दया कीजिए। इस संसारमें आपके समान दयालु और कौन है? प्रभो! आपका यह अवतार तो पतितोंका भी उद्धार करनेके लिए ही हुआ है। अतः मेरे समान पतित व्यक्ति आपको इस जगतमें दूसरा नहीं मिलेगा। हे नित्यानन्द प्रभु! आप तो सर्वदा महाप्रभुके प्रेमानन्दमें मत्त रहते हैं। कृपापूर्वक मेरे प्रति भी दृष्टिपात कीजिए, क्योंकि मैं बहुत दुःखी हूँ। हे अद्वैताचार्यजी! आप मुझपर कृपा कीजिए क्योंकि आपकी कृपाके बलसे ही चैतन्य महाप्रभुजीके चरणोंकी प्राप्ति हो सकती है। हे स्वरूप गोस्वामी! हे श्रीसनातन गोस्वामी! हे श्रीरूप गोस्वामी! हे रघुनाथदास गोस्वामी! हे गोपालभट्ट गोस्वामी! हे रघुनाथ भट्ट गोस्वामी! हे श्रीजीव गोस्वामी! हे श्रीलोकनाथदास गोस्वामी आप सब मुझपर कृपा कीजिए, जिससे कि मैं श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीके श्रीचरणोंको प्राप्त कर सकूँ। नरोत्तम ठाकुर प्रार्थना कर रहे हैं—हे श्रीनिवास आचार्यजी! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं श्रीरामचन्द्र कविराज गोस्वामीजीका सङ्ग प्राप्त कर सकूँ। हे प्रभुपाद! अपने इस अधम दासपर कृपा कीजिए कि यह वैष्णवोंकी सेवा प्राप्त कर सके। हे गुरुदेव! आप तो पतित पावन हैं, अतः मुझ पतितपर भी कृपा करके अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान कीजिए।

श्रीगौरनित्यानन्द-निष्ठा

निताइ-गौर-नाम, आनन्देर धाम, जेइ जन नाहि लय।
तारे यमराय, धरे लये जाय, नरके डुबाय ताय।।
तुलसीर हार, ना परे जे छार, यमालये वास ताँर।
तिलक धारण, ना करे जे जन, वृथाय जनम ताँर।।
ना लय हरिनाम, विधि तारे वाम, पामर पाषण्डमति।
वैष्णव-सेवन, ना करे जे जन, कि हबे ताहार गति।।

गुरुमन्त्र सार, कर एइबार, ब्रजेते हइबे वास।
तमोगुण जा'बे, सत्त्वगुण पाबे, हइबे कृष्णेर दास।।
ए दास लोचन, बले अनुक्षण, (निताइ)-गौर-गुण गाओ सुखे।
एइ रसे जा'र, रति ना हइल, चूण-कालि ता'र मुखे।।

अनुवाद—आनन्दके भण्डारस्वरूप श्रीनित्यानन्द एवं श्रीगौरसुन्दर नाम जो लोग नहीं लेते, उन्हें यमराज पकड़कर ले जाते हैं तथा नरककुण्डमें डुबा देते हैं। जो लोग तुलसीकी माला अपने गलेमें धारण नहीं करते एवं ललाट पर तिलक धारण नहीं करते, उनका जन्म तो मानो व्यर्थ ही चला गया। जो हरिनाम ग्रहण नहीं करते, ऐसे पतित एवं पाषण्डियोंका भाग्य ही उनके विपरीत हो जाता है। जो लोग वैष्णवोंकी सेवा नहीं करते हैं, उनकी सद्गति कैसे हो सकती है? अतः आपलोग गुरु-मन्त्र ग्रहण करके उसे अपने जीवनका सार बनाइये, जिससे आपका ब्रजमें वास होगा। उस समय आपका तमोगुण दूर हो जायेगा एवं सत्त्वगुणकी प्राप्ति होगी, जिसके फलस्वरूप आप श्रीकृष्णके दास बन जायेंगे। यह लोचनदास सदासर्वदा कहता है—हे भाइयो! आपलोग आनन्दपूर्वक श्रीगौर-नित्यानन्दका गुणगान कीजिये। इस रसस्वरूप नामके प्रति जिसकी रति नहीं हुई, उसके मुखपर तो मैं चून-कालिख पोतता हूँ अर्थात् मैं उनका मुख भी दर्शन नहीं करना चाहता हूँ।

n

जय जय नित्यानन्दाद्वैत गौराङ्ग।
निताइ गौराङ्ग जय, जय निताइ गौराङ्ग।।१।।

(जय) यशोदानन्दन शचीसुत गौरचन्द्र।
(जय) रोहिणीनन्दन बलराम नित्यानन्द।।२।।

(जय) महाविष्णुर अवतार श्रीअद्वैतचन्द्र।
(जय) गदाधर, श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।३।।

(जय) स्वरूप, रूप, सनातन, राय रामानन्द।
(जय) खण्डवासी, नरहरि, मुरारि, मुकुन्द।।४।।

(जय) पंचपुत्र संगे नाचे राय भवानन्द।

(जय) तिन पुत्र संगे नाचे सेन-शिवानन्द।।५।।

(जय) द्वादश गोपाल आर चौषट्टि महान्त।
(तोमरा) कृपा करि' देह गौरचरणारविन्द।।६।।

अनुवाद—श्रीगौरसुन्दर की जय हो! श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्यजीकी जय हो। यशोदानन्दन जो कि कलियुगमें शचीमाताके पुत्र होकर श्रीगौरचन्द्रके नामसे अवतरित हुए तथा रोहिणीनन्दन जो कि नित्यानन्द प्रभुके रूपमें अवतरित हुए, उनकी जय हो। महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैताचार्य, गदाधर पण्डित एवं श्रीवास आदि महाप्रभुके असंख्य भक्तोंकी जय हो। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूपगोस्वामी, श्रीसनातनगोस्वामी, रायरामानन्द, खण्डवासी नरहरि, मुरारी एवं मुकुन्दकी जय हो। महाप्रभुजीके कीर्तनमें अपने पाँचों पुत्रोंके साथ नृत्य करनेवाले भवानन्दराय तथा अपने तीन पुत्रोंको साथमें लेकर नृत्य करनेवाले शिवानन्द सेनकी जय हो। इनके अतिरिक्त द्वादश गोपाल एवं चौसठ महन्तोंकी जय हो। आप सभी कृपा करके मुझे श्रीगौरसुन्दरके चरणकमलोंको प्रदान कीजिए।

n

एलो गौर-रस-नदी कादम्बिनी ह'ये।
भासाइल गौड़देश प्रेमवृष्टि दिये।।
नित्यानन्द-राय ताहे मारुत सहाय।
जाँहा नाहि प्रेमवृष्टि ताँहा लये जाय।
हुड्हुड् शब्दे आइल श्रीअद्वैतचन्द्र।
जल-रसधारा ताहे राय-रामानन्द।।
चौषट्टि महान्त आइल मेघे शोभा करि'।
श्रीरूप-सनातन ताहे हइल बिजुरि।।
कृष्णदास कविराज रसेर भाण्डारी।
यतने राखिल प्रेम हेमकुण्ड भरि।।
एवे सेइ प्रेम ल'ये जगज्जने दिल।
ए-दास लोचन-भाग्ये बिन्दु ना मिलिल।।

अनुवाद—रसकी नदी श्रीगौरसुन्दर बादल बनकर गौड़-देशमें आये तथा उन्होंने प्रेमरूपी वर्षा द्वारा गौड़ देशको प्लावित कर

दिया। उस समय श्रीनित्यानन्द प्रभु पवनदेवके रूपमें सहायक सिद्ध हुए, जहाँ प्रेमकी वर्षा नहीं हुई, उन्होंने वहाँ पर भी पहुँचा दी। बादलोंके गर्जनके रूपमें श्रीअद्वैतचन्द्र उपस्थित हुए और श्रीरामानन्द रायने जल-रसकी धारा प्रवाहित की। चौंसठ महन्त बादलोंकी शोभा बनकर उपस्थित हुए, उसमें श्रीरूप और सनातन गोस्वामी बिजली बनकर आये। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी रसके भण्डारी हुए, जिन्होंने यत्नपूर्वक स्वर्ण कलशमें उस प्रेमरसको भरकर रख लिया था। अब उसी प्रेमको लाकर जगत् वासियोंमें वितरण किया, परन्तु इस लोचन दासके भाग्यमें एक बूँद भी नहीं आयी।

सपार्षद श्रीगौर-विरह-विलाप

जे आनिल प्रेम-धन करुणा प्रचुर।
हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर।।

काँहा मोर स्वरूप-रूप काँहा सनातन।
काँहा दास रघुनाथ पतित-पावन।।

काँहा मोर भट्टयुग, काँहा कविराज।
एककाले कोथा' गेला गोरा नटराज।।

पाषाणे कुटिबो माथा, अनले पशिबो।
गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाबो।।

से सब संगीर संगे जे कैला विलास।
से संग ना पाइया काँदे नरोत्तम दास।।

अनुवाद—अहो! जो जगतके जीवोंपर प्रचुर करुणापूर्वक दुर्लभ प्रेमधनको लेकर आए, वे आचार्य ठाकुर (अद्वैताचार्य) कहाँ चले गए? मेरे स्वरूप दामोदर, श्रीरूप-सनातन तथा पतितोंको भी पावन करनेवाले रघुनाथ दास गोस्वामी कहाँ गए। मेरे गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, कृष्णदास कविराज गोस्वामी तथा स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु—ये सब एक साथ कहाँ गए? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि इन सबका वियोगमें कैसे सहूँ। अपना सिर पत्थरसे पटक दूँ या आगमें प्रवेश कर जाऊँ, गुणोंके भण्डार श्रीगौरसुन्दरको कहाँ पाऊँ। इन सब परिकरोंके साथ जिन्होंने सुन्दर-सुन्दर लीलाएँ

कीं, उनका संग नहीं पाकर यह नरोत्तमदास विलाप कर रहा है।

स्वाभीष्ट-लालसात्मक-प्रार्थना

श्रीरूपमञ्जरी पद, सेइ मोर सम्पद,
सेइ मोर भजन-पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आभरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।
सेइ मोर रसनिधि, सेइ मोर वांछासिद्धि,
सेइ मोर वेदेर धरम।
सेइ व्रत सेइ तपः, सेइ मोर मन्त्र जप,
सेइ मोर धरम-करम।।
अनुकूल हबे विधि, से पदे हइबे सिद्धि,
निरखिब ए—दुइ नयने।
से रूप माधुरी राशि, प्राण कुवलय-शशी,
प्रफुल्लित ह'बे निशि दिने।।
तुया अदर्शन अहि, गरले जारल देही,
चिरदिन तापित जीवन।
हा हा प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
नरोत्तम लइल शरण।।

अनुवाद—अहो! श्रीरूपमञ्जरीके श्रीचरणकमल ही मेरे एकमात्र सम्पद (सम्पत्ति) हैं। उनकी सेवा ही मेरा भजन पूजन है। वे ही मेरे प्राणधनस्वरूप, आभूषणस्वरूप तथा मेरे जीवनके भी जीवनस्वरूप हैं। वे ही मेरे रसनिधि हैं, उनकी सेवा ही मेरे लिए वाञ्छित है तथा वे ही मेरे लिए वेदोंका धर्मस्वरूप हैं। उनकी सेवा ही मेरा व्रत, तप, जप तथा समस्त प्रकारके धर्मकर्म स्वरूप हैं। जब भाग्य मेरे अनुकूल होगा तब (अर्थात् सौभाग्य उदित होनेपर) उन श्रीचरणकमलोंमें मेरी सिद्धि होगी तथा मैं अपने दोनों नेत्रोंसे उनका दर्शन करूँगा। उनकी रूपमाधुरीका दर्शन कर जिस प्रकार चन्द्रमाके उदित होते ही नीलकमल प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी दिनरात प्रफुल्लित अर्थात् आनन्दित होता रहूँगा। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर कह रहे हैं—हे श्रीरूपगोस्वामी! आपके अदर्शन (विरह) रूपी

सर्पके तीव्र विषसे मेरा शरीर जर्जरित हो रहा है जिससे मेरे प्राण चिरकालसे छटपटा (व्याकुल) रहे हैं। अतः आप कृपाकर मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी छाया प्रदान कीजिए अर्थात् अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान प्रदान कीजिए, मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

n

हरि हरि, कबे मोर हइबे सुदिन।
भजिब श्रीराधाकृष्ण हइया प्रेमाधीन।।

सुयन्त्रे मिशाइया गा'बो सुमधुर तान।
आनन्दे करिबो दुँहार रूप-गुण-गान।।

'राधिका-गोविन्द' बलि' काँदिबो उच्चःस्वरे।
भिजिबे सकल अङ्ग नयनेर नीरे।।

एइबार करुणा कर रूप-सनातन।
रघुनाथदास मोर श्रीजीव जीवन।।

एइबार करुणा करो, ललिता विशाखा।
सख्यभावे श्रीदाम सुबल-आदि सखा।।

सबे मिलि' कर दया पुरुक मोर आश।
प्रार्थना करये सदा नरोत्तमदास।।

अनुवाद—हे हरि! मेरा ऐसा दिन कब आएगा, जब मैं कृष्णप्रेमके वशीभूत होकर राधाकृष्ण श्रीयुगलका भजन करूँगा। मृदंग, करताल आदि वाद्ययन्त्रोंकी सहायतासे सुमधुर ताल स्वर मिलाते हुए दोनोंके रूप एवं गुणोंका गान करूँगा। 'हे राधे! हे गोविन्द!' कहते हुए जोर-जोरसे रोऊँगा तथा आसुओंसे मेरा सारा शरीर भीग जाएगा। हे रूप गोस्वामी! हे सनातन गोस्वामी! हे रघुनाथदास गोस्वामी! हे जीव गोस्वामी! आप एकबार मुझपर करुणा कीजिए। हे ललिताजी! हे विशाखाजी! सख्यभावयुक्त श्रीदाम, सुबल आदि सखा, आप सब लोग मिलकर मुझपर दया कीजिए जिससे कि मेरी आशा पूर्ण हो जाए।

n

सगण श्रीगौर-कृष्णके प्रति दैन्यबोधिका प्रार्थना

हरि हरि! विफले जनम गोंवाइनु।
मनुष्य जनम पाइया, राधाकृष्ण ना भजिया,
जानिया सुनिया विष खाइनु।।
गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।
रति ना जन्मिल केने ताय।
संसार विषानले, दिवानिशि हिया ज्वले,
जुड़ाइते ना कैनु उपाय।।
ब्रजेन्द्रनन्दन जेइ, शचीसुत हैल सेइ,
बलराम हइल निताइ।
दीन हीन जत छिल, हरिनामे उद्धारिल,
ता'र साक्षी जगाइ-माधाइ।।
हा हा प्रभु नन्दसुत, वृषभानु-सुतायुत,
करुणा करह एइबार।
नरोत्तमदास कय, ना ठेलिओ राङ्गापाय,
तोमा बिना के आछे आमार।।

अनुवाद—हे हरि! मैंने दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर भी श्रीराधाकृष्णका भजन न कर उसे व्यर्थ ही गँवा दिया इस प्रकार मैंने तो जान-बूझ कर विष खा लिया। गोलोकका प्रेमधन—हरिनाम संकीर्तनके प्रति मेरी रति क्यों नहीं हुई? संसारके विषयोंकी ज्वालासे मेरा हृदय दिन-रात जल रहा है, परन्तु मैंने कभी इस ज्वालाको शान्त करनेका उपाय ही नहीं किया। श्रीब्रजेन्द्रनन्दनने ही शचीपुत्रके रूपमें तथा श्रीबलरामने ही श्रीनित्यानन्द प्रभुके रूपमें अवतरित होकर जितने भी दीन-हीन जीव थे, उन सबका हरिनामके द्वारा उद्धार कर दिया। जगाई और माधाई इसके प्रमाण हैं। पदकर्ता श्रीनरोत्तमदास ठाकुरजी निवेदन करते हुए कह रहे हैं—हे प्रभो नन्दनन्दन! हे वृषभानुसुता श्रीराधिके! आप एक बार मुझपर करुणा कीजिए। मुझे अपने श्रीचरणोंसे दूर मत हटाइए। क्योंकि आपके अतिरिक्त मेरा इस जगतमें और कौन है?

n

सगण श्रीगौरचरणे सिद्धि–लालसा

कबे गौर–वने, सुरधुनी–तटे,
'हा राधे हा कृष्ण' बले।
काँदिया बेड़ाव, देह सुख छाड़ि,
नाना लता तरु तले।।१।।
(कबे) श्वपच–गृहेते, माँगिया खाइबो,
पिबो सरस्वती–जल।
पुलिने पुलिने, गड़ागड़ि दिबो,
करि कृष्ण–कोलाहल।।२।।
(कबे) धामवासी–जने, प्रणति करिया,
मागिब कृपार लेश।
वैष्णव–चरण– रेणु गाय माखि',
धरि अवधूत वेश।।३।।
(कबे) गौड़–ब्रज–जने, भेद ना देखिबो,
हइबो बरजवासी।
(तखन) धामेर स्वरूप, स्फुरिबे नयने,
हइबो राधार दासी।।४।।

अनुवाद—अहो! ऐसा दिन कब आएगा, जब मैं समस्त प्रकारके शारीरिक सुखोंका परित्यागकर नवद्वीप धाममें गंगाजीके किनारे हे राधे! हे कृष्ण! कहते हुए रोते–रोते लता और वृक्षोंके नीचे भटकता रहूँगा तथा चाण्डालके घरमें भी भिक्षा माँगकर खाऊँगा एवं सरस्वतीका जल पानकर जीवन निर्वाह करूँगा। अहो! कब मैं गंगाके किनारे–किनारे जमीनमें लोटते हुए "कृष्ण–कृष्ण" कहकर शोर मचाऊँगा तथा धामवासी लोगोंको प्रणामकर उनसे कृपाकी मात्र एक बूँद भिक्षा मागूँगा एवं अवधूतवेश धारणकर वैष्णवोंकी चरणरज अपने सारे शरीरमें मलूँगा। अहो! कब मैं गौड़वन (नवद्वीप) व वृन्दावन धाममें भेद न कर ब्रजवासी हो जाऊँगा, जिससे धामका चिन्मय स्वरूप मेरे नयनोंमें स्फुरित होगा अर्थात् मैं दर्शन कर पाऊँगा तथा मैं श्रीमती राधिकाजीकी दासी हो पाऊँगा।

n

श्रीराधा-तत्त्व

राधिकाचरण-पद्म, सकल श्रेयेर सद्म,
यतने जे नाहि आराधिल।
राधा-पदाङ्कित-धाम, वृन्दावन जाँर नाम,
ताहा जे ना आश्रय करिल।।
राधिकाभाव-गंभीर, चित्त जेवा महाधीर,
गण-सङ्ग ना कैल जीवने।
केमने से श्यामानन्द, रससिन्धु-स्नानानन्द,
लभिबे बुझह एकमने।।
राधिका उज्ज्वल-रसेर आचार्य।
राधामाधव-शुद्धप्रेम विचार्य।।
ये धरिल राधापद परम यतने।
से पाइल कृष्णपद अमूल्यरतने।।
राधापद बिना कभु कृष्ण नाहि मिले।
राधार दासीर कृष्ण, सर्ववेदे बले।।
छोड़त धन-जन, कलत्र-सुत-मित,
छोड़त करम-गेयान।
राधा-पदपङ्कज, मधुरत-सेवन,
भकतिविनोद परमाण।।

अनुवाद—श्रीमती राधिकाजीके चरणकमलोंसे अंकित श्रीवृन्दावनधामका आश्रय लेकर जिसने समस्त प्रकारके श्रेयोंके आधार स्वरूप श्रीमती राधिकाजीके चरणोंकी आराधना नहीं की तथा राधाजीके गम्भीर भावोंको हृदयमें धारण करनेवाले उनके निज गणोंका कभी भी सङ्ग नहीं किया, तो विचार कीजिए कि वह किस प्रकार श्रीश्यामसुन्दरके आनन्द-रसके समुद्रमें स्नान करनेका आनन्द प्राप्त कर सकेगा? क्योंकि श्रीमती राधिकाजी तो मधुर रसकी आचार्या हैं। श्रीराधामाधवका शुद्ध प्रेम विचारणीय है। जिसने यत्नपूर्वक राधाजीके चरणकमलोंका आश्रय लिया है, एकमात्र उसीने अमूल्य रत्नस्वरूप श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त किया है। राधाजीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किए बिना कृष्णकी प्राप्ति कदापि संभव नहीं है। परन्तु समस्त वेदशास्त्र इस बातके प्रमाण हैं कि

जिसके हृदयमें राधाजीकी दासीका भाव आ जाता है, उसे सहज ही कृष्णकी प्राप्ति हो जाती है। अतः धन–जन, पत्नी, पुत्र, मित्र, कर्म एवं ज्ञान—सबका परित्यागकर केवलमात्र राधाजीके श्रीचरणकमलोंकी सेवासे ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति संभव है, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर इसके प्रमाण स्वरूप हैं।

श्रीराधा–भजन महिमा–वर्णन

राधा–भजने यदि मति नाहि भेला।
कृष्णभजन तब अकारण गेला।।

आतप–रहित सूरज नाहि जानि।
राधा–विरहित माधव नाहि मानि।।

केवल माधव पूजये, सो अज्ञानी।
राधा–अनादर करइ अभिमानी।।

कबहिँ नाहि करबि ताँकर सङ्ग।
चित्ते इच्छसि यदि ब्रजरस रङ्ग।।

राधिका–दासी यदि होय अभिान।
शीघ्रइ मिलइ तब गोकुल–कान।।

ब्रह्मा, शिव, नारद, श्रुति, नारायणी।
राधिका–पदरज पूजये मानि।।

उमा, रमा, सत्या, शची, चन्द्रा, रुक्मिणी।
राधा–अवतार सबे—आम्नाय–वाणी।।

हेन राधा–परिचर्या जाँकर धन।
भकतिविनोद ताँ'र मागये चरण।।

अनुवाद—श्रीकृष्णका भजन करते हुए भी यदि राधाजीके भजनमें मति नहीं लगी तो समझें कि कृष्णका भजन व्यर्थ ही गया। जिस प्रकार ताप रहित सूर्यको नहीं माना जा सकता उसी प्रकार श्रीराधाजीको छोड़कर मैं केवल माधवको भी नहीं मानता हूँ। परन्तु अज्ञानी लोग मिथ्या अभिमानके कारण राधाजीका अनादरकर केवल माधवकी ही पूजा करते हैं। अतः यदि किसीके हृदयमें ब्रजभावकी

(मधुरभाव) प्राप्तिकी इच्छा हो तो भूलकर भी ऐसे अभिमानियोंका संग न करे। यदि किसीके हृदयमें राधाजीकी दासीका भाव (अभिमान) आ जाय तो शीघ्र ही उसे ब्रजेन्द्रनन्दनकी प्राप्ति हो जाती है। औरोंकी तो बात ही क्या स्वयं ब्रह्मा, शिव, नारद, श्रुतियाँ एवं लक्ष्मी—ये सभी श्रीमती राधिकाजीके श्रीचरणोंकी धूलिकी पूजा करते हैं। उमा, लक्ष्मी, सत्या, शची, चन्द्रा तथा रुक्मिणी—ये सभी श्रीमती राधिकाजीके अवतार हैं, शास्त्र इस बातके प्रमाण हैं। ऐसी श्रीमती राधिकाजीकी सेवा ही जिनका एकमात्र धन है, भक्तिविनोद उनके श्रीचरणोंकी सेवाकी आकांक्षा करता है।

श्रीराधा-निष्ठा

राधिकाचरण-रेणु, भूषण करिया तनु,
अनायासे पाबे गिरिधारी।
राधिका-चरणाश्रय, जे करे से महाशय,
ताँरे मुञि जाँओ बलिहारी।।
जय जय 'राधा' नाम, वृन्दावन याँ'र धाम,
कृष्णसुख विलासेर निधि।
हेन राधा गुण-गान, ना सुनिल मोर कान,
वञ्चित करिल मोरे विधि।।
ताँ'र भक्त सङ्गे सदा, रसलीला प्रेमकथा,
जे करे से पाय घनश्याम।
इहाते विमुख जेइ, तार कभु सिद्धि नाइ,
नाहि जेन सुनि तार नाम।।
कृष्णनाम-गाने भाइ, राधिका-चरण पाइ,
राधानाम-गाने कृष्णचन्द्र।
संक्षेपे कहिनु कथा, घुचाओ मनेर व्यथा,
दुःखमय अन्य कथा-द्वन्द्व।।

(श्रीनरोत्तम ठाकुर)

अनुवाद—श्रीमती राधिकाजीकी चरणधूलिको शरीरपर धारण करनेसे अनायास ही गिरिधारीकी प्राप्ति हो जाती है। जिसने राधाजीके श्रीचरणोंमें आश्रय ग्रहण किया है, वही महाशय धन्य है। मैं उसपर

बलिहारी जाता हूँ। अहो! वृन्दावन जिनका धाम है तथा जो सर्वदा कृष्णको आनन्दित करती हैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी जय हो। हाय! मेरे दुर्भाग्यने मुझे राधाजीका ऐसा गुणगान सुननेसे वञ्चित कर दिया। जो उनके भक्तोंके श्रीमुखसे सर्वदा रसपूर्ण कथाओंको श्रवण करता है, वह श्रीघनश्यामको सहज ही प्राप्त कर लेता है तथा जो इन कथाओंसे विमुख रहता है उसको कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती अर्थात् उसे कृष्णप्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। मैं ऐसे लोगोंका नाम भी सुनना नहीं चाहता। अरे भाई! श्रीकृष्णनामका कीर्तन करनेपर श्रीमती राधिकाजीके चरणकमलोंकी प्राप्ति होती है तथा श्रीमती राधिकाजीके नामका कीर्तन करनेसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो जाती है। पदकर्ता कह रहे हैं—अरे भाइयो! यह मैंने संक्षेपमें बता दिया है कि किस प्रकार राधाकृष्ण युगलकी सेवा प्राप्त की जा सकती है। अतः सांसारिक दुःखमय बातोंको छोड़कर भजन करो तथा अपने उद्विग्न मनका कष्ट दूर करो।

n

कोथाय गो प्रेममयी राधे राधे।
राधे राधे गो, जय राधे राधे।।
देखा दिये प्राण राख राधे राधे।
तोमार काङ्गाल तोमाय डाके राधे राधे।।
राधे वृन्दावन-विलासिनी राधे राधे।
राधे कानुमनमोहिनी राधे राधे।।
राधे अष्टसखीर शिरोमणि राधे राधे।
राधे वृषभानुनन्दिनी राधे राधे।।
(गोसाञी) नियम क'रे सदाइ डाके, राधे राधे।
(गोसाञी) एकबार डाके केशीघाटे।
आबार डाके वंशीवटे, राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके निधुवने।
आबार डाके कुञ्जवने, राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके राधाकुण्डे।
आबार डाके श्यामकुण्डे, राधे राधे।।

(गोसाञी) एकबार डाके कुसुमवने।
आबार डाके गोवर्धने, राधे राधे।।
(गोसाञी) एकबार डाके तालवने।
आबार डाके तमालवने, राधे राधे।।
(गोसाञी) मलिन वसन दिये गाय।
व्रजेर धूलाय गड़ागड़ी जाय, राधे राधे।।
(गोसाञी) मुखे राधा राधा बले।
भासे नयनेर जले, राधे राधे।।
(गोसाञी) वृन्दावने कुलि कुलि केंदे बेड़ाय।
राधा बलि', राधे राधे।।
(गोसाञी) छापान्न दण्ड रात्रि दिने।
जाने ना राधा-गोविन्द बिने, राधे राधे।।
तार पर चारि दण्ड शुति थाके।
स्वपने राधा-गोविन्द देखे, राधे राधे।।

अनुवाद—हे प्रेममयी राधे! आप कहाँ हैं? आपका यह कङ्गाल (दास) आपको पुकार रहा है। एक बार दर्शन प्रदानकर मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिए। हे वृन्दावन विलासिनी श्रीराधे! हे श्रीश्यामसुन्दरके मनको भी हरण करनेवाली श्रीराधे! हे ललिता, विशाखा आदि अष्ट सखियोंकी शिरोमणि, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधे! इस प्रकार श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी सदा नियमपूर्वक श्रीमती राधिकाजीको पुकारते हैं। कभी केशीघाटमें पुकारते हैं, तो कभी वंशीवटमें, कभी निधुवनमें तो कभी कुञ्जवनमें, कभी राधाकुण्डमें, तो कभी श्याम कुण्डमें, कभी कुसुम सरोवरमें, तो कभी गोवर्धनमें, कभी तालवनमें, तो कभी तमालवनमें। शरीरपर मलिन वस्त्र धारणकर ब्रजकी धूलमें लोटपोट हो रहे हैं तथा मुखसे हे राधे! हे राधे! पुकारते हुए उनकी आँखोंसे आसुओंकी धारा बह रही है। वे वृन्दावनकी गलियोंमें रोते-रोते राधे-राधे कहते हुए घूमते हैं। वे रात-दिन छप्पन दण्ड राधा-गोविन्दकी सेवामें ही निमग्न रहते हैं तथा मात्र चार दण्ड शयन करते हैं। परन्तु सोते हुए स्वप्नमें भी राधागोविन्दके दर्शन करते हैं।

n

रमणी–शिरोमणि, वृषभानु नन्दिनी, नीलवसन–परिधाना।
छिन्न–पुरट जिनि, वर्ण–विकाशिनी, बद्धकवरी हरिप्राणा।।
आभरण–मण्डिता, हरिरस पण्डिता, तिलक–सुशोभित भाला।
कञ्चुलिकाच्छादिता, स्तनमणि मण्डिता, कज्ज्वल नयनी रसाला।।

सकल त्यजिया से राधा–चरणे।
दासी ह'ये भज परम–यतने।।
सौन्दर्य–किरण देखिया जाँहार।
रति–गौरी–लीला–गर्व–परिहार ।।
शची–लक्ष्मी–सत्या सौभाग्य–वलने।
पराजित हय जाँहार चरणे।।
कृष्ण–वशीकारे चन्द्रावली–आदि।
पराजय माने हइया विवादी।।
हरिदयित–राधा–चरणप्रयासी ।
भकतिविनोद श्रीगोद्रुमवासी।।

सिद्धि–लालसा

राधा कृष्ण प्राण मोर जुगल किशोर।
जीवने मरणे गति आर नाहि मोर।।
कालिन्दीर कूले केलि कदम्बेर वन।
रतन वेदीर ऊपर बसाब दु'जन।।
श्यामगौरी अङ्गे दिब (चुया) चन्दनेर गन्ध।
चामर ढुलाबो कबे हेरिबो मुखचन्द्र।।
गाँथिया मालतीर माला दिबो दोंहार गले।
अधरे तुलिया दिबो कर्पूर ताम्बूले।।
ललिता विशाखा आदि जत सखीवृन्द।
आज्ञाय करिबो सेवा चरणारविन्द।।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुर दासेर अनुदास।
सेवा अभिलाष करे नरोत्तमदास।।

अनुवाद—राधाकृष्ण युगल किशोर ही मेरे प्राणस्वरूप हैं। इस जीवनमें उनके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई गति (आश्रय) नहीं है। कब मैं कालिन्दीके किनारेपर स्थित कदम्बवृक्षोंके वनमें रत्नजड़ित सिंहासनपर दोनोंको बैठाकर उनके श्रीअंगोंमें चन्दन प्रदान करूँगा

तथा चामर ढुलाते हुए उनके श्रीमुखकमलका दर्शन करूँगा? मैं कब मालती फूलोंकी माला गूँथकर दोनोंके गलेमें पहनाऊँगा, उनके अधरोंपर कर्पूरयुक्त सुगन्धित ताम्बूल अर्पण करूँगा तथा ललिता, विशाखा आदि जितनी भी सखियाँ हैं, उनकी आज्ञानुसार दोनोंके श्रीचरणकमलोंकी सेवा करूँगा। श्रीनरोत्तमदास ठाकुरजी श्रीमन्महाप्रभुके दासोंके अनुदासोंकी सेवाकी अभिलाषा करते हैं।

n

कबे कृष्णधन पाब, हियार माझारे थोब,
जुड़ाइब तापित पराण।
साजाइया दिव हिया, वसाइव प्राणप्रिया,
निरखिब से चन्द्रवयान।।
हे सजनि! कबे मोर हइबे सुदिन।
से प्राणनाथेर सङ्गे, कबे वा फिरिब रङ्गे,
सुखमय यमुनापुलिन।।
ललिता विशाखा लइया, ताँहारे भेटिब गिया,
साजाइया नाना उपहार।
सदय हइया विधि, मिलाइबे गुणनिधि,
हेन भाग्य हइबे आमार।।
दारुण विधिर नाट, भाङ्गिल प्रेमेर हाट,
तिलमात्र ना रखिल तार।
कहे नरोत्तमदास, कि मोर जीवने आश,
छाड़ि गेल ब्रजेन्द्रकुमार।।

n

देखिते देखिते, भुलिब वा कबे,
निज स्थूल परिचय।
नयने हेरिबो, व्रजपुर शोभा,
नित्य चिदानन्दमय।।१।।
वृषभानुपुरे, जनम लईबो,
जावटे विवाह ह'बे।
व्रजगोपी-भाव, हइबे स्वभाव,

आन भाव ना रहिबे।।२।।
निज सिद्धदेह, निज सिद्धनाम,
निजरूप, स्ववसन।
राधाकृपा–बले, लभिब वा कबे,
कृष्णप्रेम – प्रकरण।।३।।
यामुन सलिल, आहरणे गिया,
बुझिबो युगल–रस।
प्रेममुग्ध हये, पागलिनी प्राय,
गाइबो राधार यश।।४।।
(श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर)

हेरिब=देखूँगा, आन=दूसरा, लभिब=प्राप्ति करूँगा, प्रकरण=प्रसंग, सलिल=जल, आहरने=लाने, बुझिब=समझूँगा।

n

हेन काले कबे, विलास मञ्जरी,
अनंग मञ्जरी आर।
आमारे हेरिया, अति कृपा करि,
बलिवे वचन सार।।१।।
एस, एस, सखि! श्रीललिता–गणे,
जानिब तोमारे आज।
गृहकथा छाड़ि, राधाकृष्ण भज,
त्यजिया धरम लाज।।२।।
से मधुर वाणी, सुनिया एजन,
से दुँहार श्रीचरणे।
आश्रय लइबे, दुँहे कृपा करि,
लइबे ललिता–स्थाने।।३।।
ललिता सुन्दरी, सदय हइया,
करिबे आमारे दासी।
स्वकुञ्ज कुटीरे, दिवेन वसति,
जानि सेवा अभिलाषी।।४।।

हेन=उसी, हेरिया=देखकर, एस=आवो, दुँहार=दोनोंके, वसति=वास, स्थान।

पाल्यदासी करि, ललिता सुन्दरी,
आमारे लइया कबे।
श्रीराधिका–पदे, काले मिलाइबे,
आज्ञा सेवा समर्पिबे।।१।।
श्रीरूप मञ्जरी, संगे जाब कबे,
रस–सेवा–शिक्षा–तरे।
तदनुगा ह'ये, राधाकुण्ड–तटे,
रहिब हर्षितान्तरे।।२।।
श्रीविशाखा–पदे, सङ्गीत शिखिव,
कृष्णलीला–रसमय।
श्रीरति मञ्जरी, श्रीरस मञ्जरी,
हइबे सबे सदय।।३।।
परम आनन्दे, सकले मिलिया,
राधिका चरणे रब।
एइ पराकाष्ठा, सिद्धि कबे हबे,
पाव राधा–पदासव।।४।।

पदासव=चरणामृत।

n

चिन्तामणिमय, राधाकुण्ड–तट,
ताहे कुञ्ज शत शत।
प्रवाल–विद्रुम– मय तरुलता,
मुक्ताफले अवनत।।१।।
स्वानन्द सुखद, कुञ्ज मनोहर,
ताहाते कुटिर शोभे।
वसिया तथाय, गाब कृष्ण नाम,
कबे कृष्णदास्य लोभे।।२।।
एमन समय, मुरलीर गान,
पशिवे ए दासी–काने।
आनन्दे मातिब सकल भुलिब,
श्रीकृष्ण–वंशीर गाने।।३।।

राधे राधे बलि' मुरली डाकिबे,
मदीय ईश्वरी नाम।
सुनिया चमकि' उठिबे ए दासी,
केमन करिवे प्राण।।४।।

प्रबाल=मूँगा, विद्रुम=मुक्ता-वृक्ष, अवनत=झुका हुआ, ताहाते=उसमें, तथाय=वहाँ, एमन=ऐसे, पशिवे=प्रवेश करेगा, डाकिबे=पुकारेगी, केमन=कैसा।

n

निर्ज्जन कुटिरे, श्रीराधा-चरण,
स्मरणे थाकिब रत।
श्रीरूप मञ्जरी, धीरे धीरे आसि,
कहिबे आमाय कत।।१।।
बलिबे ओ सखि, कि कर बसिया,
देखह बाहिरे आसि।
युगल मिलन, शोभा निरूपम,
हइबे चरण दासी।।२।।
स्वारसिकी सिद्धि, ब्रजगोपी धन,
परमचञ्चला सती।
योगीर धेयान, निर्विशेष ज्ञान,
ना पाय एखाने स्थिति।।३।।
साक्षात् दर्शन, मध्याह्न लीलाय,
राधापद सेवार्थिनी।
यखन ये सेवा, करह यतने,
श्रीराधा चरणे धनि।।४।।

आमाय=मुझे, कत=कितना, कि कर=क्या कर रही हो, वसि=बैठकर, आसि=आकर, सेवार्थिनी=सेवाभिलाषिणी, यखन=जब, ये=जो, यतने=यत्नपूर्वक, धनि=सखी।

n

श्रीरूप मञ्जरी कबे मधुर वचने।
राधाकुण्ड-महिमा वर्णिबे सङ्गोपने।।१।।

ए चौद्द भुवनोपरि वैकुण्ठ निलय।
तदपेक्षा मथुरा परम श्रेष्ठ हय।।२।।

माथुरमण्डले रासलीला स्थान यथा।
वृन्दावन श्रेष्ठ अति सुन मम कथा।।३।।

कृष्णलीला–स्थल गोवर्धन श्रेष्ठतर।
राधाकुण्ड श्रेष्ठतम सर्वशक्तिधर।।४।।

राधाकुण्ड–महिमा त' करिया श्रवण।
लालायित हये आमि पड़िब तखन।।५।।

सखीर चरण कबे करिब आकुति।
सखी कृपा करि दिबे स्वारसिकी स्थिति।।६।।

संगोपने=निर्जनमें, निलय=भवन, तखन=उसी समय, आकुति=प्रार्थना।

n

वरणे तड़ित्, वास तारावली,
कमल मञ्जरी नाम।
साड़े बार वरष, वयस सतत,
स्वानन्दसुखदधाम ।।१।।
श्रीकर्पूर सेवा, ललितार गण,
राधा यूथेश्वरी हन।
ममेश्वरी–नाथ, श्रीनन्दनन्दन,
आमार पराण धन।।२।।
श्रीरूप मञ्जरी, प्रभृतिर सम,
युगल सेवाय आश।
अवश्य सेरूप, सेवा पाब आमि,
पराकाष्ठा सुविश्वास।।३।।
कबे वा ए दासी, संसिद्धि लभिबे,
राधाकुण्डे वास करि।
राधाकृष्ण–सेवा, सतत करिबे,
पूर्व स्मृति परिहरि।।४।।

n

वृषभानुसुता, चरण सेवने,
हइव ये पाल्यदासी।
श्रीराधार सुख, सतत साधने,
रहिब आमि प्रयासी।।१।।
श्रीराधार सुखे, कृष्णेर ये सुख,
जानिब मनेते आमि।
राधापद छाड़ि, श्रीकृष्णसङ्गमे,
कभु ना हइब कामी।।२।।
सखीगण मम, परम सुहृत्,
युगल प्रेमेर गुरु।
तदनुग हये, सेविब राधार,
चरण कलपतरु।।३।।
राधापक्ष छाड़ि, जे जन से जन,
जे भावे से भावे थाके।
आमि त राधिका, पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताके।।४।।

जे जन=जो सखी, थाके=रहे, हेरि=देखूं, ताके=उसे।

n

श्रीकृष्ण–विरहे, राधिकार दशा,
आमि त' सहिते नारि।
युगल मिलन, सुखेर कारण,
जीवन छाड़िते पारि।।१।।
राधिकाचरण, त्यजिया आमार,
क्षणेके प्रलय हय।
राधिकार तरे, शतवार मरि,
से दुःख आमार सय।।२।।
ए हेन राधार, चरणयुगले,
परिचर्य्या पाब कबे।
हाहा ब्रजजन, मोरे दया करि,
कबे ब्रजवने लबे।।३।।

विलास मञ्जरी, अनङ्ग मञ्जरी,
श्रीरूप मञ्जरी आर।
आमाके तुलिया, लह निजपदे,
देह मोर सिद्धि सार।।४।।

विरहे=विरहमें, क्षणेके=क्षण भरमें, तरे=लिए, सय=सहन कर लूँगी, लबे=ले जावोगे, तुलिया=उठाकर, लह=ले लो।

n

राधे, राधे, राधे, राधे।
वृन्दावन विलासिनी, राधे राधे।।
वृषभानुनन्दिनी, राधे राधे।
गोविन्दानन्दिनी, राधे राधे।।
कानुमनमोहिनी, राधे राधे।
अष्टसखीर शिरोमणि, राधे राधे।।
परम करुणामयी, राधे राधे।
प्रेम भक्ति प्रदायिनी, राधे राधे।।
ऐ बार मोरे दया करो, राधे राधे।
अपराध क्षमा करो, राधे राधे।।
सेवा अधिकार दियो, राधे राधे।
तोमार काङ्गाल तोमाय डाके, राधे राधे।।

अनुवाद—हे वृन्दावनमें विलास करने वाली श्रीराधे! हे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधे! हे गोविन्दको आनन्द प्रदान करने वाली श्रीराधे! कन्हैयाके मनको भी मोहित करने वाली श्रीराधे! हे अष्ट सखियोंकी शिरोमणि श्रीराधे! हे परम करुणामयी श्रीराधे! हे प्रेमाभक्ति प्रदान करने वाली श्रीराधे! आपका यह काङ्गाल आपको पुकार रहा है—आप मात्र एकबार मुझपर कृपाकर मेरे अपराधोंको क्षमा करें तथा मुझे सेवाधिकार प्रदान करें।

श्रीराधाकृष्ण–विज्ञप्ति

श्रीराधाकृष्ण–पदकमले मन।
केमने लभिबे चरम शरण।।

चिरदिन करिया ओ-चरण-आश।
आछे हे बसिया ए अधम दास।।
हे राधे! हे कृष्णचन्द्र! भक्तप्राण।
पामरे युगल-भक्ति कर' दान।।
भक्तिहीन बलि' ना कर' उपेक्षा।
मूर्खजने देह' ज्ञान-सुशिक्षा।।
विषय-पिपासा-प्रपीड़ित दासे।
देह' अधिकार युगल-विलासे।।

चञ्चल-जीवन- स्रोत प्रवाहिया,
कालेर सागरे धाय।
गेल ये दिवस, ना आसिबे आर,
एबे कृष्ण कि उपाय।।
तुमि पतितजनेर बन्धु।
जानि हे तोमारे नाथ,
तुमि त करुणा-जलसिन्धु।।
आमि भाग्यहीन, अति अर्वाचीन,
ना जानि भकति-लेश।
निज-गुणे नाथ, कर आत्मसात्,
घुचाइया भव-क्लेश।।
सिद्ध देह दिया, वृन्दावन माझे,
सेवामृत कर दान।
पियाइया प्रेम, मत्त करि' मोरे,
सुन निज गुणगान।।
युगल सेवाय, श्रीरासमण्डले,
नियुक्त कर आमाय।
ललिता सखीर, अयोग्या किङ्करी,
विनोद धरिछे पाय।।

अनुवाद—श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंमें यह मन किस प्रकार ऐकान्तिकरूपसे शरणागत होगा। यह अधमदास बहुत समयसे उन श्रीचरणोंकी आश लगाये बैठा है। अतः भक्तोंके प्राणस्वरूप हे राधे! हे कृष्णचन्द्र! इस पामरको भी कृपाकर युगलभक्ति प्रदान कीजिए।

भक्तिहीन जानकर आप मेरी उपेक्षा न करें; बल्कि कृपापूर्वक इस मूर्खको तत्त्वज्ञान और भजन शिक्षा प्रदान करें, जिससे कि यह आपकी सेवा कर सके। विषयोंकी तृष्णासे विशेषरूपसे पीड़ित इस दासको श्रीयुगलकी सेवाका अधिकार प्रदान कीजिए। यह चंचल जीवनधारा कालरूपी सागरकी ओर प्रवाहित हो रहा है। इस प्रकार मेरे जीवनका जो अमूल्य समय व्यर्थ ही चला गया वह तो लौटकर नहीं आयेगा। अतः हे कृष्ण! अब इस कालसे बचनेका क्या उपाय करूँ? हे नाथ! आप तो करुणाके सागर हैं तथा मेरे जैसे पतितोंके परम बन्धु हैं। परन्तु मैं अत्यन्त ही दुर्भागा हूँ, भक्तिके विषयमें मुझे लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। हे नाथ! आप अपने गुणोंके द्वारा मुझे अपनी शरण प्रदानकर इस संसाररूपी क्लेशसे अर्थात् जन्म-मरणरूप क्लेशसे बचाइए। आप मुझे सिद्ध देह प्रदानकर वृन्दावनमें अपने श्रीचरणोंका सेवारूपी अमृत प्रदान कीजिए तथा मुझे अपना प्रेमामृत पान कराकर इस प्रकार मत्तकर दीजिए कि मैं सर्वदा आपका गुणगान करता रहूँ। पदकर्त्ता श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ऐसी प्रार्थना कर रहे हैं—हे कृष्ण! आप मुझे श्रीरासमण्डलमें युगलकी सेवामें नियुक्त कीजिए। ललिता सखीकी अयोग्या किंकरी मैं आपके चरणोंको पकड़ रहा हूँ।

श्रीकृष्ण-रूप-वर्णन

जनम सफल ता'र,   कृष्ण दरशन जाँर,
भाग्ये हइयाछे एकबार।
विकशिया हृन्नयन,   करि' कृष्ण-दरशन,
छाड़े जीव चित्तेर विकार।।
वृन्दावन-केलिचतुर वनमाली।
त्रिभङ्ग-भङ्गिमरूप   वंशीधारी अपरूप,
रसमयनिधि, गुणशाली।।
वर्ण नवजलधर   शिरे शिखिपिच्छवर,
अलका तिलक शोभा पाय।
परिधाने पीतवास   बदने मधुर हास
हेन रूप जगत माताय।।

इन्द्रनीलजिनि, कृष्णरूप खानि, हेरिया कदम्बमूले।
मन उचाटन, ना चले चरण, संसार गेलाम भूले।।
(सखि हे) सुधामय, से रूपमाधुरी।
देखिले नयन, हय अचेतन, झरे प्रेममय वारि।।
किवा चूड़ा शिरे, किवा वंशी करे, किवा से त्रिभङ्ग-ठाम।
चरणकमले, अमिया उछले, ताहाते नूपुरदाम।।
सदा आशा करि, भृङ्गरूप धरि, चरणकमले स्थान।
अनायासे पाइ, कृष्णगुण गाइ, आर ना भजिब आन।।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—अहो! उसीका जन्म सार्थक है, सौभाग्यवश जिसको कृष्णका दर्शन हो गया है। क्योंकि अन्तर्दृष्टिसे (भक्तिनेत्रोंसे) कृष्णका दर्शन करनेपर जीवके चित्तका समस्त विकार (काम, क्रोध आदि अनर्थ) दूर हो जाते हैं। वे वनमाली वृन्दावनकेलिमें चतुर हैं, उनका वंशी धारण किए हुआ त्रिभंगरूप अत्यन्त ही रसमय है एवं वे गुणोंके भण्डार स्वरूप हैं। उनके श्रीअंगका वर्ण नवीन मेघके समान है, सिरपर मयूरपंख एवं ललाटपर तिलक एवं अलकावलि सुशोभित हो रही है। उन्होंने पीले वस्त्र धारण किए हैं, तथा श्रीमुख कमलपर मन्द-मन्द मधुर मुस्कान है। उनका ऐसा रूप सारे जगतको प्रमत्त करता है।

अहो! कदम्ब वृक्षकी जड़में (नीचे) इन्द्रनीलमणिकी सुन्दरताको भी पराभूत करने वाले कृष्णके रूपका दर्शनकर मेरा मन तो उचट गया है, चरण भी नहीं चलते इस प्रकार मैं तो संसारको ही भूल गया। हे सखि! उनकी रूपमाधुरी अमृतमय है। जो उसका दर्शनकर लेता है, वह अचेतन हो जाता है तथा उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। उनके सिरपर मुकुट, हाथोंमें वंशी एवं त्रिभंगरूप तथा उनके श्रीचरणकमलोंमें अमृत छलक रहा है जिनमें नूपुर बंधे हुए हैं।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कह रहे हैं—मैं सदैव यही आशा करता हूँ कि भृंग (भौंरा) रूप धारणकर श्रीचरणकमलोंमें अनायास ही स्थान प्राप्तकर निरन्तर कृष्णका गुणगान करता रहूँ। इसके अतिरिक्त और किसीका भजन नहीं करूँगा।

n

बन्धुसंगे यदि तव रङ्ग परिहास, थाके अभिलाष,
(थाके अभिलाष)
तबे मोर कथा राख, जेयो नाको जेयो नाको,
मथुराय केशीतीर्थ-घाटेर सकाश।।
गोविन्द विग्रह धरि, तथाय आछेन हरि,
नयने बङ्किम दृष्टि, मुखे मन्दहास।
किवा त्रिभंगम ठाम, वर्ण समुज्ज्वल श्याम,
नवकिशलय शोभा श्रीअङ्गे प्रकाश।।
अधरे वंशीटी तार, अनर्थेर मूलाधार,
शिखिचूड़ाकेओ भाई करो ना विश्वास।।
से मूर्ति नयने हेरे, केह नाहि घरे फिरे,
संसारी गृहीर जे गो हय सर्वनाश।
(ताई मोर मने बड़ त्रास)
घटिबे विपद भारी, जेयो नाको हे संसारि,
मथुराय केशीतीर्थ-घाटेर सकाश।।

अनुवाद—हे भाई! बन्धु-बान्धवोंके साथ यदि तेरी हास-परिहास करनेकी अभिलाषा हो तो मेरी एक बात मानो, मथुरा (वृन्दावन) में केशी घाटके निकट भूलकर भी मत जाना। वहाँ श्रीहरि गोविन्दजीके रूपमें विराजमान हैं जिनकी बंकिम दृष्टि एवं श्रीमुखकमलपर मन्द-मन्द मुस्कान है। तथा उनका क्या ही सुन्दर त्रिभंगस्वरूप है, उनका वर्ण उज्ज्वल श्यामवर्ण है। उनके अधरोंपर वंशी विराजमान रहती है, जो समस्त अनर्थोंकी मूल आधार है। तथा शिरपर धारण किए हुए मयूरपुच्छका भी विश्वास मत करना। इस स्वरूपको जो अपने नेत्रोंसे एकबार भी दर्शन करता है, वह फिर वापिस घर नहीं लौटता। इस प्रकार संसारी व्यक्तिका सर्वनाश ही हो जाता है। इसीलिए मेरे मनमें भय बैठा है। अतः हे संसारी व्यक्ति! मथुरामें केशीघाटके निकट कभी मत जाना, नहीं तो भयंकर विपदमें फंस जाओगे।

श्रीकृष्ण-विज्ञप्ति

गोपीनाथ, मम निवेदन सुनो।
विषयी दुर्ज्जन, सदा कामरत, किछु नाहि मोर गुण।।

गोपीनाथ, आमार भरसा तुमि।
तोमार चरणे, लइनु शरण, तोमार किङ्कर आमि।।
गोपीनाथ, केमने शोधिबे मोरे।
ना जानि भकति, कर्मे जड़मति, पड़ेछि संसार-घोरे।।
गोपीनाथ, सकली तोमार माया।
नाहि मम बल, ज्ञान सुनिर्मल, स्वाधीन नहे ए काया।।
गोपीनाथ, नियत चरणे स्थान।
मागे ए पामर, काँदिया काँदिया, करहे करुणा दान।।
गोपीनाथ, तुमि त' सकलि पारो।
दुर्ज्जने तारिते, तोमार शकति, के आछे पापीर आर।।
गोपीनाथ, तुमि कृपा-पारावार।
जीवेर कारणे, आसिया प्रपंचे, लीला कैले सुविस्तार।।
गोपीनाथ, आमि कि दोषे दोषी।
असुर-सकल, पाइल चरण, विनोद थाकिल बसि'।।

अनुवाद—हे गोपीनाथ! कृपा करके आप मेरा एक निवेदन सुनिये। मैं अत्यन्त ही विषयी, दुर्जन तथा कामके वशीभूत हूँ, मेरे अन्दर किसी प्रकारका कोई गुण भी नहीं है। मैं तो आपका दास हूँ, आपके श्रीचरणोंमें मैंने शरण ग्रहण की है। क्योंकि एकमात्र आपपर ही मुझे पूरा भरोसा है। हे गोपीनाथ! आप मुझे किस प्रकार सुधारेंगे, क्योंकि मैं भक्तिके विषयमें कुछ भी नहीं जानता तथा मेरी जड़मति कर्मोंमें लगी हुई है, जिसके फलस्वरूप मैं इस घोर संसारमें पड़ा हुआ हूँ। हे गोपीनाथ! यह सब तो आपकी ही माया है। मेरा बल व ज्ञान नहीं है कि मैं उससे पार हो जाऊँ और न ही मेरा शरीर स्वतन्त्र है अर्थात् मेरा शरीर पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्मोंके अधीन है। अतः हे गोपीनाथ! यह पामर व्यक्ति रोते-रोते आपसे यही माँग रहा है कि आप कृपापूर्वक मुझे अपने श्रीचरणोंमें स्थान दीजिए। क्योंकि आप सब कुछ कर सकते हैं। आप तो दुर्जनोंको भी तार सकते हैं। अतः मुझ पापीका भी उद्धार कीजिए क्योंकि आपके अतिरिक्त इस पापीका और कौन है? हे गोपीनाथ! आपकी कृपा

तो असीम है, जीवोंपर कृपापूर्वक उनका उद्धार करनेके लिए ही आप इस जगतमें आकर सुन्दर मनोहारिणी लीलाएँ करते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कहते हैं—हे गोपीनाथ! समस्त असुरोंने भी आपके श्रीचरणोंको प्राप्त कर लिया है। परन्तु मैंने ऐसा कौनसा दोष किया है कि अभी तक मुझपर आपकी कृपा नहीं हुई।

n

हरि हरि! कृपा करि' राख निज पदे।
काम-क्रोध छय जने, लइया फिरे नानास्थाने, विषय भुञ्जाय नानामते।।
हइया मायार दास, करि नाना अभिलाष, तोमार स्मरण गेल दूरे।
अर्थलाभ एइ आशे, कपट वैष्णव-वेशे, भ्रमिया बुलये घरे घरे।।
अनेक दुःखेर परे, लयेछिल ब्रजपुरे, कृपाडोर गलाय बाँधिया।
दैवमाया बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे, भवकूपे दिलेक डारिया।।
पुनः यदि कृपा करि, ए जनार केशे धरि, टानिया तुलह ब्रजधामे।
तबे से देखिये भाल, नतुवा पराण गेल, कहे दीन दास नरोत्तमे।।

अनुवाद—हे हरि! आप कृपा करके मुझे अपने चरणोंमें रखिए। काम, क्रोध आदि छः शत्रु मुझे इधर-उधर ले जाकर अनेक प्रकारसे विषयोंका भोग कराते हैं। अब मैं मायाका दास बनकर अनेक प्रकारकी अभिलाषाएँ करता हूँ, जिससे आपका स्मरण दूर हो गया है। अर्थ प्राप्तिकी आशासे कपट वैष्णव-साधुका वेष धारण करके घर-घरमें घूमता रहता हूँ। आपने मुझे बड़े दुःखोंके पश्चात् कृपारूपी रस्सीको गलेमें बाँधकर ब्रजपुरमें लिया था, परन्तु दैवी मायाने बलपूर्वक उस डोरको खोलकर संसार कूपमें डाल दिया। आप यदि पुनः कृपा करके इस दीनको केशाकर्षण कर ब्रजधाममें खींच लेंगे, तब तो अच्छा है, नहीं तो इस दीन नरोत्तम दासके प्राण तो ऐसे ही निकल जायेंगे।

श्रीकृष्ण-भजन-निष्ठा

ब्रजेन्द्रनन्दन, भजे जेइ जन,
सफल जीवन ता'र।
ताहार उपमा, वेदे नाहि सीमा,

त्रिभुवने नाहि आर।।

एमन माधव, ना भजे मानव,

कखन मरिया जाबे।

सेइ से अधम, प्रहारिया यम,

रौरवे कृमिते खाबे।।

तार पर आर, पापी नाहि छार,

संसार जगत–माझे।

कौनकाले तार, गति नाहि आर,

मिछाइ भ्रमिछे काजे।।

श्रीलोचनदास, भकतिर आश,

हरिगुण कहि लिखि।

हेन रस–सार, मति नाहि जार

ता'र मुख नाहि देखि।।

अनुवाद—अहो! जो ब्रजेन्द्रनन्दनका भजन करता है उसीका जन्म सफल है। त्रिभुवनमें उसके समान कोई नहीं है। उसकी महिमाका वर्णन तो वेद भी सम्पूर्ण रूपसे नहीं कर सकते। ऐसे श्रीमाधवका जो भजन नहीं करता; मरनेके बाद उसे यमराज दण्ड प्रदान करते हैं तथा रौरव नामक नरकमें उसे कीड़े खाते हैं। क्योंकि उसके समान इस संसारमें और कोई पापी नहीं है। सांसारिक अनित्य व क्लेशदायक कार्योंको करते हुए किसी कालमें उसका उद्धार नहीं हो सकता। श्रीलोचनदास ठाकुरजी कह रहे हैं—मैं भक्ति प्राप्तिकी आशासे ही भगवानके गुणोंका वर्णन कर रहा हूँ। ऐसे रसके सार स्वरूप भगवान ब्रजेन्द्रनन्दनके श्रीचरणकमलोंमें जिसकी मति नहीं हुई, मैं उसका मुख भी नहीं देखना चाहता।

n

हरि हरि! कबे हबो वृन्दावनवासी।

निरखिब नयने युगल–रूपराशि।।

त्यजिया शयन सुख विचित्र पालङ्क।

कबे ब्रजेर धूलाय धूसर ह'बे अङ्ग।।

षड्रस भोजन दूर परिहरि।
कबे ब्रजे मागिया खाइबो माधुकरी।।

परिक्रमा करिया बेड़ाबो बने-बने।
विश्राम करिबो जाइ यमुना पुलिने।।

ताप दूर करिबो शीतल वंशीवटे।
(कबे) कुञ्जे-बैठबो हाम वैष्णव-निकटे।।

नरोत्तम दास कहे करि' परिहार।
कबे वा एमन दशा हइबे आमार।।

अनुवाद—हे हरि! मैं कब वृन्दावनवासी होकर अपनी आँखोंसे श्रीराधाकृष्ण युगलके अपूर्व रूप-सौन्दर्यका दर्शन करूँगा? विचित्र पलङ्कपर शयनसुखका परित्यागकर कब ब्रजकी धूलिमें लोटनेसे मेरा शरीर धूलसे भर जाएगा तथा कब छः प्रकारके स्वादपूर्ण भोजनका परित्यागकर ब्रजमें माधुकरी माँगकर खाऊँगा? परिक्रमा करते-करते थक जानेपर एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते हुए यमुनाके किनारे जाकर विश्राम करूँगा? कब वंशीवटकी सुशीतल छायामें बैठकर ताप दूर करूँगा तथा कब कुञ्जोंमें वैष्णवोंके निकट बैठूँगा। श्रीनरोत्तमदास ठाकुर कह रहे हैं—अहो! मेरी ऐसी दशा कब होगी?

आत्म-निवेदन

हरि हे दयाल मोर जय राधानाथ।
बारबार एइबार लह निज साथ।।१।।
बहु योनि भ्रमि' नाथ, लइनु शरण।
निजगुणे कृपा कर अधमतारण।।२।।
जगत-कारण तुमि जगत-जीवन।
तोमा छाड़ा का'र नहि हे राधारमण।।३।।
भुवनमङ्गल तुमि भुवनेर पति।
तुमि उपेक्षिले नाथ, कि हइबे गति।।४।।
भाविया देखिनु एइ जगत-माझारे।
तोमा बिना केह नाहि ए दासे उद्धारे।।५।।

अनुवाद—हे हरि! हे मेरे राधानाथ! आपकी जय हो। मैं पुनः पुनः आपके श्रीचरणकमलोंमें निवेदन करता हूँ कि एक बार आप मुझे अपनी शरणमें ले लो। हे नाथ! मैं बहुत योनियोंमें भ्रमण करनेके बाद आपकी शरणमें आया हूँ। अतः आप अपने गुणोंके द्वारा इस अधमका भी उद्धार करें। हे राधारमण! आप तो जगतके कारण एवं जीवनस्वरूप हैं। आपके अतिरिक्त मेरा और कोई सहारा नहीं है। हे नाथ! आप त्रिभुवनके लिए मंगलस्वरूप तथा जगतके नाथ हैं, अतः यदि आप मेरी उपेक्षा कर देंगे, तो मेरी क्या गति होगी? हे प्रभो! मैंने विचारकर देखा कि इस संसारमें आपके अतिरिक्त कोई दूसरा मेरा उद्धार नहीं कर सकता।

n

माधव, बहुत मिनति करि तोय।
देइ तुलसी तिल, देह समर्पिनु, दया जानि ना छाड़बि मोय।।
गणइते दोष, गुणलेश ना पाओबि, जब तुहुँ करबि विचार।
तुहुँ जगन्नाथ, जगते कहाओसि, जग-बाहिर नहि मुञि छार।।
किये मानुष पशु-पाखी ये जनमिये, अथवा कीट-पतङ्गे।
करम-विपाके, गतागति पुनः पुनः, मति रहु तुया परसङ्गे।।
भनये विद्यापति, अतिशय कातर, तरइते इह भवसिन्धु।
तुया पदपल्लव, करि अवलम्बन, तिल एक देह दीनबन्धु।।

अनुवाद—हे माधव! मैं आपके श्रीपादपद्मोंमें बहुत विनति करता हूँ। मैं आपके चरणोंमें तिल व तुलसी देकर अपनी इस देहको समर्पित करता हूँ, परन्तु मैं आपकी दया तभी समझूँगा जब आप मुझे नहीं छोड़ेंगे अर्थात् स्वीकार कर लेंगे। मेरे दोषोंकी गिनती करते हुए जब आप मेरे प्रति विचार करेंगे, तब तो आपको मुझमें गुणोंका लेशमात्र भी नहीं मिलेगा। परन्तु हे भगवान! आप तो जगत्में जगन्नाथके नामसे परिचित हैं, और मैं अधम भी तो इस जगतसे बाहर नहीं हूँ, अर्थात् आप मेरे भी नाथ हैं। अतः मुझे मेरे कर्मोंके फलस्वरूप मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग इत्यादि किसी भी योनिमें पुनः पुनः आना जाना क्यों न पड़े, परन्तु मेरी केवल यही प्रार्थना है कि मेरा चित्त आपकी कथाओंमें लगा रहे। अत्यधिक

कातर होकर यह विद्यापति भवसिन्धुसे पार होनेके लिए आपके श्रीचरणकमलोंको अवलम्बन करके आपसे प्रार्थना करता है कि हे दीनबन्धो! आप अपनी कृपाका कमसे कम तिलमात्र ही मुझे प्रदान करें।

श्रीनाम-कीर्तन

(हरि) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः।।

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन।।

श्रीचैतन्य नित्यानन्द श्रीअद्वैत सीता।
हरि, गुरु, वैष्णव, भागवत, गीता।।

श्रीरूप, श्रीसनातन, भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव, गोपालभट्ट, दास-रघुनाथ।।

एइ छय गोसाईंर करि चरण वन्दन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्टपूरण।।

एइ छय गोसाईं या'र, मुइ ता'र दास।
ताँ' सबार पदरेणु मोर पंचग्रास।।

ताँ'देर चरण सेवि भक्त सने वास।
जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष।।

एइ छय गोसाईं जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश।।

आनन्दे बल हरि, भज बृन्दावन।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन।।

श्रीगुरु-वैष्णव-पादपद्म करि' आश।
नाम-संकीर्तन कहे नरोत्तमदास।।

अनुवाद—कृष्ण, यादव, माधव, गोपाल, गोविन्द, राम, मधुसूदन, गिरिधारी, गोपीनाथ, मदन मोहन इत्यादि जिनके ये सब नाम हैं, उन हरिको नमस्कार करता हूँ। इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्य

महाप्रभु, श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, सीतादेवी, हरि, गुरु, वैष्णव, भागवत एवं गीता आदिकी जय हो।

तत्पश्चात् मैं श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी इन छहों गोस्वामियोंके श्रीचरणोंकी वन्दना करता हूँ, जिनका स्मरण करने मात्रसे ही समस्त प्रकारके विघ्नोंका नाश होता है तथा समस्त प्रकारकी अभिलाषाएँ (मनोभीष्ट) पूर्ण हो जाती हैं। ये छह गोस्वामी श्रीशचीनन्दन गौरहरिके परमप्रिय परिकर या कृपापात्र हैं। इनकी कृपा बिना श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी मधुरलीलामें प्रवेश करना कदापि संभव नहीं है। अतः उन गोस्वामियोंकी पदरेणु मेरे लिए प्राणदायिनी पञ्चग्रासके समान है। अथवा ये छह गोस्वामी जिनके प्राणधन स्वरूप हैं, मैं उनका दास हूँ। उन सबकी चरणधूलि मेरे लिए पञ्चग्रासके समान है अर्थात् जिस प्रकार अन्नका ग्रास शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करता है, उसी प्रकार उनकी पदधुली भी मेरे हृदयमें कृपाशक्तिका संचारकर ब्रजकी माधुरीमें प्रवेश कराएगी। अतः उनकी पदरेणु पञ्चग्राससे भी महत्वपूर्ण है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं जन्म–जन्मातरोंतक भक्तोंके साथमें रहते हुए उन सभीके श्रीचरणोंकी सेवा करता हूँ। इन छः गोस्वामियोंने ही व्रजमें वास करते समय राधाकृष्णकी सुमधुर लीलाओंको प्रकाशित किया। पदकर्त्ता कह रहे हैं कि आप लोग भी श्रीगुरुवैष्णवोंके चरणकमलोंमें मनको निविष्टकर ब्रजमें वास करते हुए आनन्दपूर्वक "हरि हरि" बोलो। नरोत्तमदास भी श्रीगुरु वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंकी आश लगाकर नाम संकीर्तन कर रहा है।

जय राधे, जय कृष्ण, जय वृन्दावन।
श्रीगोविन्द गोपीनाथ मदनमोहन।।

श्यामकुण्ड राधाकुण्ड गिरि–गोवर्द्धन।
कालिन्दी यमुना जय, जय महावन।।

केशीघाट वंशीवट द्वादश–कानन।
जाँहा सब लीला कैल श्रीनन्दनन्दन।।

श्रीनन्द-यशोदा जय, जय गोपगण।
श्रीदामादि जय, जय धेनु-वत्सगण।।

जय वृषभानु, जय कृत्तिका-सुन्दरी।
जय पौर्णमासी, जय आभीरनागरी।।

जय जय गोपीश्वर वृन्दावन-माझ।
जय जय कृष्णसखा बटु द्विजराज।।

जय रामघाट, जय रोहिणीनन्दन।
जय जय वृन्दावनवासी यत जन।।

जय द्विजपत्नी, जय नागकन्या गण।
भक्तिते जाँहारा पाइल गोविन्दचरण।।

श्रीरासमण्डल जय, जय राधाश्याम।
जय जय रासलीला सर्वमनोरम।।

जय जयोज्ज्वलरस सर्वरस-सार।
परकीयाभावे जाहा ब्रजेते प्रचार।।

श्रीजाह्नवा-पादपद्म करिया स्मरण।
दीन कृष्णदास कहे नाम-संकीर्तन।।

अनुवाद—श्रीमती राधिकाजी, श्रीकृष्ण, श्रीवृन्दावन धाम, श्रीगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथ, श्रीमदनमोहनजीकी जय हो। श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड, गिरिराजजी, यमुनाजी, महावन, केशीघाट, वंशीवट, द्वादशकानन आदि स्थलियाँ जहाँ जहाँ श्रीनन्दनन्दन नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, उन सब लीला स्थलियोंकी जय हो। उनके अतिरिक्त कृष्णके परिकर श्रीनन्दबाबा, श्रीयशोदा मैया, समस्त गोप, श्रीदाम आदि सखाओं एवं गोवत्सोंकी जय हो।

श्रीवृषभानु महाराज, श्रीकृतिकासुन्दरी, श्रीपौर्णमासीजीकी जय हो। वृन्दावनमें श्रीगोपीश्वर महादेव तथा कृष्णके सखा ब्राह्मण श्रेष्ठ मधुमंगलजीकी जय हो। श्रीराम घाट, श्रीरोहिणीनन्दन तथा अन्यान्य वृन्दावनवासियोंकी जय हो। ब्राह्मण पत्नि एवं नागकन्याओंकी जय हो जिन्होंने भक्तिके द्वारा गोविन्दके श्रीचरणोंको प्राप्त कर लिया है। श्रीरासमण्डल, श्रीराधाश्याम एवं अत्यन्त ही मनोरम रासलीलाकी जय हो। समस्त रसोंके सारस्वरूप उज्ज्वल रस (मधुररस) की जय हो

जिसका पारकीय भावके रूपमें ब्रजमें प्रचार है। श्रीजाह्नवाजीके श्रीचरणकमलोंका स्मरण कर यह दीन–हीन कृष्णदास नामसंकीर्तन कर रहा है।

n

जय जय राधे कृष्ण गोविन्द।
राधे गोविन्द राधे गोविन्द।।

जय जय श्यामसुन्दर, मदनमोहन वृन्दावनचन्द्र।
जय जय राधारमण रासबिहारी श्रीगोकुलानन्द।।

जय जय रासेश्वरी विनोदिनी भानुकुलचन्द्र।
जय जय ललिता विशाखा आदि जत सखीवृन्द।।

जय जय श्रीरूपमञ्जरी रति–मञ्जरी–अनङ्ग।
जय जय पौर्णमासी योगमाया जय वीरावृन्द।।

सबे मिलि कर कृपा आमि अति मन्द।
(तोमरा) कृपा करि देह–युगल–चरणारविन्द।।

अनुवाद—श्रीराधागोविन्दकी जय हो! श्रीश्यामसुन्दर, श्रीमदनमोहन, श्रीवृन्दावनचन्द्र, श्रीराधारमण एवं श्रीरासबिहारीकी जय हो! रासेश्वरी विनोदिनी, वृषभानु महाराजकी कुलचन्द्र श्रीराधिकाजीकी जय हो! ललिता, विशाखा आदि जितनी सखियाँ हैं, उन सबकी जय हो! श्रीरूपमञ्जरी, रतिमञ्जरी एवं अनंगमञ्जरीकी जय हो! पौर्णमासी, योगमाया एवं अन्यान्य सखियोंकी जय हो! आप सभी मिलकर मुझपर कृपा कीजिए, मैं अत्यन्त ही मन्द हूँ। आप कृपा करके श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा प्रदान करें।

n

कलिकुक्कुर कदन यदि चाओ (हे)।
कलियुग–पावन, कलिभय–नाशन,
श्रीशचीनन्दन गाओ (हे)।।१।।
गदाधर–मादन, निता'येर प्राणधन,
अद्वैतेर प्रपूजित गोरा।

निमाई विश्वंभर, श्रीनिवास-ईश्वर,
भक्तसमूह-चित-चोरा।।२।।
नदीया-शशधर, मायापुर-ईश्वर,
नाम-प्रवर्तन सुर।
गृहिजन-शिक्षक, न्यासिकुल-नायक,
माधव राधाभावपुर।।३।।
सार्वभौम-शोधन, गजपति-तारण,
रामानन्द-पोषण वीर।
रूपानन्द-वर्धन, सनातन-पालन,
हरिदास-मोदन धीर।।४।।
व्रजरस-भावन, दुष्टमत-शातन,
कपटी-विघातन काम।
शुद्धभक्त-पालन, शुष्कज्ञान-ताड़न,
छलभक्ति-दूषण राम।।५।।

अनुवाद—अरे भाइयो! यदि आप लोग इस कलिरूप कुक्कुरसे (कुत्ते) बचना चाहते हो तो कलियुग पावनावतारी एवं कलिके भयको नाश करनेवाले उन श्रीशचीनन्दका नाम लो, जो श्रीगदाधर पण्डित और नित्यानन्दप्रभुजीके प्राणधनस्वरूप एवं श्रीअद्वैताचार्यके द्वारा पूजित होनेवाले गौरहरि हैं, जिनके निमाई, विश्वम्भर आदि अनेक नाम हैं, जो श्रीनिवास आचार्यके ईश्वर तथा समस्त भक्तोंके चित्तको हरण करनेवाले हैं, जो नदियाके चन्द्रस्वरूप एवं श्रीमायापुरके ईश्वर हैं तथा जो नाम प्रदान करनेके लिए अवतरित हुए हैं। वे गृहस्थ आश्रमियोंको शिक्षा प्रदान करनेवाले, संन्यासियोंके भी शिरोमणि तथा राधाभाव एवं कांतिसे युक्त माधव हैं। उन्होंने सार्वभौमको मायावादके चंगुलसे निकालकर उसके हृदयको शुद्ध किया तथा राजा प्रतापरुद्रका उद्धार किया एवं श्रीरामानन्दरायको अपनी भक्ति प्रदानकर उनका पालन किया।

n

विभावरी–शेष, आलोक–प्रवेश,
निद्रा छाड़ि' उठ जीव।
बोलो हरि हरि, मुकुन्द मुरारि,
राम–कृष्ण हयग्रीव।।
नृसिंह वामन, श्रीमधुसूदन,
ब्रजेन्द्रनन्दन श्याम।
पूतना–घातन, कैटभ–शातन,
जय दाशरथि–राम।।
यशोदा–दुलाल, गोविन्द–गोपाल,
वृन्दावन–पुरन्दर।
गोपीप्रिय–जन, राधिका–रमण,
भुवन–सुन्दरवर।।
रावणान्तकर, माखन–तस्कर,
गोपीजन–वस्त्रहारी।
व्रजेर राखाल, गोपवृन्दपाल,
चित्तहारी वंशीधारी।।
योगीन्द्र–वन्दन, श्रीनन्द–नन्दन,
ब्रजजन भयहारी।
नवीन नीरद, रूप मनोहर,
मोहन–वंशीबिहारी।।
यशोदा–नन्दन, कंस–निसूदन,
निकुञ्जरास विलासी।
कदम्ब–कानन, रास परायण,
वृन्दाविपिन–निवासी।।
आनन्द–वर्द्धन, प्रेम–निकेतन,
फुलशर–योजक काम।
गोपाङ्गनागण, चित्त–विनोदन,
समस्त–गुणगण–धाम।।
यामुन–जीवन, केलि–परायण,
मानसचन्द्र–चकोर।
नाम–सुधारस, गाओ कृष्ण–यश,
राख वचन मन मोर।।

अनुवाद—अरे जीव! रात्रि समाप्त हो गई अर्थात् रात बीत

गई है, उजाला हो गया है। अतः निद्रा त्यागकर उठो तथा हरि, मुकुन्द, राम, कृष्ण, हयग्रीव, नृसिंह, वामन, मधुसूदन, पूतनाको मारनेवाले तथा कैटभ नामक असुरका नाश करनेवाले ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरका नाम लो। रावणका वध करनेके लिए जो दशरथनन्दन रामके रूपमें अवतरित हुए, जो यशोदाके लाड़ले हैं, उन गोपालका नाम लो। जो वृन्दावनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, गोपियोंके प्रियतम हैं तथा राधिकारमण हैं, त्रिभुवनमें जिनके समान सुन्दर अन्य कोई नहीं है। जो घर-घरसे माखन चुराने वाले हैं, गोपियोंके वस्त्र हरण करनेवाले हैं, ब्रज एवं ब्रजवासियोंके रखवाले, वंशीके द्वारा सबके चित्तको हरण करनेवाले, जो योगियोंके वन्दनीय हैं, तथा समस्त ब्रजवासियोंके भयको हरण करनेवाले हैं, तुम उन नन्दनन्दनका नाम लो। जिनका रूप नवीन मेघोंके समान अत्यन्त ही मनोहर है, जो वंशीविहारी हैं, जो मैया यशोदाके नन्दन परन्तु कंसके संहारक हैं, जो निकुञ्जों एवं कदम्ब काननमें रास रचाने वाले हैं, गोपियोंके आनन्दको विशेषरूपसे वर्द्धन करनेवाले हैं एवं प्रेमके भंडार हैं तथा जो पुष्पवाणके द्वारा गोपियोंके कामको बढ़ाने वाले हैं, जो गोपियोंके चित्तको आनन्दित करनेवाले एवं समस्त गुणोंके आश्रय हैं, जो यमुनाजीके जीवनस्वरूप हैं, यमुनाके तटपर नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं तथा जो राधाजीके मनरूपी चन्द्रके चकोर हैं—श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कह रहे हैं—आप लोग मेरी बात मानकर अमृतके समान कृष्णके इन नामों तथा कृष्णके यशका गुणगान करें।

n

यशोमती-नन्दन, ब्रजवर नागर,
गोकुल-रञ्जन कान।
गोपी-पराणधन, मदन-मनोहर,
कालीय-दमन-विधान।।
अमल हरिनाम अमिय-विलासा।
विपिन-पुरन्दर, नवीन नागरवर,
वंशीवदन सुवासा।।
ब्रज-जन-पालन, असुरकुल-नाशन,

नन्द-गोधन-रखवाला।
गोविन्द, माधव, नवनीत-तस्कर,
सुन्दर नन्दगोपाला।।
यामुन-तटचर, गोपी-वसनहर,
रास-रसिक कृपामय।
श्रीराधा-बल्लभ, वृन्दावन-नटवर,
भकतिविनोद आश्रय।।

अनुवाद—ब्रजके श्रेष्ठ नागर जो समस्त गोकुलवासियोंको आनन्द प्रदान करनेवाले, गोपियोंके प्राणधनस्वरूप साक्षात् मदन (कामदेव) के मनको भी हरण करनेवाले एवं कालीयनागका दमन करनेवाले हैं, उन श्रीयशोदानन्दनकी जय हो। उनका नाम अमल है अर्थात् चिन्मय है तथा अमृतके समान है और वे नवीन नागर (श्रीकृष्ण) विपिन (द्वादशवनों एवं उपवनों) के राजा हैं, उनके श्रीमुख (अधरों) पर वंशी सुशोभित हो रही है। ब्रजवासियोंका पालन एवं असुरोंका विनाश करनेवाले, नन्द महाराजकी गायोंकी रक्षा करनेवाले और माखनचुरानेवाले नन्दनन्दनकी जय हो। जिनके गोविन्द, माधव आदि अनेक नाम हैं, जो यमुनाके किनारे नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, गोपियोंके वस्त्रोंको हरण करनेवाले हैं तथा उनके साथ रास रचानेवाले हैं। भक्तिविनोद वृन्दावनके उस श्रेष्ठ नट श्रीराधाबल्लभजीके (राधाजीके प्रणानाथ) श्रीचरणोंमें आश्रय ग्रहण करता है।

n

जय राधामाधव जय कुञ्जबिहारी।
जय गोपीजन वल्लभ जय गिरिवरधारी।।

जय यशोदानन्दन, जय ब्रजजन रञ्जन।
जय यामुनतीर-वनचारी।।

अनुवाद—श्रीराधामाधवकी जय हो! कुञ्जबिहारीकी जय हो! गोपीजन बल्लभकी जय हो! गिरिवरधारीकी जय हो! यशोदानंदनकी जय हो! ब्रजवासियोंको आनन्द प्रदान करनेवाले तथा यमुनाके किनारे वनोंमें विचरण करनेवाले श्यामसुन्दरकी जय हो!

अरुणोदय-कीर्तन

उदिल अरुण पूरब भागे,
द्विजमणि गोरा अमनि जागे,
भकतसमूह लइया साथे,
गेला नगर-ब्राजे।
'ताथइ ताथइ' बाजल खोल,
घन घन ताहे झाँ'जेर रोल,
प्रेमे ढल ढल सोनार अङ्ग,
चरणे नूपुर बाजे।।
मुकुन्द माधव यादव हरि,
बलरे बलरे बदने भरि',
मिछे निद-वशे गेलोरे राति
दिवस शरीर साजे।
एमन दुर्लभ मानव देह,
पाइया कि कर, भावना केह,
एबे ना भजिले यशोदा-सुत,
चरमे पड़िबे लाजे।।
उदित तपन हइले अस्त,
दिन गेल बलि' हइबे व्यस्त,
तबे केन एबे अलस हइ',
ना भज हृदयराजे।
जीवन अनित्य जानह सार,
ताहे नानाविध विपद भार,
नामाश्रय करि' यतने तुमि
थाकह आपन काजे।।
कृष्णनाम सुधा करिया पान,
जुड़ाओ 'भकतिविनोद'-प्राण,
नाम बिना किछु नाहिक आर,
चौद्द भुवन माझे।
जीवेर कल्याणसाधन-काम,
जगते आसि ए मधुर नाम,

अविद्या-तिमिर-तपनरूपे,
हृदगगने विराजे।।

अनुवाद—जैसे ही पूर्वदिशामें अरुणोदय हो गया, उसी क्षण द्विजमणि गौरसुन्दर जाग गये तथा भक्तोंके समूहको साथ लेकर नगरभ्रमणके लिए चल पड़े। "ताथइ-ताथइ" की मधुर ध्वनिसे मृदंग एवं उसीके तालसे ताल मिलाकर झाँझर इत्यादि वाद्य बजने लगे, जिससे प्रेममें आविष्ट होकर श्रीगौरसुन्दरका तपे हुए सोनेके रंग जैसा श्रीअंग ढल ढल करने लगा अर्थात् वे नृत्य करने लगे तथा नृत्य करते हुए उनके श्रीचरणोंके नूपुर बजने लगे। अरे भाइयो! तुम लोगोंने रात तो सोते-सोते एवं दिनको शरीरके श्रृंगारमें व्यतीत कर दिया, परन्तु भगवानका भजन नहीं किया; अतः मुकुन्द, माधव, यादव, हरि इत्यादि भगवन्नामोंका उच्चस्वरसे कीर्तन करो। तुम स्वयं विचार करो कि ऐसा दुर्लभ मानव शरीर प्राप्त करके भी तुम लोग क्या कर रहे हो? ऐसा दुर्लभ मानव शरीरके प्राप्त होनेपर भी यदि यशोदानन्दन श्रीकृष्णका भजन नहीं किया, तो तुम्हारे लिए यह बहुत लज्जाकी बात है। सूर्यके अस्त होनेपर सन्ध्या जानकर तू व्यस्त होगा अर्थात् वृद्धावस्थामें तुम भजन प्रारम्भ करोगे, तो फिर अभी क्यों आलस्य कर रहे हो। हृदयराज श्रीकृष्णका भजन अभीसे क्यों नहीं आरम्भ कर देते? इतना जान लो एक तो यह जीवन अनित्य है तथा उसपर भी इस जीवनमें नाना प्रकारकी विपदाएँ हैं। अतः तुम सावधानीपूर्वक अर्थात् आग्रहपूर्वक नामका आश्रय ग्रहण करो तथा केवल जीवन निर्वाहके उपयोगी सांसारिक व्यवहार करो। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं—आप लोग कृष्णनामरूपी अमृतका पान करें जिससे मुझे सान्त्वना प्राप्त होगी। इन चौदह भुवनोंमें श्रीहरि नामके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जीवोंका कल्याण करनेके लिए ही यह सुमधुर नाम जगतमें प्रकटित हुए, जो अज्ञानरूपी अंधकारसे परिपूर्ण हृदयरूपी आकाशमें सूर्यकी भाँति उदित होकर सारे अज्ञानको दूर कर प्रेमाभक्तिको प्रकाशित कर देते हैं।

जीव जागो, जीव जागो, गोराचाँद बले।
कत निद्रा जाओ माया-पिशाचीर कोले।।

भजिबो बलिया एसे संसार भीतरे।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार भरे।।

तोमारे लइते आमि हइनु अवतार।
आमि बिना बन्धु आर के आछे तोमार।।

एनेछि औषधि माया नाशिवार लागि।
हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि।।

भकतिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया।
सेइ हरिनाम-मन्त्र लइल मागिया।।

अनुवाद—श्रीगौरसुन्दर कह रहे हैं—अरे जीव! जागो, जागो, और कितनी देर तक मायारूपी पिशाचीकी गोदमें सोयेगा। तू इस जगतमें "मैं भजन करूँगा", ऐसी प्रतीज्ञा करके आया था। परन्तु जगतमें आकर अविद्या (माया) में फंसकर तू सब भूल गया है। अतः तुझे लेनेके लिए मैं स्वयं ही इस जगतमें अवतरित हुआ हूँ। अब तू स्वयं विचार कर कि मेरे अतिरिक्त तेरा बन्धु और कौन है? मैं मायाका विनाश करनेवाली औषधि "हरिनाम महामंत्र" लेकर आया हूँ। अतः तुम मुझसे वह महामंत्र मांग लो। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजीने भी श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर वह हरिनाम मंत्र माँग लिया है।

श्रीनगर-कीर्तन

बड़ सुखेर खबर गाई।
सुरभि-कुञ्जेते नामेर हाट खुलेछे खोद-निताइ।।
बड़ मजार कथा ताय।
श्रद्धा मूल्ये शुद्धनाम सेइ हाटेते बिकाय।।
यत भक्तवृन्द बसि।
अधिकारी देखे' नाम वेचछे दर कषि।।
यदि नाम किनबे भाई।
तुमि किनबे कृष्णनाम।
दस्तुरि लईब आमि, पूर्ण ह'बे काम।।

बड़ दयाल नित्यानन्द।
श्रद्धामात्र लये देन परम आनन्द।।
एकबार देखले चक्षे जल।
गौर बले निताइ देन सकल सम्बल।।
देन शुद्ध कृष्ण–शिक्षा।
जाति, धन, विद्याबल ना करे अपेक्षा।।
अमनि छाड़े मायाजाल।
गृहे थाके, वने थाके, ना थाके जञ्जाल।।
आर नाइको कलिर भय।
आचण्ड़ाले देन नाम निताइ दयामय।।
भकतिविनोद डाकि' कय।
निताइचाँदेर चरण बिना आर नाहि आश्रय।।

अनुवाद—श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी सभीको आह्वान करते हुए कह रहे हैं कि मैं बड़े सुखका समाचार सभीको सुना रहा हूँ कि स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभुने सुरभी कुंजमें नामका बाजार खोल दिया है। उससे भी अधिक आनन्दकी बात यह है कि वे केवल मात्र श्रद्धारूपी मूल्यको लेकर नामको बेच रहे हैं। जितने भी भक्तवृन्द आते हैं, उनमेंसे वे अधिकारी देखकर दाम बढ़ाते हुए नाम बेच रहे हैं। हे भाई! यदि नाम खरीदनेकी इच्छा है, तो मेरे साथ चलो, तुम्हें महाजनके पास ले जाऊँ। यदि तुम कृष्णनाम खरीदना चाहते हो, तो मैं उसमें दस्तुरी (Commission) लूँगा, जिससे मेरी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी अर्थात् मेरा भी उद्धार हो जायेगा। श्रीनित्यानन्द प्रभु बड़े दयालु हैं, केवल श्रद्धा लेकर ही परम आनन्दमय प्रेमको प्रदान करते हैं। यदि वे किसीकी आँखोंसे एकबार भी अश्रु बहते हुए देख लेते हैं, तो गौर कहकर सम्पूर्ण प्रेम–धन उसे प्रदान कर देते हैं। वे जाति, धन, विद्याका बल, पौरुष इत्यादिकी अपेक्षा नहीं करके शुद्ध रूपसे कृष्ण–विषयक शिक्षा प्रदान करते हैं, जिससे मायारूपी जाल भी दूर चला जाता है। फिर कोई घरमें रहे अथवा वनमें रहे उसे किसी प्रकारकी कोई असुविधा नहीं होती, यहाँ तक कि कलिका भी कोई भय नहीं रहता। जो नित्यानन्द प्रभु आचण्डाल अर्थात् चण्डाल सहित सभीको नाम प्रदान

करके उनका उद्धार करते हैं, ऐसे दयामय श्रीनित्यानन्द प्रभुके चरण बिना मेरा दूसरा कोई आश्रय नहीं है।

n

गाय गोरा मधुर स्वरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
गृहे थाको वने थाको, सदा हरि बले डाको,
सुखे दुःखे भुल नाको।
बदने हरिनाम कर रे।।
मायाजाले बद्ध ह'ये, आछ मिछे काज ल'ये,
एखनओ चेतन पे'ये।
राधा-माधव नाम बल रे।।
जीवन हइल शेष, ना भजिले हृषीकेश,
भक्तिविनोद-(एइ) उपदेश,
एक बार नामरसे मात रे।।

अनुवाद—अहो! स्वयं भगवान श्रीगौरसुन्दर अत्यन्त ही सुमधुर स्वरसे 'हरे कृष्ण' महामंत्रका कीर्तन कर रहे हैं। अतः हे भाइयो! आप लोग भी घरमें रहें या वनमें अर्थात् गृहस्थाश्रममें रहें या त्यागी आश्रममें अथवा सुखमें रहें या दुःखमें सदैव भगवानका कीर्तन करें। आप लोग माया जालमें आबद्ध होनेके कारण व्यर्थ ही सांसारिक कामोंमें व्यस्त हैं। अब तो होशमें आओ तथा राधामाधवका नाम लो। अरे! व्यर्थके कार्योंमें तुम्हारा तो सारा जीवन ही बीत गया, परन्तु तुमने कभी हृषीकेश (कृष्ण) का भजन नहीं किया। श्रीभक्ति विनोदठाकुर यही उपदेश प्रदान कर रहे हैं—अरे भाइयो! एक बार तो नामरसमें निमग्न हो जाओ।

n

राधाकृष्ण बल् बल् बल रे सबाइ।
(एइ) शिक्षा दिया, सब नदीया,
फिर्‌छे नेचे' गौर-निताइ।

(मिछे) मायारवशे', जाच्छ भेसे,
खाच्छ हाबुडुबु, भाइ।।१।।
(जीव) कृष्णदास, ए विश्वास,
कर्'ले त' आर दुःख नाइ।
(कृष्ण) बल्बे जबे, पुलक ह'बे,
झ'र्बे आँखि, बलि ताइ।।२।।
(राधा) कृष्ण बल, सङ्गे चल,
एइमात्र भिक्षा चाइ।
(जाय) सकल विपद, भक्तिविनोद,
बलेन, जखन ओ–नाम गाइ।।३।।

अनुवाद—श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभुजी नवद्वीपमें नृत्य करते हुए भ्रमण कर रहे हैं तथा जीवोंको शिक्षा दे रहे हैं—अरे भाइयो! सभी लोग मिलकर "राधाकृष्ण" का नाम लो। तुम लोग व्यर्थ ही मायाके वशीभूत होकर संसारके स्रोतमें (जन्ममरणके स्रोतमें) बहते हुए कभी पानीमें डूब रहे हो तो कभी एक क्षणके लिए ऊपर आ रहे हो अर्थात् कभी तो अत्यन्त दुःख भोग रहे हो तो कभी एक क्षणके लिए सुख आ जानेपर आनन्दित हो जाते हो। इस प्रकार अनादि कालसे तुम्हारी यह दुर्दशा हो रही है। परन्तु यदि मात्र एकबार भी तुम्हें यह ज्ञान हो जाए कि "मैं कृष्णका दास हूँ" तो फिर तुम्हें ये दुःख–कष्ट नहीं मिलेंगे तथा जब "कृष्ण" नाम उच्चारण करोगे तो तुम्हारा शरीर पुलकित हो जाएगा तथा आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगेगी। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं—अरे भाई! मैं आप लोगोंसे यही भिक्षा माँगता हूँ कि तुम कृष्ण बोलो, क्योंकि जब कोई व्यक्ति कृष्णनामका गान करता है तो उसी क्षण समस्त प्रकारकी विपदाएँ दूर हो जाती है।

n

गाय गोराचांद जीवेर तरे।
हरे कृष्ण हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे,
हरे कृष्ण हरे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे,
हरे कृष्ण हरे।।
एकबार बल रसना उच्चैःस्वरे,
(बल) नन्देर नन्दन, यशोदा-जीवन,
श्रीराधारमण, प्रेम-भरे।।
(बल) श्रीमधुसूदन, गोपी-प्राणधन,
मुरलीवदन, नृत्य करे।
(बल) अघ-निसूदन, पूतना-घातन,
ब्रह्म-विमोहन, ऊर्द्ध्व-करे।।

(श्रीभक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—अहो! स्वयं भगवान श्रीगौरसुन्दर जीवोंका उद्धार करनेके लिए 'हरे कृष्ण' महामंत्रका कीर्तन कर रहे हैं। अतः श्रीभक्तिविनोदठाकुर कह रहे हैं—हे मेरी जिह्वा! तू एकबार तो उच्चस्वरसे प्रेमपूर्वक श्रीनन्दनन्दन, श्रीयशोदाजीवन, श्रीराधा रमण, इत्यादिका नामोंका कीर्तन कर। जो मधुसूदन हैं अर्थात् मधु नामक दैत्यके हन्तारक हैं अथवा जो गोपियोंके मधुरूपी प्रेमरसका आस्वादन करनेवाले हैं जो गोपियोंके प्राणधन हैं, जिनके अधरोंपर मुरली विद्यमान रहती है तथा जो सुन्दर नृत्य करते हैं, और जो अघासुर तथा पूतना आदि राक्षसोंका संहार करनेवाले हैं एवं ब्रह्माजीको भी मोहित करनेवाले हैं, उनका नाम ले।

भजन-कीर्तन

भाव ना भाव ना, मन, तुमि अति दुष्ट।
(विषय-विषे आछ हे)
काम-क्रोध-लोभ-मोह-मदादि-आविष्ट।।
(रिपुर वशे आछ हे)
असद्वार्ता-भुक्ति-मुक्ति-पिपासा-आकृष्ट।
(असत्कथा भाल लागे हे)
प्रतिष्ठाशा-कुटिनाटि शठतादि-पिष्ट।
(सरल त' ह'ले ना हे)
घिरेछे तोमारे, भाइ, ए सब अरिष्ट।।

(ए सब त' शत्रु हे)
ए सब ना छेड़े' किसे पा'बे राधाकृष्ण।
(यतने छाड़, छाड़ हे)
साधुसंग बिना आर कोथा तव इष्ट?
(साधुसंग कर हे)
वैष्णव–चरणे मज, घुचिबे अनिष्ट।।
(एकबार भेवे, देख हे)

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—पदकर्त्ता श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी इस पदावलीमें साधकोंको अपने मनके माध्यमसे शिक्षा दे रहे हैं—अरे मन! तू बड़ा ही दुष्ट है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विषयोंमें आविष्ट है जो कि तेरे परम शत्रु हैं और तू इन शत्रुओंके वशमें है। तू सर्वदा असद्वार्ता (ग्राम्य कथा), भुक्ति एवं मुक्तिके प्रति आकर्षित रहता है तथा प्रतिष्ठाकी आशा एवं छल–कपटसे ग्रस्त है। सरलता तो तुझमें लेशमात्र भी नहीं है।

अरे भैया मन! तू इन समस्त प्रकारके शत्रुओंसे घिरा हुआ है। इन शत्रुओंको परित्याग किए बिना राधाकृष्णकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? अतः यत्नपूर्वक इन सब अनर्थोंको (शत्रुओं) को छोड़। परन्तु केवलमात्र अपने प्रयाससे ही तू इन सब अनर्थोंको नहीं छोड़ सकता। इसके लिए तू वैष्णवोंके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय ग्रहण कर। उनकी कृपासे सहज ही तेरे समस्त प्रकारके अनर्थ दूर हो जाएँगे और तुझे राधाकृष्णकी प्रेमाभक्ति प्राप्त हो जाएगी। अरे मन! तू इन सब बातोंपर स्वयं विचारकर आचरण कर।

श्रीनाम–महिमा

सइ! केवा सुनाइले श्याम नाम?
कानेर भितर दिया, मरमे पशिल गो,
आकुल करिल मोर प्राण।।
ना जानि कतेक मधु, श्याम नामे आछे गो,
वदन छाड़िते नाहि पारे।

जपिते-जपिते नाम, अवश करिल गो,
केमने पाइबो सइ, तारे।।
नाम-परतापे जार, ऐछन करिल गो,
अङ्गेर परशे किवा हय।
जेखाने वसति तार, सेखाने थाकिया गो,
युवती धरम कैछे रय।।
पासरिते चाहि मने, पासरा ना जाय गो,
कि करिब कि हबे उपाय।
कहे द्विज चण्डीदासे, कुलवती-कुल नाशे,
आपनार यौवन जाचाय।।

अनुवाद—अरे सखि! किसने मुझे यह "श्याम" नाम सुनाया। जिसने कानोंके माध्यमसे हृदयमें प्रवेशकर मुझे व्याकुल कर दिया; न जाने इस नाममें कितना मधु भरा है जो कि मेरी जिह्वा इसे छोड़ नहीं पा रही है। जपते-जपते इस नामने तो मुझे अवश ही कर दिया है। हे सखि! मैं किस प्रकार उसे प्राप्त कर पाऊँगी? जिसके नामके प्रतापने मेरी ऐसी अवस्था कर दी तो उसके श्रीअंगके स्पर्शसे तो क्या दशा होगी, इसका अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। जहाँ वे निवास करते हैं, वहाँ की स्त्रियोंका धर्म कैसे सुरक्षित रहता होगा? मेरा मन उन्हें भूलना चाहता है, परन्तु भूल नहीं पाता; मैं क्या करूँ कुछ समझमें नहीं आता, कि इसका क्या उपाय होगा। द्विज चण्डीदास कह रहे हैं—वे (श्यामसुन्दर) अपना यौवन दिखाकर कुलवती नारियोंके कुलका नाश कर देते हैं।

नाम-तत्त्व

जय जय हरिनाम, चिदानन्दामृतधाम,
परतत्त्व अक्षर आकार।
निज-जने कृपा करि' नामरूपे अवतरि,
जीवे दया करिले अपार।।
जय हरि कृष्णनाम, जगजन-सुविश्राम,
सर्वजन - मानस - रञ्जन।

मुनिवृन्द निरन्तर, जे नामेर समादर,
करि गाय भरिया वदन।।
ओहे कृष्णनामाक्षर, तुमि सर्वशक्तिधर,
जीवेर कल्याण-वितरणे।
तोमा-बिना भवसिन्धु, उद्धारिते नाहि बन्धु,
आसियाछ जीव-उद्धारणे।।
आछे ताप जीवे जत, तुमि सब कर हत,
हेलाय तोमारे एकबार।
डाके यदि कौन जन, हये दीन अकिञ्चन,
नाहि देखि अन्य प्रतिकार।।
तव स्वल्पस्फूर्ति पाय, उग्रताप दूरे जाय,
लिङ्ग-भङ्ग हय अनायासे।
भकतिविनोद कय, जय हरिनाम जय,
प'ड़े थाकि तुया पद-आशे।।

अनुवाद—चिन्मय आनन्दरूपी अमृतके भण्डारस्वरूप श्रीहरिनामकी जय हो, जो और कोई नहीं स्वयं परतत्त्व (भगवान श्रीकृष्ण) ही अपने भक्तोंपर कृपाकर अक्षरके आकारमें नामरूपमें अवतरित हुए हैं तथा जगतके सभी जीवोंपर अपार कृपा की है। हरि, कृष्ण आदि नामोंकी जय हो, जो जगतके जीवोंके आश्रयस्वरूप हैं अर्थात् जिनका आश्रय ग्रहण करनेपर जीवको संसारमें जन्म-मरण चक्करसे विश्राम प्राप्त हो जाता है तथा जो समस्त जीवोंको आनन्द प्रदान करते हैं। मुनिवृन्द भी निरन्तर इन नामोंका आदरपूर्वक पुलकित होकर गान करते हैं। हे कृष्णनाम! आप सर्वशक्तिमान हैं, जीवोंका कल्याण करनेके लिए ही आपका अवतार हुआ है, क्योंकि आपकी कृपाके बिना कोई भी इस भवसागरको पार नहीं कर सकता। यदि कोई एक बार अवहेलापूर्वक भी (अश्रद्धापूर्वक) आपको पुकारता है, तो आप उसके समस्त प्रकारके तापोंको नष्ट कर देते हैं। परन्तु यदि कोई व्यक्ति दीन-हीन एवं अकिञ्चन होकर आपको पुकारता है, तो फिर आप और किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं रखते हैं। हृदयमें आपकी स्फूर्ति होते ही उसके ताप-दुःख-कष्ट सब दूर

हो जाते हैं तथा उसके स्थूल व सूक्ष्म दोनों ही मायिक शरीर दूर हो जाते हैं एवं वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कहते हैं—हे हरिनाम! आपकी जय हो। मैं सर्वदा आपके श्रीचरणोंकी आश लगाए बैठा रहूँगा।

n

नारद मुनि, बाजाय वीणा, राधिकारमण-नामे।
नाम अमनि, उदित हय, भकत-गीत-सामे।।

अमिय-धारा, वरिषे घन, श्रवण-युगले गिया।
भकतजन, सघने नाचे, भरिया आपन हिया।।

माधुरी-पुर, आसव पशि, माताय जगत-जने।
केह वा काँदे, केह वा नाचे, केह माते मने मने।।

पञ्चबदन, नारदे धरि, प्रेमेर सघन रोल।
कमलासन, नाचिया बले, 'बोल बोल हरिबोल'।।

सहस्रानन, परमसुखे, 'हरि हरि' 'बलि' गाय।
नाम-प्रभावे, मातिल विश्व, नाम-रस सबे पाय।।

श्रीकृष्णनाम, रसने स्फुरि, पूराल आमार आश।
श्रीरूप-पदे, याचये इहा, भकतिविनोद दास।।

अनुवाद—परम रसिक श्रीनारद मुनि अपनी वीणाकी मधुर झंकारपर श्रीराधिकारमणका नाम गान करते हैं। जिस प्रकार वैदिक यज्ञमें सामवेदकी ऋचाओंका गान करनेसे यज्ञपति स्वयं प्रकट होकर यज्ञका फल ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार नारद गोस्वामी जैसे रसिक एवं भावुक भक्तोंके नाम संकीर्तनरूप साम गानको श्रवणकर नामी प्रभु श्रीराधारमण स्वयं प्रकट होकर नृत्य करते हुए भक्तोंके भावोंका आस्वादन करते हैं तथा उनके जीवनको धन्यातिधन्य कर देते हैं। तथा वह नामरूप अमृतकी धारा जब भक्तोंके कर्णछिद्रोंमें भी प्रविष्ट होती है तो उनलोगोंका हृदय आनन्दसे भर जाता है, जिससे प्रेममें आविष्ट होकर वे भी नाचने लगते हैं। यह धारा—नामामृतरूपी मदिरा माधुरीपुर (चित्तमें) पहुँचकर सारे जगतको मत्त कर देती है, जिसके प्रभावसे कोई रोने लगता है, तो कोई

नाचने लगता है तथा कोई मन-ही-मन प्रमत्त हो जाता है। शिवजी नारदजीको पकड़कर प्रेमपूर्वक जोर-जोरसे नाम गाते हैं तथा ब्रह्माजी भी नाचते-नाचते "हरि बोल, हरि बोल" बोलने लगते हैं, शेषनागजी बहुत आनन्दित होकर "हरि हरि" बोलने लगते हैं। इस प्रकार नामके प्रभावसे सारा विश्व ही प्रमत्त हो जाता है तथा सभी ऐसे अद्भुत नामरसको प्राप्त कर लेते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी, श्रीरूपगोस्वामीजीके श्रीचरणोंमें प्रार्थना कर रहे हैं कि यह श्रीकृष्णनाम मेरी जिह्वापर स्फुरित होकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।

n

प्रभु! तव पदयुगे मोर निवेदन।
नाहिं मागि देह-सुख, विद्या, धन, जन।।

नाहिं मागि स्वर्ग, आर मोक्ष नाहि मागि।
ना करि प्रार्थना कोन विभूतिर लागि।।

निज-कर्म गुण-दोषे जे जे-जन्म पाइ।
जन्मे-जन्मे जेन तव नाम-गुण गाइ।।

एइ मात्र आशा मम तोमार चरणे।
अहैतुकी भक्ति हृदे जागे अनुक्षणे।।

विषये जे प्रीति एबे आछये आमार।
सेइ मत प्रीति हउक चरणे तोमार।।

विपदे संपदे ताहा थाकुक समभावे।
दिने-दिने वृद्धि हउक नामेर प्रभावे।।

पशु-पक्षी हये थाकि स्वर्गे वा निरये।
तव भक्ति रहु भक्तिविनोद हृदये।।

अनुवाद—हे प्रभु! आपके श्रीचरणोंमें मेरा यह निवेदन है कि मुझे शारीरिक सुख, जड़विद्या, धन-सम्पत्ति तथा जन (पुत्र, पत्नी आदि बन्धु-बान्धव) नहीं चाहिए। और न स्वर्गसुख, मोक्ष (मुक्ति) तथा योग विभूति (आठ प्रकारकी सिद्धियाँ) ही चाहिए। हे प्रभु! अपने कर्मोंके गुण एवं दोषोंके अनुसार अर्थात् सत्कर्म या दुष्कर्मोंके

परिणामस्वरूप मैं जिस किसी भी उत्तम या निष्कृष्ट योनिमें जाउँ, मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि आपकी कृपासे मैं उन-उन योनियोंमें भी आपका गुणगान करता रहूँ। आपके श्रीचरणोंमें मेरी यही एकमात्र आशा है कि मेरे हृदयमें आपकी अहैतुकी भक्ति उदित हो जाय। हे प्रभु! विषयोंमें मेरी जैसी आसक्ति है, वैसी ही आसक्ति आपके श्रीचरणकमलोंमें हो जाय, जो दुःख अथवा सुखमें भी एक समान रहे तथा नामके प्रभावसे दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही रहे। पदकर्त्ता श्रील भक्तिविनोदठाकुर दीनतापूर्वक कह रहे हैं—हे प्रभु! मैं चाहे पशुपक्षी आदिका शरीर प्राप्तकर स्वर्गमें रहूँ अथवा नरकमें, आप मुझपर इतनी कृपा करना कि मेरे हृदयमें आपकी भक्ति नित्यकाल विद्यमान रहे।

n

अनादि करम-फले, पड़ि' भवार्णव-जले,
तरिवारे ना देखि उपाय।
ए विषय-हलाहले, दिवा-निशि हिया ज्वले,
मन कभु सुख नाहि पाय।।
आशा-पाश शतशत, क्लेश देय अविरत,
प्रवृत्ति-उर्मिर ताहे खेला।
काम-क्रोध आदि छय, बाटपाड़े देय भय,
अवसान हैल आसि' बेला।।
ज्ञान-कर्म-ठग दुइ, मोरे प्रतारिया लइ,
अवशेषे फेले सिन्धु-जले।
ए हेन समये बन्धु, तुमि कृष्ण कृपासिन्धु,
कृपा करि' तोल मोरे बले।।
पतित किङ्करे धरि', पादपद्मधूलि करि',
देह भक्तिविनोद आश्रय।
आमि तव नित्यदास, भुलिया मायार पाश,
बद्ध ह'ये आछि दयामय।।

अनुवाद—अहो! मैं अनादि कालसे अनन्त कर्मोंके फलसे इस संसाररूपी सागरके जलमें पड़ा हुआ हूँ तथा इससे पार होनेका कोई

उपाय नहीं देख रहा हूँ। इस संसारके विषयरूपी विषसे मेरा हृदय दिन रात जल रहा है, एक क्षणके लिए भी मेरे मनको चैन नहीं है। सैकड़ों प्रकारकी सांसारिक आशाओंका बंधन मुझे निरन्तर क्लेश प्रदान कर रहा है। उसपर भी प्रवृत्तिरूपी लहरें खेल रही हैं अर्थात् नाना प्रकारके विषयोंको भोगनेकी इच्छाएँ और भी कष्ट प्रदान कर रही हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छः डकैत मुझे भयभीत कर रहे हैं तथा अब तो मेरा जीवन भी समाप्त होने वाला है। ज्ञान व कर्मरूपी दो ठगोंने मेरा सब कुछ (परमार्थ) लूट लिया तथा अन्तमें इस भवसागरके जलमें फेंक दिया। अतः हे कृष्ण! आप तो कृपाके सागर हैं, अब ऐसी स्थितिमें आप ही मेरे एकमात्र बंधु हैं। कृपा करके मुझे बलपूर्वक इस भवसागरसे ऊपर उठा लीजिए। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कहते हैं—हे दयामय! अपने इस पतित किङ्करको अपनी चरणधूलि बनाकर आश्रय प्रदान कीजिए; क्योंकि मैं आपका नित्यदास हूँ। परन्तु मायाके फंदेमें फंसकर मैं आपको भूला हुआ हूँ।

n

तुहुँ दया-सागर तारयिते प्राणी।
नाम अनेक तुया शिखाओलि आनि।।

सकल शकति देइ नामे तोहारा।
ग्रहणे राखिल नाहि काल-विचारा।।

श्रीनामचिन्तामणि तोहारि समाना।
विश्वे बिलाओलि करुणा-निदाना।।

तुया दया ऐछन परम उदारा।
अतिशय मन्द, नाथ! भाग हामारा।।

नाहि जनमल नामे अनुराग मोर।
भकतिविनोद-चित्त दुःखे विभोर।।

अनुवाद—हे प्रभो! आप तो दयाके सागर हैं, जगतके जीवोंपर कृपा करनेके लिए एवं उनका उद्धार करनेके लिए ही आपने अनेक नामोंको जगतमें प्रकाशितकर अपनी समस्त शक्ति उन नामोंमें

भर दी है तथा उन नामोंके कीर्तनमें किसी प्रकारका स्थान एवं कालका विचार भी नहीं रखा है अर्थात् किसी भी समय किसी भी अवस्थामें और किसी भी स्थानपर नामसंकीर्तन किया जा सकता है। हे नाथ! श्रीनामचिन्तामणि आपके समान ही है, जिसको करुणापूर्वक आपने सारे विश्वमें वितरण कर दिया। आप तो परम उदार हैं, आपकी ऐसी अहैतुकी कृपा होनेपर भी, यह तो मेरा ही महादुर्भाग्य है, कि ऐसे नाममें मेरी रुचि नहीं हो रही है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी दीनतापूर्वक कह रहे हैं—मेरा चित्त इसी दुःखसे विभोर है।

मनःशिक्षा

भज भज हरि, मन दृढ़ करि', मुखे बोलो ताँ'र नाम।
ब्रजेन्द्रनन्दन गोपीप्राणधन, भुवनमोहन श्याम।।

कखन मरिबे, केमने तरिबे, विषम शमन डाके।
जाँहार प्रतापे, भुवन काँपये, ना जानि मर विपाके।।

कुल धन पाइया, उन्मत्त हइया, आपनाके जान बड़।
शमनेर दूते, धरि, पाये हाते, बाँधिया करिबे जड़।।

किवा जति सती, किवा नीच जाति, जेइ हरि नाहि भजे।
तबे जनमिया, भ्रमिया भ्रमिया, रौरव-नरके मजे।।

ए दास लोचन, भावे अनुक्षण, मिछाइ जनम गेलो।
हरि ना भजिनु, विषये मजिनु, हृदये रहल शेल।।

अनुवाद—अरे मन! तू इस दृढ़ विश्वासके साथ हरिभजन कर कि हरिभजनके बिना तेरा उद्धार नहीं हो सकता। अतः तू अपने मुखसे ब्रजेन्द्रनन्दन, गोपीप्राणधन अर्थात् जो गोपियोंके प्राणधन हैं तथा सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दर हैं, उनका नाम ले। कब तेरे जीवनका अन्त हो जाएगा, यह कोई निश्चित नहीं है तथा कैसे तेरा उद्धार होगा इसकी भी तुझे चिन्ता नहीं है। परन्तु अत्यन्त ही भयंकर यमदूत तेरे पास ही खड़े हैं। अरे! जिसके प्रतापसे यह त्रिभुवन काँपता है, उन भगवानको तू भूल गया है। अपने इसी दुर्दैवके कारण तू इस संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंसे मर रहा है। उच्चकुलमें जन्म तथा धनके मदमें

प्रमत्त होकर अपनेको श्रेष्ठ मान रहा है। परन्तु तू भूल गया है कि एक दिन यमदूत तेरे हाथ-पैरोंको बाँधकर तूझे ले जाएँगे। कोई संन्यासी हो अथवा किसी नीच जातिका व्यक्ति हो, यदि वह हरिभजन नहीं करता है तो संसारके जन्म-मरणके चक्करमें भ्रमण करते-करते रौरव नामक नरकमें गिर जाता है। श्रीलोचनदास ठाकुर कह रहे हैं—मैंने हरि भजन तो किया नहीं, सदा विषयोंमें ही मग्न रहा। इस प्रकार मेरा मनुष्यजीवन व्यर्थ ही चला गया, यही मेरे हृदयमें कंटक (दुःख) स्वरूप है।

n

भजहुँ रे मन श्रीनन्दनन्दन, अभय चरणारविन्द रे।
दुर्लभ मानव-जनम सत्संगे, तरह ए भव सिन्धु रे।।

शीत आतप, वात बरिषण, ए दिन यामिनी जागि' रे।
विफले सेबिनु कृपण दुरजन, चपल सुख-लव लागि' रे।।

ए धन, यौवन, पुत्र परिजन, इथे कि आछे परतीति रे।
कमलदल-जल, जीवन टलमल, भजहुँ हरिपद निति रे।।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, पादसेवन, दास्य रे।
पूजन, सखीजन, आत्मनिवेदन, गोविन्द दास अभिलाष रे।।

अनुवाद—हे मेरे मन! तुम यह दुर्लभ मानव जन्म प्राप्तकर सत्संगमें ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके अभय अर्थात् समस्त प्रकारके भयोंका विनाश करनेवाले श्रीचरणकमलोंका भजन करो तथा इस अथाह भवसागरको पार कर लो। अरे मन! तू सर्दी-गर्मी, आँधी-तूफान, बरसातमें तथा दिन-रात जागकर इन संसारी दुर्जनोंकी सेवा जिस सुख प्राप्तिकी आशासे कर रहा है वह क्षणभरका सुख तो चंचल अर्थात् अनित्य है। अरे! इस धन, यौवन, पुत्र तथा परिजनोंकी तो बात ही क्या, स्वयं तेरा जीवन ही तो कमलके पत्तेपर स्थित पानीकी बूँदकी भाँति टलमल-टलमल कर रहा है अर्थात् तेरा जीवन भी कब समाप्त हो जाएगा, यह भी निश्चित नहीं है। अतः तुम भगवानके श्रीचरणमकलोंका भजन करो। गोविन्ददास श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, पादसेवन, दास्य, पूजन, सख्य और आत्मनिवेदनरूप नवधा भक्तिकी अभिलाषा करता है।

सुखेर लागिया, ए घर बाँधिनु,
आगुने पुड़िया गेल।
अमिया-सागरे, सिनान करिते,
सकलि गरल भेल।।
सखि! कि मोर कपाले लेखि।
शीतल बलिया, चाँद सेविनु,
भानुर किरण देखि।।
उचल बलिया, अचले चड़िनु,
पड़िनु अगाध जले।
लछमी चाहिते, दारिद्र बेढ़ल,
माणिक हारानु हेले।।
नगर बसालाम, सागर बाँधिलाम,
माणिक पावार आशे।
सागर शुकाल, माणिक लुकाल,
अभागी - करम - दोषे।।
पियास लागिया, जलद सेविनु,
बजर पड़िया गेल।
कहे चण्डीदास, श्यामेर पिरीति,
मरमे रहल शेल।।

अनुवाद—अहो! सुख प्राप्तिकी आशासे मैंने परिश्रम करके यह घर बनाया, परन्तु वह आगमें जल गया। अमृतके सागरमें स्नानके लिए गया तो वह अमृत भी विष सदृश हो गया। हे सखि! मेरा कैसा दुर्भाग्य है। चन्द्रमाकी किरणोंको सुशीतल जानकर अपने तपते हुए शरीरको शीतल करनेके लिए उनकी शरणमें गया परन्तु वे किरणें भी सूर्यकी किरणें हो गईं। ऊँचा जानकर मैं एक पर्वतपर चढ़ गया, तो वहाँसे अगाध समुद्रमें गिर गया। मैंने धनकी इच्छा की तो दरिद्रता ही बढ़ गई तथा मैंने अवहेलापूर्वक मणियोंको खो दिया। उन मणियोंकी प्राप्ति की आशासे मैंने समुद्रको बाँध दिया, परन्तु मुझ अभागेके कर्मोंके दोषके कारण सागर भी सूख गया तथा साथ ही मणियाँ भी अदृश्य हो गईं; जब मुझे प्यास लगी तो मैं मेघोंकी शरणमें गया, परन्तु वर्षा तो नहीं हुई, बल्कि बज्रपात हो

गया। पदकर्त्ता श्रीचण्डीदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरके चरणोंमें मेरी प्रीति नहीं हुई, मेरे हृदयमें यही एक दुःख है।

n

दुर्लभ मानव-जन्म लभिया संसारे।
कृष्ण ना भजिनु-दुःख कहिब काहारे?
'संसार' 'संसार' क'रे मिछे गेल काल।
लाभ ना हइल किछु, घटिल जञ्जाल।।
किसेर संसार एइ, छायाबाजी-प्राय।
इहाते ममता करि' वृथा दिन जाय।।
ए देह पतन ह'ले कि र'बे आमार?
केह सुख नाहि दिबे पुत्र-परिवार।।
गर्द्दभेर मत आमि करि परिश्रम।
का'र लागि' एत करि ना घुचिल भ्रम।।
दिन जाय मिछा काजे, निशा निद्रा-वशे।
नाहि भावि—मरण निकटे आछे ब'से।
भाल मन्द खाइ, हेरि परि चिन्ताहीन।
नाहि भावि, ए देह छाड़िब कोन दिन।।
देह-गेह-कलत्रादि चिन्ता अविरत।
जागिछे हृदये मोर बुद्धि करि' हत।।
हाय, हाय! नाहि भावि, अनित्य ए सब।
जीवन विगते कोथा रहिबे वैभव??
श्मशाने शरीर मम पड़िया रहिबे।
विहङ्ग-पतङ्ग ताय विहार करिबे।।
कुक्कुर श‍ृगाल सब आनिन्दत ह'ये।
महोत्सव करिबे आमार देह ल'ये।।
जे देहेर एइ गति, ता'र अनुगत।
संसार-वैभव आर बन्धुजन यत।।
अतएव मायामोह छाड़ि' बुद्धिमान।
नित्यतत्त्व कृष्णभक्ति करुन सन्धान।।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—इस संसारमें दुर्लभ मानव जन्मको प्राप्त करके भी मैंने कृष्णका भजन नहीं किया, मैं अपना यह दुःख किसको बताऊँ? संसार-संसार कहते हुए व्यर्थ ही समय चला गया, परन्तु कुछ लाभ होनेकी अपेक्षा मैं जञ्जालमें फँस गया। यह संसार केवल परछाईके समान है तथा केवल खेल-तमाशा है, इसमें मोह-ममता करनेसे व्यर्थ ही दिन बीतते हैं। इस देहका पतन होनेपर मेरा क्या रह जायेगा? पुत्र-परिवार आदि कोई भी उस समय मुझे सुख नहीं देगा। मैं गधे जैसा परिश्रम करता हूँ, परन्तु किसके लिए करता हूँ, अभी तक मेरा यह भ्रम ही दूर नहीं हुआ। मेरा दिन व्यर्थके कार्योंमें चला जाता है और रात्रि सोते हुए। फिर भी मुझे कभी चिन्ता ही नहीं होती कि मेरी मृत्यु निकट आ चुकी है। अच्छा-बुरा जो मिलता है, उसीको खाता-पीता और पहनता हूँ। यह तो चिन्ता ही नहीं करता हूँ कि यह देह भी मुझे छोड़नी होगी। शरीर, घर, स्त्री-पुत्र आदि की चिन्तामें दिन-रात डूबे रहनेसे मेरी बुद्धि भी खराब हो गई है। हाय-हाय! मैंने यह कभी भी नहीं सोचा कि यह सब अनित्य है और इस देहसे प्राण निकलने पर यह वैभव कहाँ जायेगा। श्मशानमें मेरा यह शरीर पड़ा रहेगा तथा कीड़े-मकोड़े, पक्षी इत्यादि इस पर विहार करेंगे। कुत्ते, सियार इत्यादि आनन्दित होकर मेरी देहको लेकर महोत्सव करेंगे। हाय! हाय! जिस शरीरकी ऐसी गति है, मैं उसी शरीरसे सम्बन्धित संसारके वैभव और बन्धु-बान्धवोंमें ही फँसा रहा। अतएव हे बुद्धिमान पुरुषो! आप इस माया-मोहको छोड़कर नित्यतत्त्व कृष्णभक्तिकी खोज करें।

ए मन! 'हरिनाम' कर सार।
ए भव-सागर, हबे बालि-चर,
हाँटिया हइबि पार।।
धरम करम, ए जप, ए तप,
ज्ञान-योग-याग-ध्यान।
नहि नहि नहि, कलिते केवल,
उपाय 'गोविन्द'-नाम।।

भुकति मुकति, जे-गति से-गति,
ताहे ना करिह रति।
मेघेर छायाय, जुड़ान जेमन,
कह ना से कौन् गति।।
बदन भरिया, 'हरि हरि' बले,
एमन सुलभ कबे।
भारत-भूमेते, मानुष-जनम,
आर कि एमन हबे।।
जतेक पुराण- प्रमाण देख ना,
नामेर समान नाइ।
नामे रति हैले, प्रेमेर उदय,
प्रेमेते हरिके पाइ।।
श्रवण, कीर्तन, कर अनुक्षण,
असत पचाल छाड़िँ।
कहे प्रेमानन्द, मानुष-जनम,
सफल कर ना भाड़ि।।

अनुवाद—अरे मन! इस कलियुगमें आत्मकल्याणका एकमात्र सारस्वरूप "श्रीहरिनाम" का आश्रय ग्रहण कर, जिससे कि यह अथाह भवसागर सूख जाएगा, बीचमें मार्ग बन जाएगा और तू आसानीसे चलकर ही उसे पार कर लेगा। इस कलियुगमें "गोविन्द" नामके अतिरिक्त धर्म-कर्म, जप, तप, ज्ञान, योग, पूजा, ध्यान आदि सभी उपाय निष्फल हैं। अरे मन! भुक्ति व मुक्ति आदिकी कामना मत कर क्योंकि जिस प्रकार बादलोंकी छाया शीतलता प्रदान करती है, परन्तु कुछ क्षणोंके लिए, नित्यकालके लिए नहीं; उसी प्रकार भुक्ति व मुक्तिसे भी क्षणिक ही सुख प्राप्त होता है। परन्तु उनका परिणाम भी बहुत ही कष्टदायक होता है। अतः जब इस भारतभूमिमें तुम्हें मनुष्य जन्म मिला है तो आनन्दपूर्वक "हरि हरि" बोलो, क्योंकि इतनी सुविधा फिर किसी जन्ममें मिलेगी या नहीं—यह भी कोई निश्चित नहीं है। तुम जितने भी पुराण आदि शास्त्रोंके प्रमाणोंको देखो, वे सभी यही प्रतिपादन करते हैं कि इस कलियुगमें

नामके समान शक्तिशाली और कोई दूसरा उपाय नहीं है। नाममें रति होनेपर हृदयमें प्रेम उदित हो जाता है तथा उस प्रेमके द्वारा भगवानको पाया जा सकता है। श्रीप्रेमानन्दजी कहते हैं—असत्वार्ताओंको (ग्रम्यवार्ता) त्यागकर निरन्तर भगवानके नामका श्रवण-कीर्तन करते हुए अपने दुर्लभ मनुष्य जन्मको सार्थक करो।।८१।।

षडङ्ग शरणागति

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु जीवे दया करि'।
स्वपार्षद स्वीय धाम सह अवतरि'।।

अत्यन्त दुर्लभ प्रेम करिवारे दान।
सिखाय शरणागति भकतेर प्राण।।

दैन्य, आत्मनिवेदन, गोप्तृत्वे वरण।
'अवश्य रक्षिबे कृष्ण'—विश्वास पालन।।

भक्ति-अनुकूलमात्र कार्येर स्वीकार।
भक्ति-प्रतिकूल-भाव वर्जनाङ्गीकार।।

षड़ङ्ग शरणागति हइबे जाँहार।
ताँहार प्रार्थना सुने श्रीनन्दकुमार।।

रूप-सनातन-पदे दन्ते तृण करि।
भकतिविनोद पड़े दुहुँ पद धरि।।

काँदिया काँदिया बले,—"आमि त' अधम।
शिखाये शरणागति कर हे उत्तम।।"

अनुवाद—अहो! जीवोंपर दया करके स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु अपने धाम एवं पार्षदोंको साथ लेकर इस जगतमें अवतरित हुए तथा अत्यन्त दुर्लभ कृष्णप्रेमको प्रदान करनेके लिए सर्वप्रथम शरणागतिकी शिक्षा दे रहे हैं जो कि भक्तोंके प्राणस्वरूप हैं। दैन्य, आत्मनिवेदन, कृष्ण ही पालक हैं, वे अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे—ऐसा सुदृढ़ विश्वास, भक्तिके अनुकूल विषयोंको ग्रहण तथा प्रतिकूल विषयोंका त्याग—जिसकी ये छः प्रकारकी शरणागति होगी, श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्ण एकमात्र उसीकी प्रार्थना सुनते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर दाँतोंमें तृण धारणकर दीनतापूर्वक श्रीरूपगोस्वामी व सनातन

गोस्वामीजीके श्रीचरणोंको पकड़कर रोते–रोते कहते है कि मैं तो अत्यन्त ही अधम हूँ, आप कृपा करके शरणागति सिखाकर मुझे उत्तम बना दीजिए।

दैन्य–दुःखात्मक

भुलिया तोमारे, संसारे आसिया, पेये नानाविध व्यथा।
तोमार चरणे, आसियाछि आमि, बलिब दुःखेर कथा।।

जननी–जठरे, छिलाम जखन, विषम बन्धनपाशे।
एकबार प्रभु, देखा दिया मोरे, वञ्चिले ए दीन दासे।।

तखन भाविनु, जनम पाइया, करिब भजन तव।
जनम हइल, पड़ि, मायाजाले, ना हइल ज्ञान–लव।।

आदरेर छेले, स्वजनेर कोले, हासिया काटानु काल।
जनक–जननी, स्नेहेते भुलिया, संसार लागिल भाल।।

क्रमे दिने दिने, बालक हइया, खेलिनु बालक–सह।
आर किछु दिने, ज्ञानउपजिल, पाठ पड़ि' अहरहः।।

विद्यार गौरवे, भ्रमि, देशे देशे, धन उपार्जन करि।
स्वजन–पालन, करि एकमने, भुलिनु तोमारे, हरि!!

वार्द्धक्ये एखन, भकतिविनोद, काँदिया कातर अति।
ना भजिया तोरे, दिन वृथा गेल, एखन कि हबे गति।।

अनुवाद—हे प्रभो! मैं आपको भूलकर इस संसारमें आकर नाना प्रकारके दुःखोंसे जर्जरित हो रहा हूँ। इसीलिए आपको अपने कष्टोंको बतानेके लिए ही मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें आया हूँ। प्रभो! जब मैं माताके गर्भमें अत्यन्त ही दुष्कर बंधनोंमें बंधा हुआ था, उस समय आप मुझे एकबार दर्शन देकर अन्तर्धान हो गए। तब मैंने विचार किया कि जन्म ग्रहणकर मैं आपका भजन करूँगा। परन्तु जन्म ग्रहण करते ही मैं मायाके जालमें फंस गया और अपनी प्रतिज्ञाको भूल गया। अपने माता–पिता एवं स्वजनोंका अत्यन्त ही प्यारा होकर उनकी गोदमें हँसते हुए समय बिताने लगा। माता–पिताके स्नेहमें सब कुछ भूलकर मुझे संसार अच्छा लगने लगा। तत्पश्चात् धीरे–धीरे मैं बाल्य अवस्थामें आकर बालकोंके साथ खेलने लगा, फिर कुछ दिन पश्चात् विद्या अध्ययनकर विद्याके

अभिमानमें देश-विदेशमें भ्रमणकर धन उपार्जन करके निविष्ट चित्त होकर स्वजनोंका पालन करने लगा। इस प्रकार हे हरि! मैं आपको भूल गया। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कातर स्वरसे रोते-रोते निवेदन कर रहे हैं—हे प्रभो! मैंने जीवनभर आपका भजन नहीं किया, मेरा सारा समय व्यर्थ ही चला गया। परन्तु अब तो वृद्ध अवस्था आ गई है, अब मेरी क्या गति होगी?

उच्छ्वास-दैन्यमयी-प्रार्थना

भवार्णवे पड़े मोर आकुल पराण।
किसे कूल पा'व, ता'र ना पाई सन्धान।।

ना आछे करम-बल, नाहि ज्ञान-बल।
याग-योग तपोधर्म—ना आछे सम्बल।।

नितान्त दुर्बल आमि, ना जानि साँतार।
ए विपदे के आमारे करिबे उद्धार??

विषय-कुम्भीर ताहे भीषण-दर्शन।
कामेर तरङ्ग सदा करे उत्तेजन।।

प्राक्तन वायुर वेग सहिते ना पारि।
कान्दिया अस्थिर मन, ना देखि काण्डारी।।

ओगो श्रीजाह्नवा देवी! ए दासे करुणा।
कर आजि निजगुणे, घुचाओ यन्त्रणा।।

तोमार चरण-तरी करिया आश्रय।
भवार्णव पा'र हब क'रेछि निश्चय।।

तुमि नित्यानन्द-शक्ति कृष्णभक्ति-गुरु।
ए दासे करह दान पदकल्पतरु।।

कत कत पामरेरे क'रेछ उद्धार।
तोमार चरणे आज ए काङ्गाल छार।।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

अनुवाद—इस संसारसमुद्रमें पड़कर मेरे प्राण छटपटा रहे हैं, मुझे कैसे किनारा मिलेगा, इसका भी मुझे ज्ञान नहीं है। मुझमें कर्मका बल नहीं है और न ही ज्ञानका। याग, योग, तप आदिमेंसे भी कोई मेरा सम्बल नहीं है अर्थात् इनमेंसे कोई भी मेरे काम नहीं आ सकता। मैं अत्यधिक दुर्बल हूँ और तैरना भी नहीं जानता हूँ। इस अवस्थासे मेरा कौन उद्धार करेगा? इस समुद्रमें विषय-वासनारूप बड़े भयानक मगरमच्छ हैं और कामवासनारूपी लहरियाँ सर्वदा उत्तेजित करती हैं। पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्म तेज वायुके समान हैं, जिनको सहन करना अत्यधिक कठिन है। मैं किसी भी उद्धारकर्त्ताको न देखकर रो-रोकर बेहाल हो रहा हूँ। हे श्रीजाह्नवा देवी! इस दीन सेवकके प्रति अपने गुणोंसे इतनी करुणा करें कि जिससे मेरी सम्पूर्ण यन्त्रणा मिट जाए। मैंने ऐसा निश्चय किया है कि आपकी चरण-रूपी नौकाका आश्रयकर इस समुद्रको पार करुँ। आप श्रीनित्यानन्द प्रभुकी शक्ति हैं व कृष्ण-भक्तिकी गुरु हैं, अतः इस दीन दासको अपने चरण-कल्पवृक्षकी छाया प्रदान करें। आपने अनेक पामरोंका उद्धार किया है, आज आपके श्रीचरणोंमें यह कंगाल भी यही प्रार्थना करता है।

n

आमार समान हीन नाहि ए संसारे।
अस्थिर हयेछि पड़ि भव पारावारे।।

कुलदेवी योगमाया मोरे कृपा करि।
आवरण सम्वरिबे कबे विश्वोदरी।।

शुनेछि आगमे-वेदे महिमा तोमार।
श्रीकृष्ण-विमुखे बाँधि कराओ संसार।।

श्रीकृष्ण-साम्मुख्य जाँर भाग्यक्रमे हय।
तारे मुक्ति दिया कर अशोक अभय।।

ए दासे जननि! करि अकैतव दया।
वृन्दावने देह स्थान तुमि योगमाया।।

तोमाके लंघिया कोथा जीवे कृष्ण पाय।
कृष्ण रास प्रकटिल तोमार कृपाय।।

तुमि कृष्ण-अनुचरी जगत-जननी।
तुमि देखाइले मोरे कृष्ण-चिन्तामणि।।

निष्कपट हये माता चाओ मोर पाने।
वैष्णवे विश्वास बृद्धि ह'क प्रतिक्षणे।।

वैष्णव-चरण बिना भव-पारावार।
भकतिविनोद नारे हइवारे पार।।

अनुवाद—मेरे समान दीन-हीन इस संसारमें कोई नहीं है। इस भवसागरमें पड़कर मैं अस्थिर (विचलित) हो गया हूँ। कब विश्वोदरी कुलदेवी योगमाया मुझपर कृपाकर अपने आवरणको दूर करेंगी। मैंने आगममें तथा वेदोंमें आपकी महिमा सुनी है कि जो श्रीकृष्णसे विमुख होते हैं आप उनको बाँधकर संसारमें डाल देती हैं और जो भाग्यक्रमसे श्रीकृष्णके सम्मुख होते हैं, उन्हें मुक्ति देकर अशोक, अभय बना देती हैं। हे जननी! आप योगमाया हैं! अतः इस दासके प्रति भी निष्कपट दया करके वृन्दावनमें स्थान प्रदान करें। आपको लाँघकर क्या कभी जीव श्रीकृष्णसे मिल सकता है? श्रीकृष्णने आपकी कृपासे ही रास रचाया। आप श्रीकृष्णकी अनुचरी और जगतकी जननी हैं, आपने ही मुझे कृष्णरूपी चिन्तामणिका दर्शन कराया है। हे माता! आप निष्कपट होकर मेरी ओर देखें, जिससे वैष्णवोंके प्रति निरन्तर मेरा विश्वास बढ़ते रहे। वैष्णव चरणोंके बिना संसाररूपी समुद्रको भक्तिविनोद पार नहीं कर सकता।

दैन्य-अपराधात्मक

आमार जीवन, सदा पापे रत,
नाहिक पुण्येर लेश।
परेरे उद्वेग, दियाछि जे कत,
दियाछि जीवेरे क्लेश।।
निज सुख लागि', पापे नाहि डरि,
दयाहीन स्वार्थपर।

पर–सुखे दुःखी, सदा मिथ्याभाषी,
परदुःख सुखकर।।
अशेष कामना, हृदि माझे मोर,
क्रोधी दम्भपरायण।
मदमत्त सदा, विषये मोहित,
हिंसा–गर्व विभूषण।।
निद्रालस्य–हत, सुकार्ये विरत,
अकार्ये उद्योगी आमि।
प्रतिष्ठा लागिया, शाठ्य आचरण,
लोभहत सदा कामी।।
ए हेन दुर्जन, सज्जन–वर्जित,
अपराधी निरन्तर।
शुभकार्य शून्य, सदानर्थमना,
नाना दुःखे जर जर।।
वार्द्धक्ये एखन, उपायविहीन,
ता'ते दीन अकिञ्चन।
भकतिविनोद, प्रभुर चरणे,
करे दुःख निवेदन।।

अनुवाद—अहो! मैं सारा जीवन पापकर्मोंमें ही लगा रहा, मैंने लेशमात्र भी पुण्य नहीं किया, परन्तु कितने ही दूसरे जीवोंको उद्वेग दिया। मैं ऐसा दयाहीन और स्वार्थी हूँ तथा मिथ्याभाषी हूँ कि अपने सुखके लिए पापसे भी नहीं डरता हूँ। दूसरेको सुखी देखकर मुझे ईर्ष्या होने लगती है एवं दूसरेको दुःखी देखकर मेरा हृदय आनन्दसे भर जाता है। मैं बड़ा ही क्रोधी एवं दाम्भिक हूँ, अनन्त प्रकारकी सांसारिक कामनाओंसे मेरा हृदय भरा हुआ है। मैं विषयोंके मदमें प्रमत्त हूँ तथा हिंसा और गर्व मेरे आभूषणस्वरूप हैं। निद्रा एवं आलस्यग्रस्त होनेके कारण सत् कार्योंमें मेरी लेशमात्र भी रुचि नहीं होती, परन्तु दुष्कर्मोंमें मेरा मन स्वतः ही रम जाता है। मैं परम कामी हूँ। दूसरोंसे प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए मैं कपटतापूर्ण व्यवहार करता हूँ। हे प्रभो! मैं ऐसा दुर्जन हूँ कि वैष्णवोंका सङ्ग तो मैंने कभी किया ही नहीं, अपितु निरन्तर मैं उनके चरणोंमें

अपराध करता रहता हूँ। मेरा अनर्थग्रस्त मन शुभ कर्मोंको त्यागकर पाप कर्मोंमें ही लगा रहता है, जिसके फलस्वरूप नाना प्रकारके दुःखोंसे जर्जरित हो रहा है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर भगवानके श्रीचरणोंमें अपना दुःख निवेदन कर रहे हैं—प्रभो! अब तो वृद्धकाल उपस्थित हो गया है, इससे बचनेका कोई उपाय भी नहीं है और मैं तो अकिंचन हूँ।

आत्मनिवेदन-ममतास्पद देहसमर्पण (वाचिक)

सर्वस्व तोमार, चरणे सँपिया, पड़ेछि तोमार घरे।
तुमि त' ठाकुर, तोमार कुकुर, बलिया जानह मोरे।।

बाँधिया निकटे, आमारे पालिबे, रहिबो तोमार द्वारे।
प्रतीप-जनेरे, आसिते ना दिबो, राखिबो गड़ेर पारे।।

तव निजजन, प्रसाद सेविया, उच्छिष्ट राखिबे जाहा।
आमार भोजन, परम-आनन्दे, प्रतिदिन ह'बे ताहा।।

बसिया शुइया, तोमार चरण, चिन्तिब सतत आमि।
नाचिते नाचिते, निकटे जाइबो, जखन डाकिबे तुमि।।

निजेर पोषण, कभु ना भाविबो, रहिबो भावेर भरे।
भकतिविनोद, तोमारे पालक, बलिया वरण करे।।

अनुवाद—हे प्रभु! मैं अपना सर्वस्व आपके श्रीचरणोंमें समर्पितकर आपके घरमें (शरण) पड़ा हुआ हूँ। कृपया आप मुझे अपना कुत्ते (दास) के रूपमें स्वीकार करें। आप मुझे अपने निकट बांधकर पालेंगे, मैं आपके घरके दरवाजेपर रहकर प्रतिकूल लोगोंको अन्दर नहीं आने दूँगा तथा उन्हें आपके घरसे बहुत दूर भगा दूँगा। आपके निजजन प्रसाद सेवाकर जो उच्छिष्ट रख देंगे, प्रतिदिन मैं आनन्दपूर्वक उसीको ग्रहण करूँगा। मैं सोते-बैठते हुए निरन्तर आपके श्रीचरणोंका स्मरण करता रहूँगा तथा जब आप मुझे बुलाएँगे तो मैं आनन्दसे नाचते-नाचते आपके निकट जाऊँगा। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कहते हैं—हे प्रभु! मैं अपने जीवन निर्वाहकी चिन्ता न कर सदा भाव विभोर रहूँगा। क्योंकि मैंने आपको ही पालकके रूपमें वरण किया है।

आत्मनिवेदन–ममतास्पद देहसमर्पण (कायिक)

आमार बलिते प्रभु! आर केह नाइ।
तुमिइ आमार मात्र पिता–बन्धु–भाइ।।

बन्धु, दारा, सुत–सुता—तव दासी–दास।
सेइ त सम्बन्धे सबे आमार प्रयास।।

धन, जन, गृह, दार 'तोमार' बलिया।
रक्षा करि आमि मात्र सेवक हइया।।

तोमार कार्य्येर तरे उपार्जिबो धन।
तोमार संसार–व्यय करिबो वहन।।

भालमन्द नाहि जानि सेवामात्र करि।
तोमार संसारे आमि विषय–प्रहरी।।

तोमार इच्छाय मोर इन्द्रिय–चालना।
श्रवण, दर्शन, घ्राण, भोजन–वासना।।

निजसुख लागि, किछु नाहि करि आर।
भकतिविनोद बले, तव सुख–सार।।

अनुवाद—हे प्रभो! मेरे लिए इस जगतमें आपके अतिरिक्त अपना कहलाने वाला कोई नहीं है। आप ही एकमात्र मेरे पिता, बन्धु एवं भाई हैं। ये बन्धु, स्त्री, पुत्र तथा पुत्री सब आपके दास दासियाँ हैं, मैं केवल अपना कर्तव्य पालन कर रहा हूँ। यह धन, जन, गृह सब कुछ आपका ही है, ऐसा जानकर मैं तो सेवकमात्र होकर सब वस्तुओंकी रक्षा कर रहा हूँ। आपकी सेवाके लिए मैं धन इकट्ठा करूँगा तथा उसके द्वारा आपके संसारका निर्वाह करूँगा। हे प्रभो! अच्छे–बुरेका ज्ञान मुझे नहीं है, मैं तो आपके संसारमें आपके विषयोंका पहरेदार होकर सेवामात्र कर रहा हूँ। आपके इच्छानुसार ही मेरी इन्द्रियाँ श्रवण, दर्शन, घ्राण, भोजन इत्यादि कार्य कर रही हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कह रहे हैं—हे प्रभो! मैं अपने लिए कुछ भी नहीं करता, मेरा उद्देश्य तो केवल आपको सुखी रखना है।

आत्मनिवेदन-अहंतास्पद देहीसमर्पण (वाचिक)

मानस, देह, गेह, जो किछु मोर।
अर्पिलुँ तुया पदे नन्दकिशोर!!

संपदे-विपदे, जीवने-मरणे।
दाय मम गेला, तुया ओ-पद वरणे।।

मारबि राखबि जो इच्छा तोहारा।
नित्यदास-प्रति तुया अधिकारा।।

जन्माओबि मोए इच्छा यदि तोर।
भक्तगृहे जनि जन्म हउ मोर।।

कीट जन्म हउ यथा तुया दास।
बहिर्मुख ब्रह्मजन्मे नाहि आश।।

भुक्ति-मुक्तिस्पृहा-विहीन ये-भक्त।
लभइते ताँ'क सङ्ग अनुरक्त।।

जनक, जननी, दयित, तनय।
प्रभु, गुरु, पति-तुहुँ सर्वमय।।

भकतिविनोद कहे सुन कान!।
राधानाथ! तुहुँ हामार पराण।।

अनुवाद—हे नन्दकिशोर! मैंने अपना मन, शरीर तथा घर जो कुछ भी है, सब आपके श्रीचरणकमलोंमें अर्पण कर दिया। अब मेरा सुख-दुःख एवं जन्म-मरणका दायित्व समाप्त हो गया क्योंकि मैंने आपके चरणकमलोंका वरण कर लिया है। हे प्रभो! अब तो इस दासपर आपका पूरा अधिकार है। आप चाहें तो अपने इस दासको मार डालिए या जीवित रखिए, जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही कीजिए। यदि आप मेरा इस जगतमें जन्म भी करायें तो ऐसी कृपा करना कि आपके भक्तके घरमें ही मेरा जन्म हो। बहिर्मुख होकर ब्रह्मा जैसा जन्म लेनेकी इच्छा नहीं है। परन्तु जहाँ आपके

प्रिय भक्त हों, वहाँ कीटजन्म भी मुझे स्वीकार है। प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिए कि भुक्ति एवं मुक्तिरूपी कपटतासे रहित शुद्ध भक्तोंके श्रीचरणोंमें मेरा मन अनुरक्त रहे। मेरे तो पिता–माता, प्रिय, पुत्र, प्रभु, गुरु तथा पति सब कुछ आप ही हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं—हे राधानाथ! आप मेरे प्राणस्वरूप हैं।

n

आत्मनिवेदन–फलस्वरूप देहसमर्पण (मानसिक)

आत्मनिवेदन, तुया पदे करि',
हइनु परम सुखी।
दुःख दूरे गेल, चिन्ता ना रहिल,
चौदिके आनन्द देखी।।१।।
अशोक अभय, अमृत–आधार,
तोमार चरणद्वय।
ताहाते एखन, विश्राम लभिया,
छाड़िनु भवेर भय।।२।।
तोमार संसारे, करिब सेवन,
नहिब फलेर भागी।
तव सुख जाहे, करिब यतन,
ह'ये पदे अनुरागी।।३।।
तोमार सेवाय, दुःख हय जत,
सेओ त' परम सुख।
सेवा–सुख–दुःख, परम सम्पद,
नाशये अविद्या–दुःख।।४।।
पूर्व इतिहास, भुलिनु सकल,
सेवा–सुख पे'ये मने।
आमि तो' तोमार, तुमि तो' आमार,
कि काज अपर धने।।५।।
भकतिविनोद, आनन्दे डुबिया,
तोमार सेवार तरे।

सब चेष्टा करे, तव इच्छा-मत,
थाकिया तोमार घरे।।६।।

अनुवाद—हे प्रभो! आपके श्रीचरणोंमें अपनेको समर्पितकरके मैं बहुत ही सुखी हो गया हूँ। मेरे समस्त प्रकारके दुःख दूर हो गए तथा अब किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रही। अब तो मुझे चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द दीखता है। आपके श्रीचरणकमल तो अशोक अर्थात् समस्त प्रकारके शोकोंको नष्ट करनेवाले, अभय अर्थात् संसार भयका नाश करनेवाले हैं तथा अमृतके आधारस्वरूप हैं। आपके ऐसे श्रीचरणोंमें आश्रय ग्रहणकर मैंने संसार भयको त्याग दिया। हे प्रभो! यह सारा जगत तो आपका है, आप ही इसके एकमात्र भोक्ता हैं। मैं अपने भोक्ता अभिमानको त्यागकर आपके चरणोंमें अनुरक्त होकर आप जैसे प्रसन्न रहेंगे वैसे ही आपकी सेवा करनेका प्रयत्न करूँगा। आपकी सेवा करते हुए यदि दुःख भी होता है, तो वास्तवमें वही मेरे लिए परम सुख है। आपकी सेवा करते हुए जो दुःख अथवा सुख प्राप्त होता है, वही तो एकमात्र सम्पत्ति है, जो कि अविद्यारूपी दुःखको नाश कर देती है। हे प्रभो! आपकी सेवासे मुझे ऐसा अपूर्व सुख प्राप्त हुआ कि मैं अपने समस्त सांसारिक सम्बन्धोंको भूल गया। अब तो बस आप ही मेरे प्रभु हैं तथा मैं आपका दास हूँ। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी सांसारिक सम्पत्तिसे क्या मतलब? हे प्रभो! यह भक्तिविनोद आनन्दमें भरकर आपकी इच्छानुसार आपकी सेवाके लिए ही आपके घरमें रह रहा है।

गोप्तृत्वे-वरण-अवश्य रक्षिबे कृष्ण (वाचिक)

तुमि सर्वेश्वरेश्वर, ब्रजेन्द्रकुमार।
तोमार इच्छाय विश्वे सृजन संहार।।

तव इच्छामत ब्रह्मा करेन सृजन।
तव इच्छामत विष्णु करेन पालन।।

तव इच्छामते शिव करेन संहार।

तव इच्छामते माया सृजे कारागार।।

तव इच्छामते जीवेर जनम-मरण।
समृद्धि-निपात-दुःख-सुख-संघटन।।

मिछे मायाबद्ध-जीव आशापाशे फिरे।
तव इच्छा बिना किछु करिते ना पारे।।

तुमि त' रक्षक आर पालक आमार।
तोमार चरण बिना आशा नाहि आर।।

निज बल चेष्टा-प्रति भरसा छाड़िया।
तोमार इच्छाय आछि निर्भर करिया।।

भकतिविनोद अति दीन अकिञ्चन।
तोमार इच्छाय ता'र जीवन-मरण।।

अनुवाद—हे श्रीब्रजेन्द्रनन्दन! आप तो ईश्वरोंके भी ईश्वर स्वयं भगवान हैं। आपकी इच्छामात्रसे ही विश्वकी सृष्टि एवं प्रलय होता है। आपकी इच्छानुसार ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं तथा विष्णु पालन करते हैं। आपकी इच्छासे ही शिवजी संहार करते हैं तथा माया संसाररूपी कारागारकी सृष्टि करती है, आपकी इच्छासे ही जीवोंका जन्म-मरण, सुख-दुःख तथा समृद्धि निपात, धन-ऐश्वर्यका नाश होना संघटित होता है। मायाबद्धजीव व्यर्थ ही सांसारिक आशारूपी रज्जुमें बँधा हुआ है अर्थात् सांसारिक आशाओंकी पूर्तिके लिए प्रयास करता है, परन्तु आपकी इच्छाके बिना कुछ नहीं कर सकता। अतः हे प्रभो! आप ही मेरे रक्षक और पालक हैं, आपके श्रीचरणोंकी प्राप्तिके अतिरिक्त मेरी और कोई आशा नहीं है। मैंने तो अपने बल, बुद्धिका भी भरोसा छोड़ दिया है तथा अब मैं सम्पूर्णरूपसे आपकी इच्छापर निर्भर हूँ। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी कह रहे हैं—हे प्रभो! मैं तो अत्यन्त ही दीन व अकिञ्चन हूँ। मेरा जन्म-मरण तो एकमात्र आपकी इच्छापर ही निर्भर है।

n

अनुकूल ग्रहण-वाचिक और मानसिक

(एकादशी-कीर्तन)

शुद्ध भकत, चरण-रेणु,
भजन अनुकूल।
भकत सेवा, परम सिद्धि,
प्रेमलतिकार मूल।।
माधव-तिथि, भक्ति जननी,
यतने पालन करि।
कृष्णवसति, वसति बलि',
परम आदरे वरि।।
गौर आमार, जे सब स्थाने,
करल भ्रमण रङ्गे।
से सब स्थान, हेरिबो आमि,
प्रणयि- (-भकत-)संगे।।
मृदंग-वाद्य, सुनिते मन,
अवसर सदा याचे।
गौर-विहित, कीर्त्तन सुनि',
आनन्दे हृदय नाचे।।
युगलमूर्ति, देखिया मोर,
परम आनन्द हय।
प्रसाद-सेवा, करिते हय,
सकल प्रपञ्च-जय।।
जे दिन गृहे, भजन देखि,
गृहेते गोलोक भाय।
चरण-सीधू, देखिया गङ्गा,
सुख ना सीमा पाय।।
तुलसी देखि', जुड़ाय प्राण,
माधवतोषणी जानि'।
गौर-प्रिय, शाक-सेवने,
जीवन सार्थक मानि।।

भकति विनोद, कृष्ण-भजने,
अनुकूल पाय जाहा।
प्रतिदिवसे, परम-सुखे,
स्वीकार करये ताहा।।

अनुवाद—शुद्ध भक्तोंकी चरणरज ही भजनके अनुकूल है। भक्तोंकी सेवा ही परमसिद्धि है तथा प्रेमरूपी लताका मूल (जड़) है। माधव तिथि (एकादशी) भक्तिको भी जन्म देने वाली है तथा इसमें कृष्णका निवास है, ऐसा जानकर परम आदरपूर्वक इसको वरणकर यत्नपूर्वक पालन करता हूँ। मेरे गौरसुन्दरने जिन-जिन स्थानोंमें आनन्दपूर्वक भ्रमण किया; मैं भी प्रेमी भक्तोंके साथ उन सब स्थानोंका दर्शन करूँगा। मृदङ्गकी मधुर ध्वनिको सुननेके लिए मेरा मन सर्वदा लालायित रहता है तथा श्रीगौरसुन्दरसे सम्बन्धित कीर्तनोंको सुनकर आनन्दसे भरकर मेरा हृदय नाचने लगता है। युगल मूर्त्तिका दर्शनकर मुझे परम आनन्द प्राप्त होता है। महाप्रसादका सेवन करनेसे मायाको भी जय किया जा सकता है। जिस दिन घरमें भजन-कीर्तन होता है, उस दिन घर साक्षात् गोलोक हो जाता है। श्रीभगवानका चरणामृत और श्रीगंगाजीका दर्शनकर तो सुखकी सीमा ही नहीं रहती तथा माधवप्रिया तुलसीजीका दर्शनकर त्रितापोंसे दग्ध हुआ हृदय सुशीतल हो जाता है। गौरसुन्दरके प्रिय सागका आस्वादन करनेमें ही मैं जीवनकी सार्थकता मानता हूँ। कृष्णभजनके अनुकूल जीवननिर्वाहके लिए जो कुछ पाता है, यह भक्तिविनोद प्रतिदिन उसे सुखपूर्वक ग्रहण करता है।

सिद्ध देहमें—कृष्णभजनका उद्दीपन

राधाकुण्डतट - कुञ्जकुटीर।
गोवर्धन-पर्वत, यामुनतीर।।

कुसुमसरोवर, मानसगंगा।
कलिन्द-नन्दिनी, विपुल तरंगा।।

वंशीवट, गोकुल, धीरसमीर।
वृन्दावन - तरुलतिका - वानीर।।

खगमृगकुल, मलय-बातास।
मयूर, भ्रमर, मुरली विलास।।

वेणु, शृंग, पदचिह्न, मेघमाला।
बसन्त, शशांक, शंख, करताला।।

युगल विलासे अनुकूल जानि।
लीला-विलास-उद्दीपक मानि।।

ए सब छोड़त कँहि नाहि जाँउ।
ए सब छोड़त पराण हाराँउ।।

भकतिविनोद कहे, सुन कान।
तुया उद्दीपक हामार पराण।।

अनुवाद—इस पदावलीमें श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंकी उद्दीपनाकी वस्तुओंका वर्णन करते हुए कह रहे हैं—अहो! राधाकुण्डका परम रमणीक तट जिसके किनारे अनेक कुञ्ज जो कि छोटे-छोटे वृक्षोंसे आवृत होकर कुटीसदृश प्रतीत होते हैं, जिनमें राधाकृष्णकी अत्यन्त ही रहस्यमय लीलाएँ होती हैं, पास ही गिरिराजजी जो कि कृष्णकी गौचारण भूमि है, जिनकी गुफाओंमें अनेकों लीलाएँ होती हैं, मानसीगंगा जिसमें कृष्ण एवं गोपियाँ नौका विहार करती हैं, यमुनाकी ऊँची-ऊँची तरंगें, वंशीवट, गोकुल जहाँ कृष्णकी बाल्य लीलायें हुईं, धीरसमीर जहाँपर राधाकृष्णकी रासलीलाको दर्शनकर वायु भी धीरे-धीरे चलने लगी, नाना प्रकारके वृक्ष एवं लताओंसे सुसज्जित वृन्दावन तथा उसमें विचरण करनेवाले हिरण, पक्षी, दक्षिणमें मलयज पर्वतसे आने वाली वायु, मोर, भ्रमर, मुरली, वेणु, शृंग, चरणचिह्न, आकाशमें श्यामवर्णके मेघोंकी कतार, वसन्तऋतु, चन्द्रमा, शंख, करताल, ये सभी वस्तुएँ श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंकी सहायक होनेके

कारण इन वस्तुओंका दर्शनकर भक्तोंको उन लीलाओंकी उद्दीपना होती है। इन सब स्थलोंको छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा, बेशक मेरे प्राण ही निकल जाएँ। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कह रहे हैं—हे कृष्ण! ये सब स्थान आपकी लीलाओंके उद्दीपक होनेके कारण मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं।

n

आर केन मायाजाले पड़ितेछ, जीव–मीन।
नाहि जान बद्ध ह'ये रबे तुमि चिरदिन।।

अति तुच्छ भोग–आशे, बन्दी हये माया–पाशे।
रहिले विकृतभावे दण्ड्य यथा पराधीन।।

एखन भकतिबले, कृष्णप्रेमसिन्धु–जले।
क्रीड़ा करि अनायासे थाक तुमि कृष्णाधीन।।

अनुवाद—अरे जीव! तू अभी तक मायाके जालमें क्यों पड़ा हुआ है? क्या तू इस प्रकार बद्ध होकर चिरदिनके लिए मायाके जालमें ही पड़ा रहेगा। अति तुच्छ सांसारिक भोगोंकी आशासे मायाका दास होकर तथा अपने नित्यस्वरूपको भूलकर पराधीनोंकी भाँति मायाका दण्ड भोग रहा है। अतः अब भक्तिके बलसे अर्थात् भक्तिका आश्रय ग्रहणकर कृष्णके प्रेमरूपी सागरके जलमें क्रीड़ा करते हुए अनायास ही कृष्णके दास बन जाओ।।९२।।

श्रीरूपगोस्वामी–शोचक

यङ् कलि रूप शरीर न धरत।
तङ् ब्रजप्रेम, महानिधि–कुठरिक,
कौन् कपाट उघाड़त।।
नीर–क्षीर–हंसन, पान–विधायन,
कौन पृथक् करि पायत।
को सब त्यजि, भजि' वृन्दावन,
को सब ग्रन्थ विरचित।।

जव पितु वनफुल, फलत नानाविध,
मनोराजि अरविन्द।
सो मधुकर बिनु, पान कोन् जानत,
विद्यमान करि बन्ध।।
को जानत, मथुरा-वृन्दावन
को जानत व्रज-नीत।
को जानत, राधामाधव-रति,
को जानत सोइ प्रीत।।
जाकर चरण-, प्रसादे सकल जन,
गाइ गवाइ सुख पावत।
चरण-कमले, शरणागत माधो,
तव महिमा उर लागत।।

अनुवाद—यदि श्रील रूपगोस्वामी इस कलियुगमें आविर्भूत नहीं होते, तो ब्रजप्रेमरूप महानिधिकी कोठरीका दरवाजा कौन खोलता। हंसकी भाँति जल मिश्रित दूधमेंसे दूधको पान करनेके समान कौन शास्त्रोंसे सार वस्तुको ग्रहण कर सकता था। तथा कौन सबकुछ परित्यागकर वृन्दावनमें भजन करते हुए ग्रन्थोंकी रचना करता। कमल आदि पुष्पोंको विकसित करनेवाले सूर्यके उदित होनेपर जब वनमें नाना प्रकारके पुष्प विशेषतः मनको प्रमत्त करनेवाले नाना प्रकारके कमलके पुष्प खिल उठते हैं तथा मकरन्दसे भर जाते हैं तथा उनकी सुगन्धसे सारा वातावरण सुगन्धमय हो जाता है। उस समय मधुकर (भ्रमर) के बिना उन पुष्पोंके मकरन्दको कौन अनुभव करता है, मधुकरके बिना और कोई पान या अनुभव नहीं कर सकता। यहाँ तक कि जो भ्रमर कठोर लकड़ीमें भी छेदकर बाहर निकल जाता है, वही भ्रमर संध्याके पश्चात् भी कमलका मकरन्द पान करते-करते इतना विभोर हो जाता है कि उसे कमलकी पखुड़ियोंके बंद होनेका ज्ञान नहीं रहता तथा वह प्रेममें विवश होकर कमलके कोमल

पखुड़ियोंको छेदकर बाहर नहीं निकल पाता। उसी प्रकार श्रीधामवृन्दावनमें युगल विलासरूप कमलके पारकीय उन्नतउज्ज्वलरसरूप मकरन्दकी महिमाका अनुभवकर इस जगतमें श्रीरूपगोस्वामीके अतिरिक्त कौन प्रचार कर पाता। वे वृन्दावन रूपी कमलके मकरन्दका आस्वादन करनेवाले भ्रमर स्वरूप हैं। उनकी कृपाके बिना कौन मथुरा–वृन्दावनको तथा ब्रजदेवियोंको जान पाता। तथा कौन राधामाधवके भावको तथा उस प्रीतिको जान पाता। जिनके श्रीचरणकमलोंकी कृपासे सभी लोग श्रीराधामाधवका गुणगान करके तथा दूसरोंसे भी करवाकर सुखी होते हैं, उन्हीं (श्रील रूपगोस्वामी) के चरणकमलोंमें शरणागत यह माधो भी आपकी महिमाका गान कर रहा है।।९३।।

आरती कीर्तन

श्रीगुरुदेवकी आरती

जय जय गुरुदेव श्रीभक्ति प्रज्ञान।
परम मोहन रूप आर्त्त-विमोचन।।

मूर्त्तिमन्त श्रीवेदान्त अशुभनाशन।
"भक्तिग्रन्थ श्रीवेदान्त" तव विघोषण।।

वेदान्त समिति-दीपे श्रीसिद्धान्त-ज्योति।
आरति तोमार ताहे हय निरवधि।।

श्रीविनोदधारा-तैले दीप प्रपूरित।
रूपानुग-धूपे दशदिक् आमोदित।।

सर्वशास्त्र-सुगम्भीर करुणा-कोमल।
युगपत् सुशोभन बदन-कमल।।

स्वर्णकान्ति विनिन्दित श्रीअङ्ग-शोभन।
यतिवास परिधाने जगत्-कल्याण।।

नाना छाँदे सज्जन चामर ढुलाय।
गौरजन उच्चकण्ठे सुमधुर गाय।।

सुमंगल नीराजन करे भक्तगण।
दूरमति दूर हैते देखे त्रिविक्रम।।

अनुवाद—श्रीगुरुदेवकी जय हो! जिनका नाम श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी है। उनका रूप सबको मोहित करनेवाला है एवं वे सबके दुःख-कष्टोंको दूर करनेवाले हैं अर्थात् जीवोंकी भगवद् बहिर्मुखता ही उनके समस्त प्रकारके कष्टोंका मूल कारण है, उनके इसी बहिर्मुखताको दूरकर वे उन्हें भगवानकी ओर मोड़ देते हैं। वे साक्षात् वेदान्तके मूर्तिमान स्वरूप हैं। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि "वेदान्त" भक्तिग्रन्थ है अर्थात् वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय भक्ति ही है। उन्होंने इस जगतमें "वेदान्त समिति" रूपी दीपक प्रज्ज्वलित

किया। शास्त्र सिद्धान्त ही उस दीपककी ज्योति है, ऐसे "भक्तिवेदान्त समिति" रूपी दीपकद्वारा सारे विश्वमें सदैव उनकी आरति हो रही है, जो श्रीभक्तिविनोदधारा रूपी तेलसे भरा हुआ है अर्थात् वेदान्त समितिरूपी दीपक श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी विचारधारारूपी तेलसे युक्त है। जिस प्रकार दीपकका आश्रय तेल होता है, उसी प्रकार "वेदान्त समिति" रूपी दीपक भी श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी विचारधारापर आश्रित है। उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीके विचारोंको प्रचारकर दसों दिशाओंको धन्यकर दिया। वे समस्त शास्त्रोंमें पारंगत, करुणामय एवं उनका हृदय मक्खनके समान कोमल है। उनका श्रीअंग कमलके समान अत्यन्त ही सुन्दर है। उनके श्रीअंगकी कान्ति सोनेकी उज्ज्वलताको भी पराभूत करने वाली है। उन्होंने जगतवासियोंके कल्याणके लिए संन्यास वेष धारण किया। उनके प्रिय सज्जन सेवक (श्रीभक्तिवेदान्त वामन महाराज) नाना प्रकारके भावोंसे चामर डुला रहे हैं तथा गौरनारायण (श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज) अत्यन्त ही सुमधुर उच्चकंठसे उनकी महिमाका गान कर रहे हैं। पदकर्त्ता श्रीभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजी दीनतापूर्वक कह रहे हैं—सभी भक्तलोग उनकी आरति कर रहे हैं, परन्तु मैं दुर्मति दूरसे ही उनकी श्रीआरति दर्शन कर रहा हूँ।

श्रील प्रभुपादकी आरती

(सन्ध्यारती)

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योगमायापुर–नित्यसेवा–दानकारी ।।१।।
सर्वत्र प्रचार–धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध–मुक्त अलिकुल मुग्ध चराचर।।२।।
भकति–सिद्धान्त–दीप जालिया जगते।
पञ्चरस–सेवा–शिखा प्रदीप्त ताहाते।।३।।
पञ्च महादीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक–तिमिर नाशे अविद्या दुर्मति।।४।।

भकति विनोद-धारा जल-शंख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर।।५।।
सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
बृहद्मृदंग-वाद्य परम रसाल।।६।।
विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल।।७।।
आजानुलम्बित बाहु दीर्घ कलेवर।
तप्तकाञ्चन-वरण परम सुन्दर।।८।।
ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासि।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्णशशि।।९।।
जति धर्मे परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेघावृत गौड़ीय गगन।।१०।।
भकति-कुसुमे कत कुंज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व विमोहित।।११।।
सेवादर्शे नरहरि चामर ढुलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय।।१२।।

अनुवाद—योगपीठ मायापुरकी नित्य सेवा प्रदान करनेवाली श्रील श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी आरति जययुक्त हो! जययुक्त हो!।।१।।

धूपकी मनोहर सुगन्धकी भाँति, उनका प्रचार सर्वत्र फैल रहा है, जो समस्त भक्तों, बद्ध एवं मुक्त, स्थावर और जंगम सभी जीवोंको मुग्ध कर रहा है अर्थात् उस प्रचाररूप धूपकी वाणीरूप सुगन्ध सर्वत्र ही सबको मुग्ध कर रही है।।२।।

उन्होंने (प्रभुपादने) जगतमें भक्तिसिद्धान्तरूपी दीपक प्रज्ज्वलित किया, जिसमें पाँच शिखाएँ पाँच रसों द्वारा (शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर) भगवानकी सेवाका प्रतीक है।।३।।

ये पाँचों शिखाएँ ही पाँच महाज्योति सदृश पाँच रसोंकी प्रतीक है, जो तीनों लोकोंके अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करती हैं।।४।।

श्रील भक्तिविनोद धारा (श्रीरूपानुग विचारधारा) ही वह शंख-जलकी धारा है, जो आजतक इस जगतमें अविच्छिन्न गतिसे प्रवाहित हो रही है।।५।।

करताल, घण्टा एवं अन्य वाद्य यन्त्रोंसे कृष्ण-कीर्तन निरन्तर हो रहा है, मुद्रण यन्त्र ही बृहत्-मृदंगके रूपमें (बजकर) शास्त्रवाणीको सर्वत्र पहुँचाकर परम रसका वितरण कर रहा है।।६।।

उनके विशाल ललाटमें तिलक सुशोभित हो रहा है तथा गलेमें तुलसीमाला झलमल-झलमल कर रही है।।७।।

उनकी आजानुलम्बित भुजाएँ, दीर्घ कलेवर तथा तपे हुए सोनेकी भाँति अंगकान्ति अत्यन्त ही सुन्दर है।।८।।

उनके लावण्ययुक्त श्रीमुखपर स्नेहभरी मधुर मुस्कान तथा अंगकान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रही है।।९।।

उन्होंने संन्यासधर्म ग्रहणकर अरुण (गेरुए) वस्त्र धारण कर 'गौड़ीय वैष्णव जगतको' नाना प्रकारके अपसिद्धान्तरूपी मेघोंसे मुक्त किया अर्थात् नाना प्रकारके अपसिद्धान्तोंका खण्डनकर शुद्ध भक्तिकी स्थापना की।।१०।।

इन्होंने अनेकों कुञ्जरूपी मन्दिर स्थापित किए जिनमें एक-एक भक्त भक्ति-पुष्पसदृश हैं, जिनके असाधारण गुणोंसे सारा विश्व ही मोहित हो गया।।११।।

पदकर्ता कह रहे हैं—सेवाके आदर्शस्वरूप नरहरि प्रभु श्रील प्रभुपादको चामर ढुला रहे हैं तथा मैं (केशव) आनन्दपूर्वक उनकी आरति गा रहा हूँ।।१२।।

मंगलारति

मंगल श्रीगुरु-गौर मंगल मूरति।
मंगल श्रीराधाकृष्ण-युगल-पीरिति।।१।।

मंगल निशान्त लीला मंगल उदये।
मंगल आरति जागे भकत हृदये।।२।।

तोमार निद्राय जीव निद्रित धराय।
तव जागरणे विश्व जागरित हय।।३।।

शुभ दृष्टि कर प्रभु जगतेर प्रति।
जागुक हृदये मोर सुमंगला रति।।४।।

मयूर-शुकादि सारि कत पिकराज।
मंगल जागर-हेतु करिछे विराज।।५।।

सुमधुर ध्वनि करे जत शाखीगण।
मंगल श्रवणे बाजे मधुर कूजन।।६।।

कुसुमित सरोवरे कमल-हिल्लोल।
मंगल सौरभ बहे पवन कल्लोल।।७।।

झाँझर काँसर घण्टा शङ्ख करताल।
मंगल मृदङ्ग बाजे परम रसाल।।८।।

मंगल आरति करे भकतेर गण।
अभागा केशव करे नाम-संकीर्त्तन।।९।।

"श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुनित्यानन्द।
श्रीअद्वैतगदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

अनुवाद—श्रीगुरुदेव एवं श्रीगौरसुन्दरके मंगलमय विग्रह जययुक्त हों, श्रीराधाकृष्ण युगलकी मंगलमय प्रीति जययुक्त हो।।१।।

मंगलमय निशान्त लीला जययुक्त हो जो कि रात्रिके अन्त एवं श्रीराधाकृष्ण युगलके मंगलमय जागरणकी उद्घोषक है एवं जो सबका मंगल करती है। भक्तोंके हृदयमें स्फूर्त होनेवाली वह मंगल आरति जययुक्त हो।।२।।

हे प्रभो! जब तक आप उपेक्षा करेंगे तब तक इस जगतके जीव अज्ञानरूपी अन्धकारमें सोते रहेंगे परन्तु आपकी कृपा होते ही जगतके समस्त जीव अपने नित्य धर्मके प्रति जागरूक हो जायेंगे।।३।।

अतः आप जगतके प्रति शुभदृष्टि कीजिए जिससे कि मेरे हृदयमें भी आपके चरणोंके प्रति सुमंगल रति जागे।।४।।

मयूर, शुक, सारि तथा कोयल आदि नाना प्रकारके पक्षी गान द्वारा आपके मंगलमय जागरण हेतु ही विराजमान हैं।।५।।

वृक्षोंकी शाखाओंपर स्थित समस्त पक्षीगण प्रभात बेलाके उपयुक्त सुमधुर ध्वनि कर रहे हैं, जो कि पूरे वनमें कूजित हो रही

हैं। ये मधुर, मंगलमय ध्वनि सर्वत्र सबका कल्याण कर रही है।।६।।

नाना प्रकारके फूलोंवाले सरोवरके बीच खिले हुए कमलके फूल हिल रहे हैं। मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली पवन उन खिले हुए कमलपुष्पोंकी मंगलमय सुगन्धको धारणकर सर्वत्र वितरण कर रही है तथा सभीको आनन्दित एवं प्रफुल्लित कर रही है।।७।।

झाँझर, काँसर, घण्टा, शंख, करताल एवं मंगलमय मृदंग आदि वाद्ययन्त्र तालमें अत्यन्त ही सुन्दर ढंगसे बजकर परम रसका वर्धन कर रहे हैं।।८।।

पदकर्त्ता श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज दीनतापूर्वक कह रहे हैं—सभी भक्त आरती कर रहे हैं और मैं अभागा हरिनाम संकीर्तन कर रहा हूँ।।९।।

श्रीगौर-गोविन्द-आरती

भाले गोरा-गदाधरेर आरति नेहारि।
नदीया पूरव भावे जाँउ बलिहारी।।

कल्पतरुतले रत्नसिंहासनोपरि।
सबु सखी-वेष्टित किशोर-किशोरी।।

पुरट-जड़ित कत मणि-गजमति।
झमकि' झमकि' लभे प्रति अङ्ग-ज्योतिः।।

नील नीरद लागि' विद्युत-माला।
दुहुँ अङ्ग मिलि' शोभा भुवन उजाला।।

शंख बाजे, घण्टा बाजे, बाजे करताल।
मधुर मृदङ्ग बाजे परम रसाल।।

विशाखादि सखीवृन्द दुहुँ गुण गावे।
प्रियनर्म्मसखीगण चामर ढुलावे।।

अनङ्गमञ्जरी चुया-चन्दन देवे।
मालतीर माला रूपमञ्जरी लागावे।।

पञ्चप्रदीपे धरि' कर्पूरबाति।
ललिता-सुन्दरी करे युगल-आरति।।

देवी, लक्ष्मी, श्रुतिगण धरणी लोटावे।
गोपीजन अधिकार रवत गावे।।

भकतिविनोद रहि' सुरभीकि कुञ्जे।
आरति दरशने प्रेम-सुख भुञ्जे।।

अनुवाद—बड़े सौभाग्यसे श्रीगौर-गदाधरकी आरतीके दर्शन कर रहा हूँ, मैं नदियाके पूर्व भावको बलिहारी जाता हूँ। कल्पवृक्षके नीचे, रत्नसिंहासनके ऊपर किशोर-किशोरी समस्त सखियों सहित विराजमान हैं। जिनके अंगोंमें स्वर्ण, मणि, गजमुक्ता आदिसे युक्त आभूषण समूह सुशोभित हो रहे हैं तथा जिनकी अंगकान्ति अतिशय दिव्य ज्योतिसम्पन्ना है। नीले बादलोंमें विद्युतकी मालाके समान दोनोंके अंग मिलकर अपूर्व सुन्दर शोभाका विस्तार करके जगतको देदीप्यमान कर रहे हैं। शंख, घंटा, करताल और मधुर-मधुर मृदंग आदि वाद्य बज रहे हैं, विशाखा आदि सखियाँ दोनोंके गुण गा रही हैं और प्रिय नर्म सखियाँ चामर ढुला रही हैं। अनङ्ग मञ्जरी उनके श्रीअङ्गमें चुआ चन्दन दे रही हैं। श्रीरूप मञ्जरी मालतीकी माला पहना रही हैं। पंचप्रदीपमें कर्पूरकी बत्ती लगाकर जब श्रीललिता सखी युगल आरती करने लगी, तब देवियाँ, लक्ष्मियाँ, श्रुतियाँ धरती पर लोट-पोट खाने लगीं, गोपियोंके जैसे अधिकारको रो-रोकर माँगने लगी। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर सुरभी कुंजमें रहकर इस आरतीका दर्शन करके प्रेम-सुखका अनुभव करते हैं।

भोग आरति (क)

भज भकत वत्सल श्रीगौरहरि।
श्रीगौरहरि सोही गोष्ठ बिहारी,
नन्द यशोमती-चित्तहारी।।
बेला ह'लो दामोदर! आईस एखन।
भोग-मन्दिरे बसि' करह भोजन।।
नन्देर निर्देशे वैसे गिरिवरधारी।
बलदेव-सह सखा वैसे सारि सारि।।

शुक्ता–शाकादि भाजि नालिता कुष्माण्ड।
डालि डाल्ना दुग्ध तुम्बी दधि मोचाखण्ड।।
मुद्गबड़ा माषबड़ा रोटिका घृतान्न।
शष्कुली पिष्टक क्षीर पुलि पायसान्न।।
कर्पूर अमृतकेलि रम्भा क्षीरसार।
अमृत रसाला अम्ल द्वादश प्रकार।।
लुचि चिनि सरपुरी लाड्डू रसावली।
भोजन करेन कृष्ण हये कुतूहली।।
राधिकार पक्व अन्न विविध व्यंजन।
परम आनन्दे कृष्ण करेन भोजन।।
छले बले लाड्डू खाय श्रीमधुमङ्गल।
बगल बाजाय आर देय हरिबोल।।
राधिकादि गणे हेरि नयनेर कोणे।
तृप्त ह'ये खाय कृष्ण यशोदा–भवने।।
भोजनान्ते पिये कृष्ण सुवासित वारि।
सबे मुख प्रक्षालय ह'ये सारि सारि।।
हस्त मुख प्रक्षालिया जत सखागणे।
आनन्दे विश्राम करे बलदेव सने।।
जाम्बुल रसाल आने ताम्बूल मसाला।
ताहा खेये कृष्णचन्द्र सुखे निद्रा गेला।।
विशालाक्ष शिखि–पुच्छ चामर ढुलाय।
अपूर्व शय्याय कृष्ण सुखे निद्रा जाय।।
यशोमती–आज्ञा पेये धनिष्ठा–आनीत।
श्रीकृष्णप्रसाद राधा भुञ्जे ह'ये प्रीत।।
ललितादि सखीगण अवशेष पाय।
मने मने सुखे राधा–कृष्ण गुण गाय।।
हरिलीला एकमात्र जाँहार प्रमोद।
भोगारति गाय सेइ भकतिविनोद।।

अनुवाद—अरे भाइयो! आप सभी लोग भक्तवत्सल श्रीगौरसुन्दरका भजन करो जो और कोई नहीं, श्रीनन्दबाबा यशोदा मैयाके चित्तको हरण करनेवाले, गौचारणके लिए वन वनमें विचरण करनेवाले

नन्दनन्दन ही हैं। श्रीनन्दबाबाजीने जब दामोदरको आदेश दिया कि समय हो गया है भोगमंदिरमें जाकर भोजन करनेके लिए बैठो तो उनके आदेशपर गिरिवरधारी बलदेव तथा अन्य सखाओंके साथ बैठ गए तथा शुकता, शाक, भाजि, नालिता, कुष्माण्ड, डालि, डालना, दुग्ध तुम्बी, दधि, मोचाखंड, मूंगका बड़ा, एक प्रकारकी डालका बड़ा, रोटियाँ, घीयुक्त अन्न, शष्कुलीपिष्टक (पिठा), क्षीर, पुलि, पायस (खीर), अमृतकेली, रम्भा (केला), द्वादश प्रकारके रस, लुचि, चिनी, सरपुरी, नाना प्रकारके लड्डु आदि श्रीमती राधिकाजीके द्वारा पकाए हुए नाना प्रकारके सुस्वादिष्ट एवं रसमय व्यंजनोंको कृष्ण कौतुहलपूर्वक एवं परम आनन्दपूर्वक ग्रहण करने लगे। इतनेमें ही मधुमंगलने छल-बलसे कृष्णके हाथसे एक लड्डू खा लिया तथा आनन्दसे बगल बजाते हुए "हरि बोल हरि बोल" बोलने लगे। श्रीमती राधिकाजी तथा उनकी सखियाँ छिपकर तिरछी नजरोंसे इस भोजनलीलाका दर्शन कर रही हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण यशोदाजीके भवनमें उन समस्त व्यंजनोंको खाकर तृप्त हो गए। भोजनके अन्तमें कृष्णने सुशीतल एवं सुगन्धित जलपान किया। तत्पश्चात् सभी सखावृन्द हाथ-मुख धोकर बलदेवजीके साथ विश्राम करने लगे।

उसी समय जाम्बुल (एक सेवक) लौंग, इलायची, कर्पूर इत्यादि सुगंधित मसालोंवाला ताम्बुल लेकर आया। कृष्ण उसे खाकर सुखपूर्वक सो गए तथा विशालाक्ष (एक सेवक) मयूरपुच्छ एवं चामर डुलाने लगा तथा कृष्ण उस अपूर्व शय्यापर निद्रामें सो गए। तत्पश्चात् यशोदा मैयाके आदेशसे धनिष्ठा (कृष्णकी एक सखी) के द्वारा लाए हुए श्रीकृष्णके प्रसादको श्रीमती राधिकाजीने प्रेमपूर्वक खाया तथा अवशिष्ट प्रसादको ललिता इत्यादि सखियोंने आनन्दपूर्वक ग्रहण किया तथा वे मन-ही-मन राधाकृष्णका गुणगान करने लगीं। राधाकृष्णकी ऐसी लीलाएँ ही जिनके लिए आनन्दका एकमात्र विषय है, वे भक्तिविनोद ठाकुरजी भोग आरति गा रहे हैं।

(ख)

आज हरि आये-विदुर-घर पावना।
विदुर नहीं, घर थी विदुरानी, आवत देखे सारङ्गपाणी।
फूली अङ्ग समावे नाहीं, भोजन कहाँ जिमावना।। आज॰
केला बड़े प्रेम से लाई, गिरि गिरि सब देत गिराई।

छिलका देत श्याममुख माँहि, रुचि-रुचि भोग लगावना।। आज॰
इतनेमें विदुर घर आये, खोटे खारे वचन सुनाये।
छिलका देत श्याम मुख माँहि, कहाँ गई तेरी भावना।। आज॰
केला लिए विदुर कर माँहि, गिरि देत गिरिधर मुख माँहि।
कहे कृष्ण सुनो विदुरजी, वो स्वाद नहीं आवना।। आज॰
बासी खूसी रूखे सूखे, हम तो विदुर जी प्रेमके भूखे।
शम्भु सखी कहे धन विदुरानी, भक्तोंका मान बढ़ावना।। आज॰

अनुवाद—आज श्रीहरि (कृष्ण) विदुरजीके घरमें आये। परन्तु विदुरजी घरपर नहीं थे। घरपर विदुरानी थी। उन्होंने जब सारङ्गपाणी (सारंग नामक धनुषको धारण करनेवाले) भगवानको आते हुए देखा तो फूली नहीं समायी। अब उन्हें क्या भोजन कराए। बड़े प्रेमसे केले लेकर आई तथा गिरि (केलेके भीतरका हिस्सा) को जमीनपर फैंक रही है, परन्तु छिलकोंको श्यामसुन्दरके मुखमें दे रही हैं तथा हरि भी बड़े रुचिपूर्वक उन्हें खा रहे हैं। इतनेमें ही विदुरजी घरमें आ गए तथा यह सब देखकर विदुरानीको खरी-खोटी सुनाने लगे। अरे! तेरी बुद्धि मारी गई है, जो तू श्यामसुन्दरको छिलके खिला रही है। ऐसा कहकर विदुरजी अपने हाथसे केलेकी गिरि गिरिधारीके मुखमें देने लगे तो कृष्ण बोले—हे विदुरजी! मुझे इन केलोंका वैसा स्वाद नहीं आ रहा है जैसा कि विदुरानीके छिलकोंका। हे विदुरजी! बासी हो, चाहे रूखा सूखा हो। परन्तु हम तो प्रेमके भूखे हैं। शम्भु सखी कहती हैं—अहो! विदुरानी धन्य हैं। और भक्तोंका मान बढ़ाने वाले भगवान भी धन्य हैं।

महाप्रसाद कीर्तन

महाप्रसादे गोविन्दे नाम-ब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते।।

शरीर अविद्या जाल, जड़ेन्द्रिय ताहे काल,
जीवे फेले विषय-सागरे।
तार मध्ये जिह्वा अति, लोभमय सुदुर्मति,
ताके जेता कठिन संसारे।।
कृष्ण बड़ दयामय, करिवारे जिह्वा जय,
स्वप्रसाद-अन्न दिला भाइ।

सेइ अन्नामृत पाओ, राधाकृष्ण-गुण गाओ,
प्रेमे डाक चैतन्य-निताइ।।

अनुवाद—हे राजन! अल्प सुकृतिवान् व्यक्तिका महाप्रसाद, गोविन्द, भगवन्नाम एवं वैष्णव—इन चार वस्तुओंमें विश्वास नहीं होता।

यह शरीर अविद्याका जाल है। इसमें जड़ इन्द्रियाँ तो काल स्वरूप ही हैं जो जीवोंको विषयसागरमें डाल देती हैं। उनमेंसे भी यह लालची जिह्वा तो अत्यन्त ही दुर्मति है। संसारमें इसे जीतना बहुत कठिन है। परन्तु हे भाइयो! कृष्ण परम दयालु हैं। उन्होंने जिह्वाको जय करनेके लिए अपना अन्न प्रसाद प्रदान किया है। अतः तुम उस अन्न प्रसादरूपी अमृतको ग्रहण कर आनन्दपूर्वक राधाकृष्णका गुणगान करो तथा प्रेमसे श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीमन्नित्यानंद प्रभुको पुकारो।

श्रीगौरसुन्दरकी सन्ध्या आरती

जय जय गोराचाँदेर आरतिको शोभा।
जाह्नवी तटवने जगमन लोभा।।
दक्षिणे निताइ चाँद, वामे गदाधर।
निकटे अद्वैत श्रीनिवास छत्रधर।।
बसियाछे गोराचाँद रत्न-सिंहासने।
आरति करेन ब्रह्मा-आदि देवगणे।।
नरहरि आदि करि' चामर ढुलाय।
सञ्जय मुकुन्द वासुघोष आदि गाय।।
शङ्ख बाजे, घण्टा बाजे, बाजे करताल।
मधुर मृदङ्ग बाजे परम रसाल।।
बहुकोटि चन्द्र जिनि' वदन उज्ज्वल।
गलदेशे वनमाला करे झलमल।।
शिव-शुक-नारद प्रेमे गदगद।
भकतिविनोद देखे गोरार सम्पद।।

अनुवाद—गंगाजीके किनारेपर स्थित नवद्वीप धाममें श्रीगौरसुन्दरकी आरतिकी शोभाकी जय हो। जिसे दर्शन करनेके लिए सारे जगतके मनमें लोभ उत्पन्न हो जाता है। श्रीगौरसुन्दरके दाहिनी ओर श्रीनित्यानन्दप्रभु, बांयी ओर श्रीगदाधर पण्डितजी तथा उनके निकट ही श्रीअद्वैताचार्य, श्रीवासाचार्यजी छत्र धारण किए हुए हैं। श्रीगौरसुन्दर रत्ननिर्मित सिंहासनमें विराजमान हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता उनकी आरति कर रहे हैं। नरहरि आदि भक्तलोग चामर डुला रहे हैं, सञ्जय, मुकुन्द, वासुघोष आदि भक्तवृन्द सुमधुरकण्ठसे श्रीगौरसुन्दरकी महिमाका गान कर रहे हैं तथा साथमें शंख, घण्टा, करताल, मृदंग आदि की अत्यन्त मधुर ध्वनि हृदयको उल्लसित कर रही है। श्रीगौरसुन्दरके श्रीअंगकी शोभा (उज्ज्वलता) तो करोड़ों चन्द्रमाओंकी शोभाको भी पराभूत करनेवाली है तथा उनके गलेमें वनमाला झलमल कर रही है। जिसे दर्शनकर शंकरजी, श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा नारद आदि भक्तवृन्द प्रेममें गद्‌गद हो जाते हैं।

श्रीयुगल-आरती

जय जय राधाकृष्ण युगल-मिलन।
आरति करये ललितादि सखीगण।।
मदन-मोहन रूप त्रिभङ्ग सुन्दर।
पीताम्बर शिखिपुच्छ चूड़ा मनोहर।।
ललित माधव-बामे वृषभानु कन्या।
नील-वसना गौरी रूपे गुणे धन्या।।
नानाविध अलंकार करे झलमल।
हरिमन-विमोहन वदन उज्ज्वल।।
विशाखादि सखीजन नाना रागे गाय।
प्रियनर्म सखीजत चामर ढुलाय।।
श्रीराधा-माधव-पद सरसिज आशे।
भकति विनोद सखी, पदे सुखे भासे।।

अनुवाद—श्रीराधाकृष्ण-युगलके मिलनकी जय हो! ललिता, विशाखा आदि सखियाँ उनकी आरती कर रही हैं। मदनमोहनका त्रिभंगरूप अत्यन्त ही सुन्दर है, उन्होंने श्रीअंगमें पीताम्बर तथा सिरपर मोरपंखोंका चूड़ा (मुकुट) धारण किया हुआ है, जो सबके

मनको हरण कर लेता है। उनके बांयी ओर नीलेवस्त्र धारण किए हुए रूप एवं गुणोंमें अपूर्व वृषभानुनन्दिनी विराजमान हैं, जिन्होंने नाना प्रकारके अलंकार धारण किए हैं। वे झलमल-झलमल करते अलंकार तथा उनके श्रीअंगकी उज्ज्वलता हरि (कृष्ण) के मनको भी मोहित कर रही है। विशाखा आदि सखियाँ नाना प्रकारके रागों (स्वरोंसे) में उन दोनोंका गुणगान कर रही हैं तथा प्रियनर्मसखियाँ चामर डुला रही हैं। श्रीराधामाधवके चरणकमलोंकी प्राप्तिकी आशासे भक्तिविनोद सखियोंके चरणकमलोंमें आश्रय ग्रहणकर आनन्दमें निमग्न है।

श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरति (क)

'नमो नमः तुलसी कृष्ण-प्रेयसी' (नमो नमः)।
राधाकृष्ण नित्यसेवा-'एइ अभिलाषी'।।१।।
'जे तोमार शरण लय', सेइ कृष्ण सेवा पाय,
'कृपा करि' कर तारे 'वृन्दावनवासी'।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।२।।
तोमार चरणे धरि, मोरे अनुगत करि',
गौरहरि-सेवा-मग्न राख दिवानिशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।३।।
दीनेर एइ अभिलाष, मायापुरे/नवद्वीपे दिओ वास,
अंगेते माखिब सदा धाम-धूलिराशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।४।।
तोमार आरति लागि', धूप, दीप, पुष्प माँगि,
महिमा बाखानि एबे-हओ मोरे खुशी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।५।।
जगतेर जत फूल, कभु नहे समतुल,
सर्वत्यजि कृष्ण तव पत्र मंजरी विलासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।६।।
ओगो वृन्दे महारानी!
तोमार पादप तले, देव-ऋषि कुतूहले,
सर्वतीर्थ ल'ये ताँ'रा हन अधिवासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।७।।

श्रीकेशव अति दीन, साधन-भजन-हीन,
तोमार आश्रये सदा नामानन्दे भासि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)।।८।।

अनुवाद—हे कृष्ण प्रेयसी तुलसी देवी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मेरी यह अभिलाषा है कि मुझे श्रीश्रीराधा-कृष्णकी नित्य सेवा प्राप्त हो।।१।।

जो आपकी शरणमें आता है आप उसे वृन्दावनमें स्थान प्रदानकर कृष्ण सेवाका अधिकार प्रदान करती हो।।२।।

अतः मैं आपके श्रीचरणोंको पकड़ता हूँ, आप कृपापूर्वक मुझे अपना आनुगत्य प्रदान कर रात-दिन गौरहरिकी सेवामें निमग्न कर दें।।३।।

इस दीन-हीनकी यही अभिलाषा है कि आप मुझे मायापुर (नवद्वीप) धाममें निवास प्रदान करें। जिससे मैं सर्वदा अपने अंगोंमें धामकी धूली मलता रहूँ।।४।।

आपकी आरतिके लिए मैं धूप, दीप, पुष्प इत्यादि लाऊँ तथा आपकी महिमाका गानकर प्रसन्न रहूँ।।५।।

हे देवी! जगतमें जितने प्रकारके भी पुष्प हैं, उनमें कोई भी आपके समान नहीं हैं, कृष्ण उन सबको छोड़कर आपकी अष्टदल मंजरीको ही अति प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते हैं।।६।।

हे कृष्णभक्तिको प्रदान करनेवाली! वृन्दे महारानी! आपके श्रीचरणकमलोंमें देवता, ऋषिलोग एवं समस्त तीर्थ आकर आनंदपूर्वक निवास करते हैं।।७।।

हे वृन्दादेवी! आप ऐसी कृपा कीजिए कि यह दीन-हीन केशव आपका आश्रय ग्रहणकर सर्वदा नामसंकीर्तन करते हुए आनन्द सागरमें निमज्जित हो जाय।।८।।

(ख)

नमो नमः तुलसी कृष्ण-प्रेयसी नमो नमः।
(ब्रजे) राधाकृष्ण-पद सेवा एइ अभिलाषी।।
जे तोमार शरण लय, तार वाँछा पूर्ण हय।
कृपा करि कर तारे वृन्दावनवासी।।

मोर एइ अभिलाष, विलासकुँजे दिओ वास।
नयने हेरिब सदा युगलरूप-राशि।।
एइ निवेदन धर, सखीर अनुगत कर।
राधाकृष्ण सेवा दिया कर निजदासी।।
दीन कृष्णदास कय, मोर जेन एइ हय।
श्रीराधागोविन्द-प्रेमे सदा जेन भासि।।

अनुवाद—हे कृष्णप्रेयसी श्रीतुलसी देवी! श्रीराधाकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अभिलाषी मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जो भी आपकी शरण ग्रहण करता है, उसकी इच्छा पूर्ण हो जाती है, आप कृपा करके उसे वृन्दावनवास प्रदान करती हैं। हे देवी! आप मेरी भी प्रार्थना स्वीकार कीजिए तथा सखीका आनुगत्य प्रदानकर राधाकृष्णकी सेवा प्रदानकर अपनी दासी बना लीजिए। मेरी एकमात्र अभिलाषा यह है कि आप मुझे विलासकुञ्जमें स्थान प्रदान करें जिससे कि मैं अपने नेत्रोंसे सर्वदा श्रीराधाकृष्ण युगलकी रूपमाधुरीका दर्शन करता रहूँ। दीन कृष्णदास कहते हैं—मेरी ऐसी अवस्था हो जाय जिससे कि मैं श्रीराधागोविन्दके प्रेममें निमग्न रहूँ।

हिन्दी कीर्तन

गुरु-चरणकमल भज मन।
गुरु-कृपा बिना नाहि कोइ साधन-बल,
भज मन भज अनुक्षण।। गुरु॰।।
मिलता नहीं ऐसा दुर्लभ जनम,
भ्रमतहूँ चौदह भुवन।
किसी को मिलते हैं अहो भाग्य से,
हरिभक्तों के दरशन।। गुरु॰।।
कृष्ण-कृपा की आनन्द मूर्ति,
दीनजन करुणा निदान।
भक्ति भाव प्रेम तीन प्रकाशत,
श्रीगुरु पतित पावन।। गुरु॰।।
श्रुति स्मृति और पुरानन माहिं,
कीनो स्पष्ट प्रमाण।
तन मन जीवन, गुरु पदे अर्पण,
श्री हरिनाम रटन।। गुरु॰।।

*

गुरुदेव कृपा करके मुझको अपना लेना।
मैं शरण पड़ा तेरी, चरणोंमें जगह देना।।

करुणानिधि नाम तेरा, करुणा बरसाओ तुम।
सोये हुए भाग्यको, हे नाथ जगाओ तुम।

मेरी नाव भँवर डोले, उसे पार लगा देना।।
तुम सुखके सागर हो, भक्तिके सहारे हो।

मेरे मनमें समाये हो, मुझे प्राणोंसे प्यारे हो।
नित माला जपूँ तेरी, मेरे दोष भुला देना।।

मैं सन्तोंका सेवक हूँ, गुरु चरणोंका दास हूँ।
नहीं नाथ भुलाना मुझे, इस जगमें अकेला हूँ।।
तेरे द्वारका भिखारी हूँ, नहीं दिलसे भुला देना।।

*

जय माधव मदनमुरारी, राधेश्याम श्यामाश्याम।
जय केशव कलिमलहारी, राधेश्याम श्यामाश्याम।।
सुन्दर कुण्डल नयन विशाला, गल सोहे वैजयन्तीमाला।
या छबिकी बलिहारी।। राधेश्याम॰
कबहुँ लूट लूट दधि खायो, कबहूँ मधुवन रास रचायो।
नृत्यति विपिनबिहारी।। राधेश्याम॰
ग्वालबाल सङ्ग धेनु चराई, वन वन भ्रमत फिरे यदुराई।
काँधे कामर कारी।। राधेश्याम॰
चुरा चुरा नवनीत जो खायो, ब्रज-वनितन पै नाम धरायो।
माखन चोर मुरारी।। राधेश्याम॰
एकदिन मान इन्द्र को मार्‍यो, नख ऊपर गोवर्धन धार्‍यो।
नाम पड्‍यो गिरिधारी।। राधेश्याम॰
दुर्योधनको भोग न खायो, रूखो साग बिदुर घर खायो।
ऐसे प्रेम-पुजारी।। राधेश्याम॰
करुणा कर द्रौपदी पुकारी, पटमें लिपट गये बनवारी।
निरख रहे नर नारी।। राधेश्याम॰
भक्त भक्त सब तुमने तारे, बिना भक्ति हम ठाड़े द्वारे।
लीजो खबर हमारी।। राधेश्याम॰
अर्जुनके रथ हाँकन हारे, गीताके उपदेश तुम्हारे।
चक्र-सुदर्शनधारी।। राधेश्याम॰

n

जय गोविन्द, जय गोपाल, केशव, माधव, दीनदयाल।
श्यामसुन्दर कन्हैयालाल, गिरिवरधारी नन्ददुलाल।।

अच्युत, केशव, श्रीधर माधव, गोपाल गोविन्द, हरि।
यमुना पुलिनमें वंशी बजावे, नटवर वेशधारी।।

n

ब्रज-जन मन सुखकारी।
राधे-श्याम श्यामा श्याम।।

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, गल वैजयन्ती माल।
चरणन नूपुर रसाल।। राधे०।।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवनहारी।
मोहन बंशीविहारी।। राधे०।।
वृन्दावनमें धेनु चरावे, गोपीजन मनहारी।
श्रीगोवर्धन धारी।। राधे०।।
राधा-कृष्ण मिलि अब दोऊ, गौर रूप अवतारी।
कीर्तन धर्म प्रचारी।। राधे०।।
तुम बिन मेरे और न कोई, नाम रूप अवतारी।
चरणनमें बलिहारी,
नारायण बलिहारी।। राधे०।।

n

भज गोविन्द, भज गोविन्द, भज गोविन्द का नाम रे।
गोविन्दके नाम बिना, तेरे कोई न आवे काम रे।।
ये जीवन है सुख दुःखका मेला,
दुनियादारी स्वप्नका खेला।
जाना तुझको पड़ेगा अकेला,
भज ले हरिका नाम रे।।
गोविन्दकी महिमा गाके,
प्रेमके उस पर फाग लगाके।
जीवन अपना सफल बना ले,
चल ईश्वरके धाम रे।।

n

सुन्दर लाला शचीर-दुलाला, नाचत श्रीहरि-कीर्तन में।
भाले चन्दन तिलक मनोहर, अलका शोभे कपोलन में।।
शिरे चूडा दरश निराले, वन फुलमाला हिया पर डोले।
पहिरन पीत-पटाम्बर शोभे, नूपुर रुणुझुनु चरणन में।।
कोई गावत राधा-कृष्णनाम, कोई गावत है हरिगुण गान।

मृदङ्ग ताल–मधुर रसाल, कोई गावत है रङ्ग में।।
सुन्दर लाला शचीर दुलाला, नाचत श्रीहरि–कीर्तन में।

n

बसो मेरे नयनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरति, श्यामरी सूरति, नयना बने विशाल।।
अधर सुधारस, मुरली बाजत, उर वैजन्तीमाल।
क्षुद्र घन्टिका कटितट शोभित, नूपुर शब्द रसाल।।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदायी, भकत–वत्सल गोपाल।।

n

पार करेंगे नैया रे, भज कृष्ण कन्हैया,
कृष्ण कन्हैया दाऊजी के भैया।
कृष्ण कन्हैया बंशी बजैया,
माखन चुरैया रे, भज कृष्ण कन्हैया।।
कृष्ण कन्हैया गिरिवर उठैया,
कृष्ण कन्हैया रास रचैया।
पार करेंगे नैया रे भज कृष्ण कन्हैया।।
मित्र सुदामा तण्डुल लाए,
गले लगा प्रभु भोग लगाये।
कहाँ कहाँ कह भैया रे, भज कृष्ण कन्हैया।।
अर्जुन का रथ रण में हाँका,
श्यामलिया गिरिधारी बाँका।
कालीनाग नथैया रे, भज कृष्ण कन्हैया।।
द्रुपत–सुता जब दुष्टन घेरी,
राखी लाज न कीनी देरी।
आगये चीर बढैया रे, भज कृष्ण कन्हैया।।

n

अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी।।

कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात यशोमति माखन कारण, बाँधे जाके पाँव।
श्यामकिशोर भयो नव गोरा, चैतन्य जाको नाम।।
पीताम्बर को भाव दिखावे, कटि कोपीन कसे।
गौर–कृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसे।।

n

मदन गोपाल शरण तेरी आयो।
चरण कमल की सेवा दीजो,
चेरो करि राखो घर जायो।।
धन्य धन्य मात पिता सुत बन्धू,
धन्य जननी जिन गोद खिलायो।
धन्य धन्य चरण चलत तीर्थ को,
धन्य गुरु जिन हरिनाम सुनायो।।
जे नर विमुख भये गोविन्द सों,
जन्म अनेक महादुःख पायो।
'श्रीभट्ट' के प्रभु दियो अभय–पद,
यम डरप्यो जब दास कहायो।।

n

हमारे ब्रज के रखवाले, कन्हैया राधिकारानी।
कन्हैया राधिकारानी, कन्हैया राधिकारानी।।
हमारे नयनों के तारे, कन्हैया राधिकारानी।
सहारा बे–सहारों के, कन्हैया राधिकारानी।।

n

आली! म्हांने लागे वृन्दावन नीको,
घर घर तुलसी, ठाकुर पूजा, दर्शन गोविन्दजी को।
आली! म्हांने लागे बृन्दावन नीको।।

निर्मल नीर बहत यमुना को, भोजन दूध दही को।
आली! म्हांने लागे बृन्दावन नीको।।
रत्न सिंहासन आप विराजे, मुकुट धर्‌यो तुलसी को।
आली! म्हांने लागे बृन्दावन नीको।।
कुञ्जन कुञ्जन रहत राधिका, शब्द सुनत मुरली को।
आली! म्हांने लागे बृन्दावन नीको।।
मीरा के प्रभु गिरिधरनागर, भजन बिना नर फीको।
आली! म्हांने लागे बृन्दावन नीको।।

n

जय मोर मुकुट पीताम्बरधारी।
जय मुरलीधर गोवर्धनधारी।।
श्रीराधावर कुञ्जबिहारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी।
जय यशोदानन्दन कृष्ण मुरारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी।।
जय गोपीजनवल्लभ वंशीबिहारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी।।

n

अच्युतं, केशवं, राम, नारायणं,
कृष्णं दामोदरं, वासुदेवं भजे।
श्रीधरं, माधवं, गोपिका-वल्लभं,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे।
राधिका नायकं कृष्णचन्द्रं भजे।।

n

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन को संग।
जिनके सङ्ग कुबुधि उपजति हैं, परत भजनमें भंग।।

कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग।।

खरको कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।
गजको कहा न्हवाये सरिता, बहुरि घरै खहि छंग।।

पाहन पतित बाँस नहीं बेधत, रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग।।

n

मैं तो रटूँगी राधा नाम, ब्रज की गलियन में।
खोई रहूँ आठों याम, ब्रज की गलियन में।।
इत उत डोलूँ कह-कह राधा, मिट जाये जीवन की व्याधा।
और मिल जाये घनश्याम, ब्रज की गलियन में।।१।।
उलझ-उलझ ब्रज करीलन में, सेवाकुञ्ज में या निधुवन में।
हो जाय जीवन की शाम, ब्रज की गलियन में।।२।।
अब तो चाह यही सखि मन की, धूल मिले हरि चरणन की।
और निकले तन सों प्राण, ब्रज की गलियन में।।३।।
कहीं मिल जाये घनश्याम, ब्रज की गलियन में।
मैं तो रटूँगी राधा नाम, ब्रज की गलियन में।।

n

हरिसे बड़ा हरिका नाम, प्रभुसे बड़ा प्रभुका नाम।
अन्तमें निकला ये परिणाम।

सुमिरो नाम रूप बिन देखे, कौड़ी लगे न दाम।।
नामके बाँधे खिंच आयेंगे, आखिर एक दिन श्याम।

द्रौपदीने जब नाम पुकारा, झट आ गए घनश्याम।।
साड़ी खैंचत हारा दुःशासन, साड़ी बढ़ाई श्याम।

जल डूबत गजराज पुकारो, आये आधे नाम।।
नामीको चिन्ता रहती है, नाम न हो बदनाम।

जिस सागरको लांघ सके ना, बिना पुलके राम।।
कूद गए हनुमान उसीको, लेके हरिका नाम।

वो दिल वाले डूब जायेंगे, जिनमें नहीं है नाम।।
वो पत्थर भी तेरेंगे जिन पर, लिखा रामका नाम।
हरिसे बड़ा हरिका नाम, प्रभुसे बड़ा प्रभुका नाम।।

n

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति।
डारि मथानी दधिमें किसीने, तब ध्यान आयो दधि चोरका ही।।

गद-गद कंठ पुकारती है, गोविन्द दामोदर माधवेति।
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

है लीपती आँगन नारि कोई, गोविन्द आवे मम् गृह खेले।
ध्यानस्थमें यही पद गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

माता यशोदा हरिको जगावे, जागो उठो मोहन नैन खोलो।
द्वारे खड़े ग्वाल बुला रहे हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

विद्यानुरागी निज पुस्तकोंमें, अर्थानुरागी धन संचयोंमें।
ये ही निराली ध्वनि गा रहे हैं, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

ले के करोंमें दोहनि अनोखी, गौ दुग्ध काढ़े अवला नवेली।
गौ दुग्ध धारा संग गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

जागे पुजारी हरि मन्दिरोंमें, जाके जगावें हरिको सबेरे।
हे क्षीरसिन्धु अब नेत्र खोलो, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

सोया किसीका सुत पालनेमें, डोरी करों से जब खेंचती है।
हो प्रेम मग्ना उसने पुकारा, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

रोया किसीका सुत पालनेमें, हो प्रेम मग्ना उसने पुकारा।
रोवो न गावो प्रभु संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

कोई नवेली पतिको जगावे, प्राणेश जागो अब नींद त्यागो।
बेला यही है हरि गीत गावो, गोविन्द दामोदर माधवेति।।

n

जय राधे जय राधे राधे, जय राधे जय श्रीराधे।
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण, जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण।।

श्यामा गौरी नित्यकिशोरी, प्रीतमजोरी श्रीराधे।
रसिक रसीलो छैलछबीलो, गनगरवीलो श्रीकृष्ण।।

रासविहारिनि रसविस्तारिनि पियउर धारिनि श्रीराधे।
नव-नवरंगी नवलत्रिभङ्गी, श्यामसुअङ्गी श्रीकृष्ण।।

प्राणपियारी रूपउजारी, अतिसुकुमारी, श्रीराधे।
नैन मनोहर महामोदकर, सुन्दरवरतर श्रीकृष्ण।।

शोभाश्रेनी मोहामैनी, कोकिलवैनी श्रीराधे।
कीरतिवन्ता कामिनिकन्ता, श्रीभगवन्ता, श्रीकृष्ण।।

चन्दावदनी कुन्दारदनी, शोभासदनी श्रीराधे।
परम उदारा प्रभा अपारा, अतिसुकुमारा श्रीकृष्ण।।

हंसागमनी राजतरमनी, क्रीड़ा कमनी श्रीराधे।
रूपरसाला नयनविशाला, परमकृपाला श्रीकृष्ण।।

कंचनवेली रतिरसरेली, अति अलबेली श्रीराधे।
सब सुख सागर सब गुनआगर रूप उजागर श्रीकृष्ण।।

रमणीरम्या तरुतरतम्या, गुण अगम्या श्रीराधे।
धामनिवासी प्रभाप्रकाशी, सहज सुहासी श्रीकृष्ण।।

शक्त्याह्लादिनि अतिप्रियवादिनि, उरउन्मादिनि श्रीराधे।
अङ्ग-अङ्ग टोना सरससलोना, सुभगसुठोना श्रीकृष्ण।।

राधानामिनि गुणअभिरामिनि श्रीहरिप्रियास्वामिनी श्रीराधे।
हरे हरे हरि हरे हरे हरि, हरे हरे हरि श्रीकृष्ण।।

n

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हमपर, जबतें स्याम सिधारे।।
अञ्जन थिर न रहत अंखियनमें, कर कपोल भये कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे।।
आँसू सलिल भये पग थाके, बहे जात सित तारे।
सूरदास अब डूबत है ब्रज, काहे न लेत उबारे।।

n

प्रबल प्रेमके पाले पड़कर, हरिका नियम बदलते देखा।
जिनकी केवल कृपादृष्टिसे, सभी सृष्टिको पलते देखा।
उनको गोकुलके गोरस पर, सौ सौ बार मचलते देखा।।

जिनके चरण-कमल कमलाके, करतल से न टलते देखा।
उनको ब्रज करील कुञ्जनमें, कंटक पद पर चलते देखा।।
जिनका ध्यान शुक-सनकादि से, न सम्भलते देखा।
उनको-ग्वालबाल सङ्गमें, लेकर गेंद उछलते देखा।।

n

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि विसरायो, ऐसौ नमक-हरामी।।१।।
भरि भरि उदर विषयकों धायो, जैसे सूकर-ग्रामी।
हरिजन छाँड़ि हरि बिमुखनकी, निसदिन करत गुलामी।।२।।
पापी कौन बड़ो जग मोते, सब पतितनमें नामी।
सूर पतित कौ ठौर कहाँ है, तुम बिन श्रीपति स्वामी।।३।।

n

ले लो रे कोई कृष्ण का प्यारा, आवाज लगाऊँ गली-गली,
कृष्ण नाम के हीरे मोती, मैं बिखराऊँ गली-गली।।
जिन-जिनने यह मोती लूटे, वे सब मालामाल हुए,
मायाके जो बने पुजारी, एक दिन वो कंगाल हुए।
सोना-चाँदी मायाबालो, मैं समझाऊँ गली-गली।।१।।
दौलतके दीवानों सुनलो, एक दिन ऐसा आयेगा,
धन, दौलत और माल खजाना, यहीं पड़ा रह जायेगा।
कञ्चन काया मिट्टी होगी, चर्चा होगी गली-गली।।२।।
कैसे-कैसे हरि भक्तोंने उस प्रभुको अपनाया है,
ईश्वर भी कैसे उन भक्तोंके मन भाया है।
तुलसी, मीरा और नरसीका, ज्ञान सुनाऊँ गली-गली।।३।।
अर्जुनको जब मोहने घेरा, प्रभुने संशय दूर किया,
ज्ञान धर्मकी ज्योति जलाकर, गीताका उपदेश दिया।
गीता-रामायण वेदोंका, सार सुनाऊँ गली-गली।।४।।

n

पायो जी म्हे तो कृष्ण रतन धन पायो।
वस्तु अमोक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।।

जनम जनमकी पूँजी पाई, जगमें सभी खोवायो।
खरचै न कोई चोर न लेवै, दिन–दिन बढ़त सवायो।।

सतकी नाव खैवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीराके प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो।।

n

अब आई बसंत बहार, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।
पिय प्यारे के संगमें प्यारी, याकी जोरी पै जाऊँ बलिहारी।
गलमें बहियाँ गलेमें डारि, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।।

कोई पायल ठुमक बजावें, सुर भरि–भरिके राग सुनावें।
अब मन्दी–मन्दी पड़त फुहार, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।।

चले शीतल पवन सुखदाई, चहुँ ओर हरियाली छाई।
अब ठंडी–ठंडी चलत बयार, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।।

झूला डारो कदमकी डारि, यापे झूलें वृषभानु दुलारी।
सब सखियाँ गाँवें मलार, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।।

याकि झांकि मुनिन मन मोहे, याकि उपमा कहे सबको हैं।
जाऊँ बालकृष्ण बलिहार, चलो सखी कुँजनमें वृन्दावनमें।।
अब आई बसंत बहार, चलो सभी कुँजनमें वृन्दावनमें।।

n

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।१।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्।।२।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।।३।।

n

मैंने रटना लगाई रे राधा नाम की।
मेरी पलकोंमें राधा, मेरी अलकोंमें राधा।
मैंने माँग भराई रे राधा नाम की।।१।।

मेरे नैनोंमें राधा, मेरे बैनोंमें राधा।
मैंने बैनी गुथाई रे, राधा नाम की।।२।।

मेरी दुलरीमें राधा, मेरी चुनरीमें राधा।
मैंने नथनी सजाई रे, राधा नाम की।।३।।

मेरे चलनेमें राधा, मेरे हलनेमें राधा।
कटि किंकणी बजाई रे, राधा नाम की।।४।।

मेरे दाँये बांये राधा, मेरे आगे पीछे राधा।
रोम-रोम रस छाई रे, राधा नाम की।।५।।

मेरे अंग-अंग राधा, मेरे संग-संग राधा।
'गोपाल' बंशी बजाई रे, राधा नाम की।।६।।

n

राधे झूलन पधारो झुक आये बदरा।
झुक आये बदरा घिर आये बदरा।।
ऐसो मान नहीं कीजे, हठ छोड़ो री अली।
तुम तो परम सयानी वृषभानुकी लली।।
साजो सोलह श्रृंगार, डारो नैनन कजरा।
पहरो पंचरंग साड़ी ओढ़ो श्याम चदरा।।
तेरो रसिक प्रीतम, मग जोहत खड़ो।
राधे जहाँ पग धारो श्याम नैना धरो।।
डारी रेशम डोरी जापै झूले राधा गोरी।
जाकी बैयाँ गोरी गोरी पहरे हाथन गजरा।।

n

झूला झूले राधादामोदर वृन्दावनमें।
कैसी छाई हरियाली आली कुंजनमें।।

इत नन्दको दुलारो, उत भानुकी दुलारी।
जोरी लागे अति प्यारी बसि नयननमें।।

जमुनाके कूल, पहिर सुरंग दुकूल।
तैसे खिल रहे फूल इन कदमनमें।।

गौर श्याम रंग, घन दामिनीके संग।
भई अखियाँ अपंग छवि भरी मनमें।।

राधा मुख और, नैन श्यामके चकोर।
सखियन प्रेम डोर लगी चरणनमें।।

संस्कृत गीति

श्रीमङ्गलगीतम्

श्रितकमलाकुचमण्डल! धृतकुण्डल! ए।
कलितललितवनमाल! जय जय देव! हरे।।१।।

दिनमणिमण्डलमण्डन! भवखण्डन! ए।
मुनिजनमानसहंस! जय जय देव! हरे।।२।।

कालियविषधरगञ्जन! जनरञ्जन! ए।
यदुकुलनलिनदिनेश! जय जय देव! हरे।।३।।

मधुमुरनरक-विनाशन! गरुड़ासन! ए।
सुरकुलकेलिनिदान! जय जय देव! हरे।।४।।

हे कमलाके अर्थात् सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधिकाके पयोधर-मण्डलका आश्रय लेनेवाले! हे मकराकृति कुण्डल धारण करनेवाले! एवं मनोहर वनमाला धारण करनेवाले! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।१।।

हे सूर्य मण्डलको विभूषित करनेवाले! भव-बन्धनका छेदन करनेवाले! अतएव मननशील मुनिजनोंके मनरूप सरोवरमें विहरण करनेवाले हंसस्वरूप! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।२।।

हे कालियनागके मदका मर्दन करनेवाले! अतएव ब्रजजनोंका मनोरंजन करनेवाले! एवं यदुकुलरूप कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यस्वरूप! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।३।।

हे मधु दैत्य, मुर दैत्य एवं नरकासुरका विनाश करनेवाले! गरुड़पर बैठनेवाले! अतएव देवगणोंकी क्रीड़ाके आदिकारणस्वरूप! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।४।।

अमलकमलदललोचन! भवमोचन! ए।
त्रिभुवनभवननिधान! जय जय देव! हरे।।५।।

जनकसुताकृतभूषण! जितदूषण! ए।
समरशमितदशकण्ठ! जय जय देव! हरे।।६।।

अभिनवजलधरसुन्दर! धृतमन्दर! ए।
श्रीमुखचन्द्रचकोर! जय जय देव! हरे।।७।।

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव! हरे।।८।।

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव! हरे।।९।।

(श्रीजयदेव गोस्वामीकृत)

हे निर्मल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले! संसारसे विमुक्त करनेवाले! अतएव त्रिभुवनरूप भवनके आधार-स्वरूप! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।५।।

हे रामावतारमें जानकीको विभूषित करनेवाले! दूषण नामक राक्षसको जीतनेवाले तथा युद्धमें रावणको शान्त करनेवाले! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।६।।

हे नवीन जलधरके समान वर्णवाले श्यामसुन्दर! मन्दराचलको धारण करनेवाले! तथा श्रीराधारूप महालक्ष्मीके मुखरूप चन्द्रपर आसक्त रहनेवाले चकोरस्वरूप! हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो।।७।।

हे जयदेव गोस्वामीके संकट हरनेवाले प्रभो! हम सब भक्त, तुम्हारे श्रीचरणोंमें विनम्र भावसे पड़े हुए हैं, यह ध्यान रखिए और अपने विनम्र-भक्तोंके विषयमें कल्याण विधान कीजिए।।८।।

हे देव! श्रीजयदेव कविके द्वारा विनिर्मित मङ्गलमय निर्मल यह गीत, तुम्हारी प्रसन्नताका सम्पादन करता रहे, अथवा श्रवण एवं गायन करनेवाले भक्तोंके लिए भी यह गीत हर्षित करता रहे। अतएव हे देव! हे हरे! तुम्हारी बारम्बार जय हो, जय हो।।९।।

श्रीदशावतारस्तोत्रम्

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्र-चरित्रमखेदम्।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे।।१।।

क्षितिरिह विपुलतरे तिष्ठति तव पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे।
केशव धृतकूर्मशरीर जय जगदीश हरे।।२।।

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे।।३।।

हे केशव! हे मीनका शरीर धारणकरनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका क्लेश हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि प्रलयकालीन समुद्रके जलमें हयग्रीव-नामक दैत्यको मारकर वेदोंका उद्धार तो तुमने ही किया है एवं उसी समय सप्तर्षियोंके सहित सत्यव्रत नामक राजर्षिको अनायास धारण करनेके लिए, नौकाका-सा चरित्र करनेवाले भी तो तुम ही हो।।१।।

हे केशव! हे कच्छपका शरीर धारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका मन हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि इस कच्छप अवतारमें पृथ्वीके धारण करनेसे अथवा मन्दराचलके धारण करनेसे, सूखे व्रणसमूहसे अतिशय कठिन एवं अत्यन्त विशाल तुम्हारे पृष्ठभागपर पृथ्वी स्थित है।।२।।

हे केशव! हे वराहका रूपधारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका पाप हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम्हारे दाँतके अग्रभागमें संलग्न हुई पृथ्वी, चन्द्रमामें निमग्न कलङ्की कलाकी भाँति निवास करती है।।३।।

तब करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्।
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे।।४।।

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन।
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे।।५।।

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्।
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे।।६।।

हे केशव! हे नृसिंहरूप धारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका कष्ट हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम्हारे श्रेष्ठकरकमलमें अद्भुत अग्रभागवाला एक नख है, जिसने हिरण्यकशिपुके शरीररूप भ्रमरको विदीर्ण कर दिया। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि साधारणतः कमलके अग्रभागको भ्रमर ही विदीर्ण करता है, किन्तु यहाँ तो कमलके अग्रभागने ही भ्रमरको विदीर्ण कर डाला है।।४।।

हे केशव! हे वामनरूप धारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंका अहङ्कार हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम बलिराजके द्वारा दी हुई पृथ्वीको नापते समय, बलिराजाको छलते रहते हो, अतः अद्भुत वामन रूपवाले हो! उसी समय तुम्हारे चरण–नखसे उत्पन्न हुए गङ्गाजलके द्वारा, तुम समस्तजनोंको पवित्र करने वाले हो।।५।।

हे केशव! हे परशुरामका रूप धारण करनेवाले! जगदीश! हे संसारका सन्ताप हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि ब्राह्मण–विरोधी क्षत्रियोंके रुधिरमय जलमें (कुरुक्षेत्रमें), सम्पूर्ण विश्वको पाप एवं सन्तापरहित करते हुए, आज भी स्नान कराते रहते हो।।६।।

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुख—मौलिबलिं रमणीयम्।
केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे।।७।।
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिभीतिमिलित-यमुनाभम्।
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे।।८।।
निन्दसि यज्ञ विधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदय! दर्शित-पशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।।९।।
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे।।१०।।

हे केशव! हे रामचन्द्रका विग्रह धारण करने वाले! जगदीश! हे ऋषियोंकी व्यथा हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम रामावतारमें लङ्काके रणाङ्गणमें दशों दिक्पालोंके द्वारा वांछनीय एवं रमणीय, रावणके मस्तकरूप उपहारको दशों दिशाओंमें वितरण करते रहते हो।।७।।

हे केशव! हे बलरामका रूप धारण करनेवाले! जगदीश! हे दुष्टोंका मद हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो, क्योंकि तुम बलराम अवतारमें गौरवर्ण वाले श्रीविग्रहमें, सजल-जलदके समान नीलाम्बरको धारण करते रहते हो, वह नीलाम्बर, हलके प्रहारसे भयभीत हुई, अतएव सम्मिलित हुई यमुनाके समान प्रतीत होता है।।८।।

हे केशव! हे बुद्धका शरीर धारण करनेवाले! जगदीश! हे पाषण्डका हरण करनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम दयासे युक्त हृदयवाले हो! अतएव अहिंसारूप परमधर्मको मानने वाले हो। अहह! अतएव पुशओंकी हिंसाका प्रदर्शन करनेवाले, यज्ञ विधिके श्रुति समुदायकी निन्दा करते रहते हो।।९।।

हे केशव! हे कल्कि शरीर धारण करनेवाले! जगदीश! हे कलिमलको हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम, म्लेच्छ-समुदायको मारनेके लिए, दुष्टोंका विनाशसूचक धूमकेतु (पुच्छलतारा) की तरह अनिर्वचनीय कराल तलवारको धारण करते रहते हो।।१०।।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं
शृणु शुभदं सुखदं भवसारम्।
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे।।११।।

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।।१२।।
(श्रीजयदेव कृत)

हे केशव! हे दस-प्रकारके अवतार धारण करनेवाले! जगदीश! हे भक्तोंकी वासना हरनेवाले हरे! तुम्हारी जय हो; तुम्हारे श्रीचरणोंमें मेरी यही विनम्र प्रार्थना है कि, श्रीजयदेव कविके द्वारा कहे हुए, इस दशावतार स्तोत्रको तुम प्रेमपूर्वक सुनते रहो; क्योंकि यह स्तोत्र तुम्हारे अवतारोंके सारांशसे भरा हुआ है, अतएव सर्वश्रेष्ठ, सुखद और मङ्गलकारी है।।११।।

हे दश-अवतार धारण करनेवाले श्रीकृष्ण! तुम्हारे लिए मेरा कोटिशः प्रणाम है; क्योंकि तुम मत्स्यरूपसे वेदोंका उद्धार करनेवाले हो, कूर्मरूपसे संसारको धारण करनेवाले हो, वराहरूपसे भूगोलको उठानेवाले हो, श्रीनृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपु दैत्यको विदीर्ण करनेवाले हो, श्रीवामनरूपसे बलिको छलनेवाले हो, श्रीपरशुरामरूपसे दुष्ट-क्षत्रियोंका संहार करनेवाले हो, श्रीरामरूपसे रावणको जीतनेवाले हो, श्रीबलरामरूपसे हलको धारण करनेवाले हो, श्रीबुद्धरूपसे जीवोंपर करुणाका विस्तार करनेवाले हो और कल्किरूपसे म्लेच्छोंको मूर्च्छित करनेवाले हो।।१२।।

श्रीजगन्नाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-सङ्गीत-तरलो
मुदाभीरीनारी – वदनकमलास्वाद – मधुपः ।
रमा – शम्भु – ब्रह्मामरपति – गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।१।।

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचरि-कटाक्षं विदधते।
सदा श्रीमद्वृन्दावन – वसति – लीलापरिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।२।।

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज-वलभद्रेण बलिना।
सुभद्रा – मध्यस्थः सकल – सुर – सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।३।।

कभी-कभी यमुनातीरस्थ श्रीवृन्दावनमें वेणुगीतमें चञ्चल, एवं गोपवनिताओंके मुखकमलके आनन्दपूर्वक आस्वादन करनेवाले भ्रमरस्वरूप तथा लक्ष्मी-शिव-ब्रह्मा-इन्द्र एवं गणेश आदि देवताओंके द्वारा जिनके श्रीचरण पूजित होते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।१।।

बायीं भुजामें वेणु, सिरपर मोरपंख, कटितटमें पीताम्बर एवं अपने नेत्रप्रान्तमें सहचरोंके कटाक्षको धारण करनेवाले तथा श्रीवृन्दावनके निवासकी लीलाओंसे जो सदैव परिचित हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।२।।

महासमुद्रके तीरपर सुवर्णके समान सुन्दर नीलाचलके शिखरमें, अपने बड़ेभाई प्रबल बलदेवजीके साथ, अपने मन्दिरमें निवास करनेवाले, एवं सुभद्रा जिनके बीचमें विराजमान है तथा जो समस्त देवताओंको अपनी सेवाका अवसर देते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।३।।

कृपा–पारावारः सजल–जलद–श्रेणि–रुचिरो
रमावाणीरामः स्फुरदमल – पंकेरुहमुखः।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा–गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।४।।

रथारूढो गच्छन् पथि मिलित–भूदेव पटलैः
स्तुति प्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।५।।

परंब्रह्मापीडः कुवलय–दलोत्फुल्ल–नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित–चरणोऽनन्त–शिरसि।
रसानन्दी राधा–सरस–वपुरालिङ्गन–सुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।६।।

जो करुणावरुणालय हैं, सजल–जलदश्रेणीके समान श्यामसुन्दर हैं एवं रमा तथा सरस्वतीदेवीके साथ विहार करनेवाले हैं, जिनका श्रीमुख विकसित निर्मल कमलके समान है, जो समस्त देवेन्द्रोंके आराधनीय हैं, तथा जिनके दिव्यचरित्र श्रुतियोंके शिरोभागमें गाये गये हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।४।।

रथमें बैठकर चलते समय, मार्गमें मिलनेवाले ब्राह्मणसमुदायके द्वारा, पग–पगपर अपनी स्तुतियोंके प्राकट्यको सुनकर, जो दयासे युक्त हो जाते हैं, अतएव जो दयाके सिन्धु एवं समस्त जगत्के बन्धु कहलाते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव, श्रीलक्ष्मीदेवीके सहित मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।५।।

जो मुकुटमणिस्वरूप परब्रह्म हैं, जिनके दोनों नेत्र नीलकमलदलके समान खिले हुए हैं, जो नीलाचलमें निवास करनेवाले हैं, शेषजीके सिरपर अपने चरणोंको स्थापित करनेवाले हैं, एवं भक्तिरससे ही आनन्दित होनेवाले हैं, तथा श्रीराधिकाके सरसशरीरके आलिङ्गनसे ही जिनको सुख मिलता है, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।६।।

न वै याचे राज्यं न च कनक-माणिक्य-विभवं
न याचेऽहं रम्यां सकल-जन-काम्यां वरवधूम्।
सदा काले काले प्रमथपतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।७।।

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते!
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते!।
अहो दीनेऽनाथे निहित-चरणो निश्चितमिदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।।८।।

जगन्नाथाष्टकं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः शुचि।
सर्वपाप-विशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति।।९।।

मैं, प्रसन्न हुए श्रीजगन्नाथदेवसे राज्य नहीं माँगता एवं सुवर्ण-मणि-माणिक्यरूप वैभवको भी नहीं माँगता तथा सकलजन वांछनीय सुन्दरीनारीको भी मैं नहीं चाहता; किन्तु जिनके चारुचरित्र शिवजीके द्वारा समय-समयपर सदैव गाये जाते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।७।।

हे सुरपते! तुम मेरे असार-संसारको शीघ्र ही हर लो। हे यादवपते! तुम मेरे उत्कृष्ट पापोंकी श्रेणीको हर लो। अहह! जो दीन एवं अनाथके ऊपर ही अपने श्रीचरणको स्थापित करते हैं, यह जिनका निश्चित व्रत है, वे श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।।८।।

जो व्यक्ति पवित्र एवं सावधान होकर, पुण्यमय श्रीजगन्नाथाष्टकका पाठ करेगा, वह व्यक्ति सब पापोंसे रहित, विशुद्ध चित्तवाला होकर, विष्णुलोकको प्राप्त कर लेगा।।९।।

n

श्रीश्रीकेशवाचार्याष्टकम्

(त्रिदण्डिस्वामी-श्रीमद्भक्तिवेदान्त-त्रिविक्रम महाराज-कृतः)

नमो ॐविष्णुपादाय आचार्य-सिंह-रूपिणे।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव इति नामिने॥१॥

श्रीसरस्वत्यभीष्सितं सर्वथा सुष्ठु-पालिने।
श्रीसरस्वत्यभिन्नाय पतितोद्धार-कारिणे॥२॥

वज्रादपि कठोराय चापसिद्धान्त नाशिने।
सत्यस्यार्थे निर्भीकाय कुसंग-परिहारिणे॥३॥

अतिमर्त्य-चरित्राय स्वाश्रितानाञ्च पालिने।
जीव-दुःखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने॥४॥

विष्णुपाद-प्रकाशाय कृष्ण-कामैक-चारिणे।
गौर-चिन्ता-निमग्नाय श्रीगुरुं हृदि धारिणे॥५॥

ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव नामक आचार्य-केशरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥१॥

जो (जगद्गुरु) आचार्य श्रील सरस्वती प्रभुपादके अभीप्सित अथवा मनोभीष्टका सर्वतोभावेन भलीभाँति पालन करने वाले हैं एवं जो पतित-उद्धारके कार्यमें उन्हीं सरस्वती ठाकुरसे अभिन्न हैं, उन्हें नमस्कार है॥२॥

जो अपसिद्धान्तको ध्वंस करने, दुःसंग दूर करने तथा सत्यका स्थापन करनेमें निर्भीक और वज्रकी अपेक्षा भी कठोर हैं, उन्हें नमस्कार है॥३॥

जो अतिमर्त्य (अप्राकृत) चरित्रविशिष्ट हैं, जो अपने आश्रितजनोंके पालनकर्ता हैं, जो जीवोंके दुःखसे दुःखी है तथा जो नाम-प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, उनको नमस्कार है।।४।।

जो साक्षात् श्रीविष्णुपादपद्मके प्रकाशस्वरूप हैं, जो केवल कृष्ण-कामनाकी पूर्तिमें ही लगे रहते हैं, जो चैतन्य महाप्रभुकी चिन्तामें निमग्न हैं तथा जिन्होंने अपने श्रीगुरुदेवको सर्वदा हृदयमें धारण कर रखा है, उन्हें नमस्कार है।।५।।

विश्वं विष्णुमयमिति स्निग्ध-दर्शन-शालिने।
नमस्ते गुरु-देवाय कृष्ण-वैभव-रूपिणे॥६॥

श्रीश्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः स्थापकाय च।
श्रीश्रीमायापुर-धाम्नः सेवा-समृद्धि-कारिणे॥७॥

नवद्वीप-परिक्रमा येनैव रक्षिता सदा।
दीनं प्रति दयालवे तस्मै श्रीगुरवे नमः॥८॥

देहि मे तव शक्तिस्तु दीनेनेयं सुयाचिता।
तव पाद-सरोजेभ्यो मतिरस्तु प्रधाविता॥९॥

जो विश्वका विष्णुमय दर्शन करते हैं। ऐसे स्निग्ध दर्शनसे युक्त, कृष्ण-वैभवरुपी श्रीगुरुदेवको नमस्कार है।।६।।

जो श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के संस्थापक हैं, एवं (श्रीगौर-जन्मस्थान) श्रीश्रीमायापुर धामकी सेवाको समृद्ध करने वाले हैं, उनको नमस्कार है।।७।।

जिनके द्वारा श्रीधाम नवद्वीप-परिक्रमा सदा रक्षित है एवं जो दीनजनोंके प्रति दयालु हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है।।८।।

हे गुरुदेव! यह दीन व्यक्ति सब प्रकारसे आपके शक्तिकी (कृपाकी) कामना करता है, उसे मुझे दान करें। आपके पाद-पद्मोंमें मेरी मति लगी रहे।।९।।

श्रीलप्रभुपाद–दशकम्

(श्रील भक्तिरक्षक–श्रीधर गोस्वामी महाराज–विरचितम्)

सुजनार्बुदराधितपादयुगं युगधर्मधुरन्धर पात्रवरम्।
वरदाभयदायक–पूज्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्।।१।।
भजनोर्जितसज्जनस पतिं पतिताधिककारुणिकैकगतिम्।
गतिवञ्चितवञ्चकाचिन्त्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।२।।
अतिकोमलकाञ्चनदीर्घतनुं तनुनिन्दितहेममृणालमदम्।
मदनार्बुदवन्दितचन्द्रपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।३।।
निजसेवकतारकरञ्जिविधुं विधूताहितहुङ्कृतसिंहवरम्।
वरणागतबालिश–शन्दपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।४।।

मैं कोटि–कोटि सज्जनोंके द्वारा आराधित, कृष्ण सङ्कीर्त्तन युग–धर्मके संस्थापक, विश्ववैष्णव राजसभाके पात्रराज अर्थात् अधिकारीवर्गमें श्रेष्ठतम, निखिल जीवोंके भय दूर करनेवालोंकी भी मनोकामना पूर्ण करनेवाले, सर्वपूज्य उन श्रील प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें सदा–सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।१।।

जो भजन–सम्पन्न सज्जन–वृन्दोंके अधिपति हैं, जो पतितजनोंके प्रति अति करुणामय तथा उनकी एकमात्र गति हैं एवं जो वञ्चकोंके भी वञ्चक हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके अचिन्त्य चरणकमलोंमें सदा–सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।२।।

अतिकोमल काञ्चनवर्णवाले सुदीर्घ तनु जिसके द्वारा स्वर्णमय कमलनालोंकी मत्तता (सौन्दर्य) भी निन्दित होती है, जिन नख–चन्द्रोंकी वन्दना कोटि–कोटि कामदेव करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा–सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।३।।

जो नक्षत्र–मण्डलको रंजित करनेवाले चन्द्रकी तरह सेवक–मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर उनके चित्तको प्रफुल्लित रखते हैं, भक्तिविद्वेषिजन जिनके सिंहनादसे भयभीत रहते हैं एवं निरीह व्यक्ति जिनके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहणकर परम कल्याण लाभ करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा–सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।४।।

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं भुवनेषु विकीर्त्तित गौरदयम्।
दयनीयगणार्पित-गौरपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।५।।
चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं गुरु-गौरकिशोरक-दास्यपरम्।
परमादृतभक्तिविनोदपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।६।।
रघुरूपसनातनकीर्त्तिधरं धरणीतलकीर्त्तितजीवकविम्।
कविराज नरोत्तमसख्यपदमं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।७।।
कृपया हरिकीर्त्तनमूर्त्तिधरं धरणीभरहारक-गौरजनम्।
जनकाधिकवत्सल स्निग्धपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।८।।

जिन्होंने श्रीगौरधामका (श्रीनवद्वीपधामका) विपुल ऐश्वर्य प्रकटित किया है, जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेवकी महोदारताकी कथाओंका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार किया है एवं जिन्होंने अपने कृपापात्रोंके हृदयमें श्रीगौरपादपद्मकी स्थापना की है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।५।।

जो चैतन्यमहाप्रभुके आश्रितजनोंके नित्य आश्रयस्थल और जगद्गुरु हैं, जो अपने गुरु श्रीगौरकिशोरके सेवापरायण हैं एवं जो श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सम्बन्धमात्रसे ही परम आदरयुक्त हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।६।।

जो श्रीरूप, सनातन और रघुनाथके कीर्त्तिरूपी झण्डेका उत्तोलनकर विराजमान हैं, अनेक लोग इस धरणीतलपर जिन्हें पाण्डित्य-प्रतिभामय जीव गोस्वामीसे अभिन्न तनु कहकर उनकी प्रशंसा किया करते हैं एवं जिनका श्रीलकृष्णदास कविराज तथा ठाकुर नरोत्तमसे सख्यभाव है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।७।।

जीवोंके प्रति असीम कृपाकर जो मूर्त्तिमान हरिकीर्त्तनरूपमें प्रकाशित हैं, जो धरणीके पापभारको दूर करनेवाले गौरपार्षद हैं एवं जो जीवोंके प्रति पितासे भी अधिक वात्सल्यके सुकोमल आकरस्वरूप हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।८।।

शरणागतकिङ्करकल्पतरुं तरुधिक्कृतधीरवदान्यवरम्।
वरदेन्द्रगणार्चितदिव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्।।९।।
परहंसवरं परमार्थपतिं पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम्।
यतिराजगणैः परिसेव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्।।१०।।
वृषभानुसुतादयितानुचरं चरणाश्रित रेणुधरस्तमहम्।
महदद्भुतपावनशक्तिपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्।।११।।

शरणागत किङ्करोंके लिए (अभीष्ट प्रदान करनेमें) जो कल्पतरुके समान हैं, जिनकी सहिष्णुता और उदारता वृक्षोंको भी लज्जित करती हैं एवं वरदाताओंमें श्रेष्ठ व्यक्ति भी जिनके दिव्य श्रीचरणकमलोंकी पूजा किया करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।९।।

जो परमहंसकुलके चूड़ामणि हैं, जो परम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम-सम्पत्तिके मालिक हैं, पतित जीवोंके उद्धारके लिए जिन्होंने संन्यासीका वेश धारण किया है एवं श्रेष्ठ त्रिदण्डि संन्यासियोंका समूह जिनके पादपद्मोंकी सेवा करता है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।१०।।

जो वृषभानुनन्दिनीके परमप्रिय अनुचर हैं, जिनकी चरण-रजको मैं अपने मस्तकपर धारण करनेके सौभाग्यके लिए अभिमान करता हूँ, उन अद्भुत पावनीशक्तिसम्पन्न श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें मैं सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ।।११।।

श्रीषड्गोस्वाम्यष्टकम्

कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-परौ प्रेमामृताम्भोनिधी
धीराधीरजन-प्रियौ प्रियकरौ निर्मत्सरौ पूजितौ।
श्रीचैतन्य-कृपाभरौ भुवि भुवो भारावहन्तारकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।१।।

नानाशास्त्र-विचारणैक-निपुणौ सद्धर्म-संस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्ण - पदारविन्द - भजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।२।।

मैं, श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपालभट्ट नामक इन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीलाओंके कीर्तन, गायन एवं नृत्यपरायण थे; प्रेमामृतके समुद्रस्वरूप थे, विद्वान् एवं अविद्वान्‌रूप सर्वसाधारण जनमात्रके प्रिय थे तथा सभीके प्रियकार्योंको करनेवाले थे, मात्सर्यरहित एवं सर्वलोक पूजित थे, श्रीचैतन्यदेवकी अतिशय कृपासे युक्त थे, भूतलमें भक्तिका विस्तार करके भूमिका भार उतारनेवाले थे।।१।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो अनेक शास्त्रोंके गूढ़तात्पर्य विचार करनेमें परमनिपुण थे, भक्तिरूप-परमधर्मके संस्थापक थे, जनमात्रके परमहितैषी थे, तीनों लोकोंमें माननीय थे, शरणागतवत्सल थे एवं श्रीराधाकृष्णके पदारविन्दके भजनरूप आनन्दसे मत्तमधुपके समान थे।।२।।

श्रीगौरांग-गुणानुवर्णन-विधौ श्रद्धा-समृद्धयन्वितौ
पापोत्ताप-निकृन्तनौ तनुभृतां गोविन्द-गानामृतैः।
आनन्दाम्बुधि-वर्धनैक-निपुणौ कैवल्य-निस्तारकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।३।।
त्यक्त्वा तूर्णमशेष-मण्डलपति-श्रेणीं सदा तुच्छवत्
भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीन-कन्थाश्रितौ।
गोपीभाव-रसामृताब्धि-लहरी-कल्लोल-मग्नौ मुहु-
र्वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।४।।
कूजत्-कोकिल-हंस-सारस-गणाकीर्णे मयूराकुले
नानारत्न-निबद्ध-मूल-विटप-श्रीयुक्त-वृन्दावने।
राधाकृष्णमहर्निशं प्रभजतौ जीवार्थदौ यौ मुदा
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।५।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीगौराङ्गदेवके गुणानुवादकी विधिमें श्रद्धारूप-सम्पत्तिसे युक्त थे, श्रीकृष्णके गुणगानरूप-अमृतकी वृष्टिके द्वारा प्राणीमात्रके पाप-तापको दूर करनेवाले थे तथा आनन्दरूप-समुद्रको बढ़ानेमें परमकुशल थे, भक्तिका रहस्य समझाकर, मुक्तिकी भी मुक्ति करनेवाले थे।।३।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो समस्त मण्डलोंके आधिपत्यकी श्रेणीको, लोकोत्तर वैराग्यसे शीघ्र ही तुच्छकी तरह सदाके लिए छोड़कर, कृपापूर्वक अतिशय दीन होकर, कौपीन एवं कंथा (गूदड़ी) को धारण करनेवाले थे तथा गोपीभावरूप रसामृतसागरकी तरंगोंमें आनन्दपूर्वक निमग्न रहते थे।।४।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो कलरव करनेवाले कोकिल-हंस-सारस आदि पक्षिओंकी श्रेणीसे व्याप्त एवं मयूरोंके केकारवसे आकुल, तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे निबद्ध मूलवाले वृक्षोंके द्वारा शोभायमान श्रीवृन्दावनमें, रातदिन श्रीराधाकृष्णका भजन करते रहते थे तथा जीवमात्रके लिए हर्षपूर्वक भक्तिरूप परमपुरुषार्थ देनेवाले थे।।५।।

संख्यापूर्वक – नामगाननतिभिः कालावसानीकृतौ
निद्राहार-विहारकादि-विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ।
राधाकृष्ण – गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।६।।
राधाकुण्ड-तटे कलिन्द-तनया-तीरे च वंशीवटे
प्रेमोन्माद-वशादशेष-दशया ग्रस्तौ प्रमत्तौ सदा।
गायन्तौ च कदा हरेर्गुणवरं भावाभिभूतौ मुदा
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।७।।
हे राधे! व्रजदेविके! च ललिते! हे नन्दसूनो! कुतः
श्रीगोवर्धन-कल्पपादप-तले कालिन्दिवन्ये कुतः।
घोषन्ताविति सर्वतो व्रजपुरे खेदैर्महाविह्वलौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।८।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो अपने समयको संख्यापूर्वक नाम-जप, नामसंकीर्तन एवं संख्यापूर्वक प्रणाम आदिके द्वारा व्यतीत करते थे; जिन्होंने निद्रा-आहार-विहार आदिपर विजय प्राप्तकरली थी एवं जो अपनेको अत्यन्त दीन मानते थे तथा श्रीराधाकृष्णके गुणोंकी स्मृतिसे प्राप्त माधुर्यमय आनन्दके द्वारा विमुग्ध रहते थे।।६।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो प्रेमोन्मादके वशीभूत होकर, विरहकी समस्त दशाओंके द्वारा ग्रस्त होकर, प्रमादीकी भाँति, कभी राधाकुण्डके तटपर, कभी युमनाके तटपर एवं कभी वंशीवटपर सदैव घूमते रहते थे; और कभी-कभी श्रीहरिके गुणश्रेष्ठोंको हर्षपूर्वक गाते हुए भावमें विभोर रहते थे।।७।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियोंकी वन्दना करता हूँ कि, जो "हे व्रजकी पूजनीय देवि! राधिके! आप कहाँ हो? हे ललिते! आप कहाँ हो? हे व्रजराजकुमार! आप कहाँ हो? श्रीगोवर्धनके कल्पवृक्षोंके नीचे बैठे हो अथवा कालिन्दीके कमनीय कूलपर विराजमान वन समूहमें भ्रमण कर रहे हो क्या?" इस प्रकार पुकारते हुए विरहजनित पीड़ाओंसे महान विह्वल होकर, व्रजमण्डलमें चारों ओर भ्रमण करते थे।।८।।

श्रीनित्यानन्दाष्टकम्

शरच्चन्द्र-भ्रान्तिं स्फुरदमल-कान्तिं गजगतिं
हरि-प्रेमोन्मत्तं धृत-परम-सत्त्वं स्मितमुखम्।
सदा घूर्णन्नेत्रं कर-कलित-वेत्रं कलिभिदं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि।।१।।

रसानामागारं स्वजनगण - सर्वस्वमतुलं
तदीयैक-प्राणप्रतिम-वसुधा-जाह्नवा-पतिम्।
सदा प्रेमोन्मादं परमविदितं मन्द-मनसां
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि।।२।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्षके मूलस्वरूप हैं, जिनका मुखमण्डल शरत्कालीन चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर देता है, जिनकी निर्मलकान्ति स्फूर्ति पा रही है, जिनकी गति मत्तगजेन्द्रके समान है, जो श्रीकृष्णप्रेममें सदैव उन्मत्त बने रहते हैं, जो विशुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रहको धारण करनेवाले हैं, जिनका श्रीमुख मन्दमुस्कानसे युक्त है एवं जिनके दोनों नेत्र श्रीहरिप्रेमसे सदा घूमते रहते हैं, जिनके हस्तकमलमें वेत्र शोभा पा रहा है और जो नामसंकीर्तनके द्वारा कलिकालका भेदन करनेवाले हैं।।१।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्षके मूलस्वरूप हैं, जो सभी रसोंके आधार हैं, अपने भक्तजनोंके सर्वस्व हैं, अनुपमेय हैं; अपने प्राणोंके समान प्रियतमा वसुधा एवं जाह्नवादेवीके पति हैं, श्रीकृष्णप्रेममें जो सदैव उन्मत्त बने रहते हैं एवं जो केवल मन्दबुद्धिवाले व्यक्तियोंके द्वारा अज्ञात हैं।।२।।

शीचसूनु-प्रेष्ठं निखिल-जगदिष्टं सुखमयं
कलौ मज्जज्जीवोद्धरण-करणोद्दाम-करुणम्।
हरेराख्यानाद्वा भव-जलधि-गर्वोन्नति हरं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि।।३।।
अये भ्रातर्नृणां कलि-कलुषिणां किन्नु भविता
तथा प्रायश्चितं रचय यदनायासत इमे।
व्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मंत्रयति यो
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि।।४।।
यथेष्टं रे भ्रातः! कुरु हरिहरि-ध्वानमनिशं
ततो वः संसाराम्बुधि-तरण-दायो मयि लगेत्।
इदं बाहु-स्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि।।५।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्षके मूलस्वरूप हैं, श्रीशचीनन्दनके अतिशय प्यारे हैं, समस्त जगत्के इष्ट हैं, सुखमय स्वरूप हैं, कलियुगमें डूबते हुए जीवोंका उद्धार करनेके लिए अपार करुणासे युक्त हैं और श्रीहरिनाम-संकीर्तनके द्वारा संसार-सागरके अहंकारकी उन्नतिको हरनेवाले हैं।।३।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्षके मूलस्वरूप हैं एवं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेवके साथ इस प्रकारका विचार करते रहते हैं कि "हे भैया गौराङ्ग! कलिकालसे कलुषित जीवोंकी क्या गति होगी तथा कौनसा प्रायश्चित होगा? उसकी रचना कीजिए कि जिससे ये कलिकालके जीव अनायास ही आपको प्राप्त कर लें"।।४।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्षके मूलस्वरूप हैं तथा जो गौड़देशमें प्रत्येक घरके दरवाजेपर अपनी भुजाओंको फैलाकर, "हे भैयाओ! तुम सब मिलकर स्वेच्छापूर्वक निरन्तर श्रीहरिनामकी ध्वनि करते रहो, ऐसा करनेसे तुम सबका संसार-सागरसे तरनेका 'दायित्व' मेरे ऊपर जायगा" इस प्रकार उच्चारण करते हुए घूमते रहते हैं।।५।।

बलात् संसाराम्भोनिधि–हरण–कुम्भोद्भवमहो
सतां श्रेयः–सिन्धून्नति–कुमुद–बन्धुं समुदितम्।
खलश्रेणी–स्फूर्जत्तिमिर–हर–सूर्य–प्रभमहं
भजे नित्यानन्दं भजन–तरु–कन्दं निरवधि।।६।।
नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि
व्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि नदयन्तं जनगणम्।
प्रकुर्वन्तं सन्तं सकरुण–दृगन्तं प्रकलनाद्
भजे नित्यानन्दं भजन–तरु–कन्दं निरवधि।।७।।
सुबिभ्राणं भ्रातुः कर–सरसिजं कोमलतरं
मिथो वक्त्रालोकोच्छलित–परमानन्दहृदयम्।
भ्रमन्तं माधुर्यैरहह! मदयन्तं पुरजनान्
भजे नित्यानन्दं भजन–तरु–कन्दं निरवधि।।८।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्षके मूलस्वरूप हैं एवं जो हठपूर्वक संसार–सागरका शोषण करनेके लिए अगस्त्यस्वरूप हैं तथा सज्जनोंके कल्याणरूप–समुद्रकी उन्नतिके लिए प्रकट पूर्णचन्द्रस्वरूप हैं और खलश्रेणीके स्फूर्त्ति पाते हुए अज्ञानरूपी–अन्धकारको हरनेके लिए सूर्यस्वरूप हैं।।६।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्षके मूलस्वरूप हैं एवं जो गौड़देशके प्रत्येक मार्गमें नाचते–गाते "हरि बोल", "हरि बोल" की ध्वनि करते हुए भ्रमण करते रहते हैं तथा अपने ऊपर दया न करनेवाले जनसमुदायको भी प्रेमपूर्वक देखकर, करुणायुक्त कटाक्षवाले बनाते रहते हैं।।७।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभुका निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्षके मूलस्वरूप हैं तथा जो अपने भैया श्रीगौराङ्गमहाप्रभुके परमकोमल करकमलको धारण करनेवाले हैं, तथा परस्पर श्रीमुखके दर्शनसे जिनके हृदयका परमानन्द उछल रहा है और जो अपने माधुर्यसे पुरवासीजनोंको हर्षित करते हुए भ्रमण करते रहते हैं।।८।।

रसानामाधारं रसिक – वर – सद्वैष्णव – धनं
रसागारं सारं पतित-तिततारं स्मरणतः।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठति य-
स्तदंध्रिद्वन्द्वाब्जं स्फुरतु नितरां तस्य हृदये।।९।।

श्रीनित्यानन्द प्रभुके इस अपूर्व अष्टकका जो व्यक्ति प्रेमपूर्वक पाठ करता है, उसके हृदयमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके दोनों चरणकमल अत्यन्त स्फूर्ति पाते रहें, यह अष्टककारका आशीर्वाद है; क्योंकि यह श्रीनित्यानन्दाष्टक रसोंका आधार है, रसिकवर-वैष्णवश्रेष्ठोंका धनस्वरूप है, भक्तोंके लिए भक्तिरसोंका सारस्वरूप आगार है। इस अष्टकमें 'शिखरिणी' नामक छन्द हैं।।९।।

श्रीचैतन्याष्टकम्

सदोपास्यः श्रीमान् धृत-मनुज-कायैः प्रणयितां
वहद्भिर्गीर्वाणैर्गिरिश – परमेष्ठिप्रभृतिभिः।
स्वभक्तेभ्यः शुद्धां निज-भजन-मुद्रामुपदिशन्
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।१।।

श्रीवृन्दावनमें विद्यमान श्रीरूप गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमें विराजमान श्रीचैतन्यमहाप्रभुको "कृष्णवर्णं" इत्यादि भा. ११/५/३२ शास्त्रके द्वारा एवं उन्हीं (श्रीचैतन्यदेव) के अनुग्रहके द्वारा उनको साक्षात् भगवद् रूपसे अनुभवमें लाकर, तत्त्वरूपसे वर्णन करते हुए, उनके दर्शनकी आकांक्षासे, विरहविह्वल होकर कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे नेत्रगोचर होंगे क्या? जो कि मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले एवं अपनेमें प्रेमधारण करनेवाले शिव, ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा सदैव उपासनीय हैं एवं परमशोभायमान हैं; तथा श्रीस्वरूपदामोदर आदि अपने भक्तोंके लिए अपने भजनकी विशुद्ध मुद्रा (कर्मयोगादिसे अनावृत अपने भजनकी परिपाटी) का उपदेश देते हुए विराजमान हैं।

यदि कहो कि, उनके निकट तो ब्रह्मा आदि देवता सेवा करते हुए नहीं दिखाई देते हैं। इसके उत्तरमें कहते हैं कि, श्रीकृष्णावतारमें तो ब्रह्मादि देवता उनकी साक्षात्‌रूपसे उपासना करते थे; किन्तु इस अवतारमें तो शंकर, श्रीअद्वैताचार्यके रूपसे एवं ब्रह्मा, नामाचार्य श्रीहरिदासके रूपसे उपासना करते हैं। तात्पर्य—"कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः।।" भा. ११/५/३२ इस श्लोकमें जो चतुर्थ युगावतार वर्णित है, वह श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुरूप ही है; क्योंकि श्रीहरिनाम-संकीर्तनप्रधान यज्ञका असाधारण धर्म, उन्हींमें देखा जाता है। और असाधारण धर्मवाले लक्षणके द्वारा ही लक्ष्यका परिचय होता है। जैसे "जन्माद्यस्य यतः" इस ब्रह्मसूत्रमें जगत् जन्मादिके कारण होनेके नाते, उसका लक्ष्य ब्रह्म परिचित होता है, उसी प्रकार श्रीचैतन्यावतार भी, मनुष्य रूपधारी देवताओंके द्वारा सेवनीय है। बारम्बार प्रकट न होनेवाले इस अवतारको "महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः" यह श्रुति भी प्रकाशित करती है। इस प्रकार साक्षात् ईश्वर रूपसे विनिश्चित श्रीचैतन्यदेवमें, यदि किसी मन्दमतिकी आस्था नहीं दिखाई देती है, तो उस मन्दमतिके ऊपर उन (श्रीचैतन्यदेव) की कृपाका अभाव ही जानना चाहिए; क्योंकि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः", "तमक्रतुः पश्यति वीतशोकं धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्" इत्यादि श्रुतियों तथा "अथापि ते देव! पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि। जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्।।" भा. १०/१४/२६ इत्यादि स्मृतियोंसे, उनकी कृपा ही उनके दर्शनमें हेतु है। यह भाव अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य आदि महानुभावोंके ऊपर स्पष्ट ही देखा गया है, हाय! ऐसा मेरा भी सौभाग्यपट कब खुलेगा?।।१।।

सुरेशानां दुर्गं गतिरतिशयेनोपनिषदां
मुनीनां सर्वस्वं प्रणतपटलीनां मधुरिमा।
विनिर्यासः प्रेम्णो निखिल-पशुपालाम्बुज-दृशां
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।२।।
स्वरूपं बिभ्राणो जगदतुलमद्वैत-दयितः
प्रपन्न-श्रीवासो जनित-परमानन्द-गरिमा।
हरिर्दीनोद्धारी गजपति-कृपोत्सेक-तरलः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।३।।

ये श्रीचैतन्यदेव, श्रीकृष्णके अंशावताररूप चतुर्थ युगके अवतारस्वरूप नहीं हैं; क्योंकि "कृते शुक्लो धर्ममूर्ती रक्तस्त्रेतायुगे मतः। द्वापरे च कलौ चापि श्यामलाङ्गः प्रकीर्तितः।।" इस स्मृति प्रमाणसे, वह चतुर्थ युगावतार तो श्यामवर्णवाला कहा गया है; किन्तु यह अवतार तो निजप्रेयसी श्रीमती राधिकाके भाव एवं कान्तिके द्वारा, अपनी कान्तिको छिपाकर स्वयं श्रीगौररूपमें ही प्रकट हुआ है। इस भावको प्रदर्शित करते हुए श्रीरूप गोस्वामी दूसरे श्लोकमें कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे नेत्रोंके सामने पदार्पण करेंगे क्या? जो ब्रह्मादि देवताओंके लिए भी "दुर्ग" अर्थात् निर्भयस्थान स्वरूप हैं, एवं उपनिषदोंके लिए भी "अतिशयगति" अर्थात् परमतत्त्व संचारस्वरूप अथवा प्राप्यस्वरूप हैं, एवं जो मुनियोंके दोनों लोकोंके धनस्वरूप हैं, एवं दासभक्तवृन्दोंके दास्यभक्तिके माधुर्यरूप हैं, तथा समस्त व्रजाङ्गनाओंके श्रीकृष्णविषयक प्रेमके "विनिर्यासः" अर्थात् सारस्वरूप हैं।।२।।

अब तीसरे श्लोकमें श्लेषालंकारके द्वारा साक्षात् कृष्ण रूपसे वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या? जो संसारमें अनुपम एवं स्वरूप, अर्थात् श्रीजीव गोस्वामीके पितृपाद तथा स्वरूपदामोदर-नामक अपने प्रियपार्षदको, अपनी कृपासुधासे परिपुष्ट करते रहते हैं अद्वैताचार्यके परमप्रिय हैं श्रीवास-नामक पंडित जिनके शरणागत हो गए हैं एवं परमानन्दपुरी-नामक अपने काका-गुरुमें जिनका गुरुभाव है एवं सांसारिक अविद्याका अपहरण

रसोद्दामा कामार्बुद-मधुर-धामोज्ज्वल-तनु-
र्यतीनामुत्तंसस्तरणि-कर-विद्योति-वसनः।
हिरण्यानां लक्ष्मीभरमभिभवन्नाङ्गिक-रुचा
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।४।।

करनेके कारण जो 'हरि' कहलाते हैं, तथा जो त्रिविध ताप संतप्त दीनदुःखी जीवोंका उद्धार करनेवाले हैं और जो उत्कलदेशके अधिपति गजपति (प्रतापरुद्र)-नामक नृपतिके ऊपर कृपामयी धारासे, अभिषेक करनेके लिए चंचल हो रहे हैं। श्लेषपक्षे—"हरिः, अर्थात् सिंह होकर भी गजराजके ऊपर कृपाभिषेक करनेमें चञ्चल हैं" यहाँपर विरोधाभास-अलंकार है। इससे अद्भुत सिंहत्व व्यंजित होता है। कृष्णपक्षमें यह अर्थ है कि, सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीकृष्ण फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या? जो संसारमें "न तस्य प्रतिमास्ति" इत्यादि श्रुतिके अनुसार अपने अतुल स्वरूपको, अर्थात् श्रीविग्रहको धारण करते हुए "एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति एकं सन्तं बहुधा दृश्यमानम्" इत्यादि श्रुतिके अनुसार अनेक रूपवाले होकर भी, जिनको अपना अद्वितीय श्रीकृष्ण रूप ही प्रिय है, तात्पर्य जो एकताको न त्यागकर, अनेक रूप धारण करनेवाले हैं एवं जो "प्रपन्नायाः पादसेविन्याः श्रियो लक्ष्म्या निवासः समाश्रयः" अर्थात् जो अपनी शरणमें आई हुई, चरणसेविका लक्ष्मीदेवीके निवासस्वरूप हैं एवं "जनितः स्वजन्मना प्रादुर्भावितः परमानन्दगरिमा निःसीमातिशयः सुखराशिर्येन सः" अर्थात् जिन्होंने अपने प्रादुर्भावके द्वारा, असीम अतिशय सुखसमूह प्रकट कर दिया है तथा जो भक्तोंके पापापहारी होनेसे 'हरि' हैं, दीनजनोंका उद्धार करनेवाले हैं तथा गजपति अर्थात् ग्राहसे ग्रस्त, गजेन्द्रके ऊपर कृपामयी दृष्टिकी सृष्टि करनेमें परम उतावले हो रहे हैं। इस श्लोकमें शब्दार्थश्लेषका सम्मेलन है।।३।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रोंके सामने फिर भी पधारेंगे क्या? जोकि भक्तिके परम मधुर रसोंके आस्वादनजन्य सुखोंसे उन्मत्त रहते हैं, एवं जिनका श्रीविग्रह करोड़ों कामदेवोंसे भी मधुर मनोहर तेजसे परमोज्ज्वल है अर्थात् जो अतिमोहन मूर्तिवाले हैं; एवं जो संन्यासियोंके मुकुटमणि हैं एवं जिनके वस्त्र प्रातःकालीन सूर्यकी

हरे कृष्णेत्युच्चैः स्फुरित-रसनो नामगणना-
कृत-ग्रन्थिश्रेणी-सुभग-कटिसूत्रोज्ज्वल-करः।
विशालाक्षो दीर्घार्गल-युगल-खेलाञ्चित-भुजः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।५।।
पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनाली - कलनया
मुहुर्वृन्दारण्य - स्मरण - जनित - प्रेम - विवशः।
क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचल-रसनो-भक्ति-रसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।६।।
रथारूढस्यारादधिपदवि नीलाचल - पते -
रदभ्र-प्रेमोर्मि-स्फुरित-नटनोल्लास-विवशः।
सहर्षं गायद्भिः परिवृत-तनुर्वैष्णव-जनैः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।७।।

किरणोंके समान अरुणवर्णवाले हैं, तथा जो अपने श्रीविग्रहकी कान्तिके द्वारा सुवर्णसमुदायकी अतिशय शोभाका तिरस्कार करते हुए विराजमान हैं।।४।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मुझे फिर भी दर्शन देंगे क्या? जिनकी जिह्वा "हरे कृष्ण" इत्यादि महामन्त्रके उच्चस्वरसे उच्चारणके द्वारा नृत्य करती रहती है अथवा जिनकी जिह्वारूपी रङ्गस्थलीपर "हरे कृष्ण" इत्यादि महामन्त्र सर्वोत्तमभावसे नटकी तरह, स्वयं नृत्य करता रहता है जिनका वामहस्त, उच्चारित किए हुए नामोंकी गिनतीके लिए की हुई ग्रन्थिश्रेणीसे, सुन्दर कटिसूत्रके द्वारा सुशोभित हैं जिनके दोनों नेत्र कर्णपर्यन्त विशाल हैं एवं जिनकी दोनों भुजाएँ जानुपर्यन्त लंबी हैं।।५।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या? जो कि श्रीजगन्नाथपुरीके निकटवर्ती समुद्रके तीरपर, स्फूर्ति पानेवाली उपवनश्रेणीको देखकर, बारंबार वृन्दावनके स्मरणजनित प्रेमके अधीन बने रहते हैं एवं जिनकी जिह्वा किसी स्थानपर, श्रीकृष्णके नामोंकी आवृत्तिसे प्रतिक्षण चलती रहती है; क्योंकि वे प्रेमलक्षणाभक्तिके परमरसिक हैं।।६।।

भुवं सिञ्चन्नश्रु–स्रुतिभिरभितः सान्द्र–पुलकैः
परीताङ्गो नीप–स्तबक–नव–किञ्जल्क–जयिभिः।
घन–स्वेद–स्तोम–स्तिमित–तनुरुत्कीर्तन–सुखी
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।८।।
अधीते गौराङ्ग – स्मरण – पदवी – मङ्गलतरं
कृती यो विश्रम्भ–स्फुरदमलधीरष्टकमिदम्।
परानन्दे सद्यस्तदमल – पदाम्भोज – युगले
परिस्फारा तस्य स्फुरतु नितरां प्रेमलहरी।।९।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रोंके सामने फिर भी पधारेंगे क्या? जो कि रथमें विराजमान श्रीजगन्नाथदेवके निकटवर्ती मार्गमें, अतिशय प्रेमकी तरङ्गोंसे स्फूर्ति पानेवाले, नृत्यके उल्लासके अधीन हैं, अर्थात् श्रीजगन्नाथकी यात्रामें रथके सामने प्रेममें विभोर होकर जो नृत्य करते रहते हैं, एवं हर्ष पूर्वक नामसंकीर्तन करनेवाले वैष्णवजनोंके द्वारा जो चारों ओरसे घिरे हुए हैं।।७।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या? जो कि अपने नेत्रोंकी जलधाराओंके द्वारा, भूमिका अभिषेक करते रहते हैं एवं कदम्बके पुष्पगुच्छोंकी केसरको जीतनेवाले, अपने घने रोमांचोंके द्वारा, जिनका श्रीअङ्ग सर्वतोभावसे व्याप्त रहता है एवं जिनका श्रीविग्रह गाढ़े स्वेदसमुदायसे प्रायः गीला बना रहता है एवं जो उत्कीर्तनमें अर्थात् खड़े होकर, भुजा उठाकर, उद्दण्डकीर्तन करनेमें ही सुखी रहते हैं।।८।।

इस अष्टकके पाठके फलका निर्देश करते हुए श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

विश्वाससे शोभायमान विशुद्ध बुद्धिवाला सौभाग्यशाली जो कोई व्यक्ति, श्रीचैतन्यदेवके स्मरणमय मार्गमें अतिशय मंगलदायक, इस "श्रीचैतन्याष्टक" का पाठ करता है, उसके हृदयमें, श्रीचैतन्यमहाप्रभुके परमानन्दमय दोनों चरणारविन्दोंमें, विस्तीर्ण प्रेमकी लहरी विशेष स्फूर्ति पाती रहे; यह अष्टककारका आशीर्वाद है।।९।।

श्रीशचीतनयाष्टकम्

उज्ज्वल - वरण - गौरवर - देहं
विलसित-निरवधि-भावविदेहम्।
त्रिभुवन-पावन-कृपायाः लेशं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।१।।
गद्गद - अन्तर - भावविकारं
दुर्जन-तर्जन-नाद-विशालम्।
भवभयभञ्जन - कारण - करुणं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।२।।
अरुणाम्बरधर - चारुकपोलं
इन्दु-विनिन्दित-नखचय-रुचिरम्।
जल्पित-निजगुणनाम-विनोदं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।३।।

उज्ज्वल गौरवर्ण देहधारी, सदा-सर्वदा वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके भावसे विभावित होकर विचित्र विलासकारी एवं अपनी कृपाके लेशमात्रसे ही त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।१।।

जिनका हृदय नाना प्रकारके भाव-विकारोंसे सर्वदा गद्गद रहता है और जिनका विशाल हुँकार (गर्जन ध्वनि) भक्ति-विमुख पाखण्डियोंके लिए भय उत्पादनकारी है उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।२।।

जो अरुण (गैरिक) वर्णके वस्त्र धारण किए हैं, जिनके चारु कपोल बड़े ही मनोहर हैं जिनके नख-समूहकी कान्ति-छटा पूर्णचन्द्रकी शोभाको भी मात करती है तथा जो अपने नाम-गुणके कीर्तनमें अतिशय आनन्द प्राप्त करते हैं, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।३।।

विगलित–नयन–कमल–जलधारं
भूषण – नवरस – भावविकारम्।
गति – अतिमन्थर – नृत्यविलासं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।४।।
चञ्चल–चारु–चरण–गति–रुचिरं
मञ्जीर–रञ्जित–पदयुग–मधुरम्।
चन्द्र – विनिन्दित – शीतलवदनं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।५।।
घृत–कटि–डोर–कमण्डलु–दण्डं
दिव्य कलेवर–मुण्डित–मुण्डम्।
दुर्जन – कल्मष – खण्डन – दण्डं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।६।।
भूषण – भूरज – अलका – वलितं
कम्पित–बिम्बाधरवर–रुचिरम्।
मलयज–विरचित–उज्ज्वल–तिलकं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।७।।

जिनके नयन–कमलोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है, नवरस भाव–विकार जिनके श्रीअंगोंके भूषण–स्वरूप हैं और नृत्य–विलास हेतु जिनकी गति अति मन्थर है, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।४।।

जिनके नुपुर–शोभित श्रीचरण–युगलकी गति अतिशय मनोहर है, उन चन्द्र–विनिन्दित सुशीतल वदन विशिष्ट शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।५।।

जिन्होंने कटितटमें (कमरमें) डोर–बहिर्वास एवं हाथमें दण्ड कमण्डलु धारण कर रखा है, मुण्डन किया हुआ अति भव्य जिनका मस्तक है, जो अतिशय दिव्य कलेवर विशिष्ट हैं, जिनका दण्ड दुर्ज्जनोंके पाप–समूहका खण्डनकारी है, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।६।।

जिनकी अलकावलि (नृत्यहेतु उठी) धूलिरूप भूषण–विशिष्ट है, जिनका (हरिनाम कीर्तन हेतु) कांपता हुआ बिम्ब सदृश अरुण–अधर बड़ा ही मनोहर लगता है, मलयज चन्दन द्वारा विरचित उज्ज्वल तिलकसे सुशोभित उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।७।।

निन्दित अरुण–कमल–दल–नयनं
आजानुलम्बित–श्रीभुज–युगलम्।
कलेवर – कैशोर – नर्तक – वेशं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्।।८।।

जिनके अरुण नयन कमलदलकी शोभाको तिरस्कार करनेवाले हैं, जो आजानुलम्बित भुजाओंवाले हैं, उन नृत्य–वेशयुक्त कलेवरवाले शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ।।८।।

श्रीगौर–गीति

मधुकर–रञ्जित–मालति–मण्डित–जितघन कुञ्चित केशम्।
तिलक–विनिन्दित–शशधर–रूपक–भुवन–मनोहर–वेशम्।।१।।
सखे, कलय गौरमुदारम्।
निन्दित – हाटक – कान्ति – कलेवर गर्वितमारकमारम्।।२।।

भावार्थ—हे सखे! परम औदार्यमयी लीलाका प्रकाश करनेवाले, अपनी अङ्गकान्तिसे तपाये हुए स्वर्ण–कान्तिका तिरस्कार करनेवाले और करोड़ों कामदेवके सौन्दर्यको भी मात करनेवाले शचीनन्दन श्रीगौरहरिके मधुर नाम, रूप, गुण और लीलाओंका तुम गान करो।।१।।

जो भौरोंके मधुर गुञ्जारसे अनुरंजित सुन्दर–सुगन्धित मालती–पुष्पोंकी मालासे सुशोभित हैं, जिनके काले–काले घुंघराले केशकी शोभा काले मेघोंकी छटाको भी पराभूत करती है, जिनके तिलककी शोभा शशधरकी शोभाको भी तुच्छ बना देती है तथा जिनका सुन्दर वेश त्रिभुवनके मनको भी हरण करनेवाला है, हे सखे! तुम, उन श्रीशचीनन्दन गौर हरिके मधुर नाम, रूप, गुण और लीलाओंका ही गान करो।।२।।

मधु–मधुरस्मित–लोभित तनुभृतमनुपम्–भाव–विलासम्।
निधुवन नागरी मोहित–मानस–विकथित–गदगद भाषम्।।३।।
परमाकिञ्चन–किञ्चन–नरगण–करुणा–वितरणशीलम्।
क्षोभित – दुर्मति – राधामोहन – नामक – निरुपम् – लीलम्।।४।।

जिनके मन्द–मधुर मुस्कानसे तथा अनुपम भावरूपी विलासके द्वारा निखिल देहधारियोंको लुब्ध कर रहे हैं, जिनका अन्तःकरण श्रीमती राधिकाके उन्नतोज्ज्वल प्रेममें विभावित है, जो उक्त दशामें प्रेममय गद्‌गद वाणीसे श्रीकृष्णका गुणानुवाद कर रहे हैं, हे सखे! तुम, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिके मधुर नाम, रूप, गुण और लीलाओंका प्रीतिपूर्वक गान करो।।३।।

जो परम सौभाग्यवान निष्किञ्चनजनोंको नाम–प्रेमदान रूपी कृपाका वितरण करनेवाले हैं, उन महावदान्य श्रीगौरसुन्दरकी निरुपम लीलाओंका आस्वादन करनेके लोभसे, अत्यन्त दुर्बुद्धियुक्त होनेपर भी यह राधामोहन नामक जन अत्यन्त व्याकुल होकर इस प्रकार वर्णन करता है।।४।।

n

वन्दे विश्वम्भर–पद–कमलम्।
खण्डित–कलियुग–जनमल–समलम्।।

सौरभ–कर्षित–निजजन–मधुपम्।
करुणा–खण्डित–विरह–वितापम्।।

नाशित–हृद्‌गत–माया–तिमिरम्।
वर–निजकान्त्या जगतामचिरम्।।

सतत–विराजित–निरुपम–शोभम्।
राधामोहन–कलित–विलोभम्।।

अनुवाद—श्रीराधामोहन दास इस संस्कृत गीतिमें विश्वम्भर श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना कर रहे हैं, जिन्होंने कलियुगके जीवोंके समस्त पाप–ताप, अपराध आदिको नष्ट कर दिया है,

जिन्होंने प्रेमरूपी मधुका पान करनेवाले अपने भक्तोंको अपने गुणरूपी सुगन्धिके द्वारा आकर्षित करके अपनी करुणा द्वारा उनके विरह तापको दूर किया है, जिन्होंने जीवोंके हृदयकी माया, अज्ञान और अविद्याका विनाश करके अपनी कान्तिके द्वारा उनके हृदयकी शोभाको बढ़ाया है।

n

अभिनव-कुट्मल, गुच्छ-समुज्ज्वल-, कुञ्चित-कुन्तल-भार।
प्रणयि-जनेरित-, वन्दन-सहकृत-, चूर्णित-वर-घनसार।।
जय जय सुन्दर नन्द-कुमार।
सौरभ-सङ्कट, वृन्दावन-तट-, विहित-वसन्त-विहार।।ध्रु.।।
चटुल-दृगञ्चल-, रचित-रसोच्छल-, राधा मदन-विकार।
भुवन-विमोहन-, मञ्जुल-नर्त्तन-, गति-वल्गित-मणिहार।।
अधर-विराजित-, मन्दतर-स्मित-, लोचित-निज-परिवार।
निज-वल्लवजन, -सुहृत् सनातन, -चित्तविहरदवतार।।
(श्रीलरूपगोस्वामी)

श्रीगोविन्दस्तोत्रम्

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१।।

मैं आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, जो गोलोकमें चिन्तामणि-समुदायसे बने हुए एवं लाखों कल्पवृक्षोंसे परिवेष्टित भवनोंमें कामधेनु-स्वरूपा अनन्त गैयाओंकी स्नेहपूर्वक सर्वतोभावसे रक्षा करते रहते हैं, तथा लक्ष्मीस्वरूपा हजारों गोपाङ्गनाओंके सैकड़ों प्रकारके विलासों द्वारा सेवित होते रहते हैं।।१।।

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम् ।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२।।
आलोलचन्द्रक-लसद्वनमाल्यवंशी-
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।३।।
अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
श्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।४।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जो अपने नित्य-वृन्दावनमें नित्य ही वेणु बजाते रहते हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं, जो मोरमुकुट धारण करते हैं, जिनका श्रीविग्रह श्याममेघके समान मनोहर है एवं जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवोंकी अपेक्षा भी विशेष मनोहर है।।२।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जिनके मस्तकपर मोरमुकुट विराजमान है, गलेमें वनमाला, अधरपर वंशी, भुजाओंमें रत्नजटित बाजूबन्द शोभायमान हैं एवं जिनका विलास स्नेहभरे परिहासकी कलासे युक्त है तथा जिनका श्यामस्वरूप त्रिभङ्गललित बाँकी झाँकीसे युक्त है एवं जो एकरस रहनेवाले प्रकाशसे युक्त हैं।।३।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जिनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय एवं सदा उज्ज्वल है, अतएव जिनके प्रत्येक अङ्ग, समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तिसे युक्त होकर, चिरकालतक अनेक ब्रह्माण्डोंको देखते हैं, अर्थात् भगवान्‌का हाथ भी देख सकता है, बोल सकता है, एवं नेत्र भी रक्षा कर सकते हैं, सुन सकते हैं, इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी अन्य इन्द्रियोंके कार्योंको कर सकती हैं। इसीलिए गीता (१३/१४) में उनको 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षशिरोमुखम्' इत्यादि रूपवाला कहा गया है।।४।।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।५।।
पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसंप्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुङ्गवानाम्।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।६।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जो अद्वैतरूपसे कहे जाते हैं, अर्थात् "यह पृथ्वीके अद्वितीय राजा है" इस दृष्टान्तके अनुसार अनन्त-ब्रह्माण्डोंमें जो अद्वितीय हैं। तात्पर्य—जिनके समान या जिनसे अधिक कोई भी दूसरा नहीं हैं अथवा जिनके भक्तोंका, प्रलयकालमें भी पतन नहीं होता एवं जो अनादि-अनन्त रूपोंवाले होकर भी, आदि स्वरूप कहलाते हैं एवं पुराणपुरुष होकर भी, नित्य नवयौवनसे युक्त बने रहते हैं एवं जिनका ज्ञान वेदोंमें भी दुर्लभ है, अथवा भा. १०/४७/६१ 'भेजु-र्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्', 'अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव' इत्यादि दशमस्कन्धीय वचनोंके अनुसार, जो वेदोंके लिए भी दुर्लभ ही हैं, तथा भा. ११/१४/२१ 'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः', भा. १०/१४/५ 'पुरेह भूमन्' इत्यादि भागवतीय प्रमाणोंके अनुसार, अपनी विशुद्धभक्तिमें, जो सदा सुलभ बने रहते हैं।।५।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जो मार्ग, वायु एवं प्रधान-प्रधान मुनिजनोंके मनके लिए भी, करोड़ों वर्षोंके प्रयाससे गम्य है; वह मार्ग, अचिन्त्य प्रभाववाले जिनके चरणारविन्दोंके अग्रभागमें ही वर्तमान है; क्योंकि मणि, मन्त्र एवं औषधियोंका प्रभाव जिस प्रकार अचिन्त्य है, उसी प्रकार श्रीगोविन्दका तत्त्व भी अचिन्त्य है। अचिन्त्य-तत्त्व तर्कसे भी समझमें नहीं आ पाता है, अतः उसमें तर्क नहीं करना चाहिए।।६।।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं
यच्छक्तिरस्ति जगण्दडचया यदन्तः।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।७।।
यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
संप्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।८।।
आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।९।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जिनकी शक्ति करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेके लिए समर्थ है एवं अनन्त ब्रह्माण्डसमूह भी जिनके भीतर विराजमान हैं, अतः स्वरूपतः जो एक ही हैं; तथा जो ब्रह्माण्डान्तर्वर्ती परमाणुसमूहके भीतर भी स्थित रहते हैं।।७।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जिनके भावसे भावित बुद्धिवाले भावुक मनुष्यजन, जिनकी कृपासे, उन्हींके समान रूप-महिमा-आसन-यान एवं वस्त्रभूषण आदि को प्राप्त करके, वेदप्रसिद्ध पुरुषसूक्तोंके द्वारा जिनकी स्तुति करते रहते हैं।।८।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जो प्राणीमात्रके आत्मस्वरूप होकर भी, अथवा गोलोक-निवासी अन्य प्रियवर्गोंके परमश्रेष्ठ होनेके नाते, जीवात्माकी तरह, उनके निकट रहकर भी आनन्दचिन्मयरस, अर्थात् परमप्रेममय उज्ज्वल-नामक रसके द्वारा सरावोर स्वरूपवाली एवं निजस्वरूप होनेके कारण, ह्लादिनीशक्तिकी वृत्तिस्वरूपा गोपियोंके साथ, गोलोकधाममें ही निवास करते हैं।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१०।।

सर्वव्यापक प्रभुका गोलोकमें ही साक्षात् निवास करनेका तात्पर्य यह है कि, 'शब्द' आकाशमात्रमें सर्वत्र व्यापक होनेपर भी, 'रेडियो' यन्त्रमें ही जिस प्रकार साक्षात् निवास करता है, ठीक उसी प्रकार प्रेममय रेडियोयन्त्र स्वरूप गोलोकवासियोंके साथ साक्षात् निवास करते हैं, एवं गोलोकवासी प्रियवर्गमात्रकी अपेक्षा गोपियोंके निकट अधिक, उस प्रकार साक्षात् निवास करते हैं कि हजारों कोसोंकी दूरीपर रहनेवाला व्यक्ति भी, 'टेलीविजन' यन्त्रमें बोलते समय ही जिस प्रकार दिखाई देता है।

दूसरा कारण यह है कि शक्ति, शक्तिमान्से एवं कलाएँ, कलावान्से जैसे अलग नहीं रहतीं; उसी प्रकार गोपियाँ भी गोविन्दसे अलग नहीं रह पातीं। 'निजरूपतया' का तात्पर्य नित्य-कान्तारूपसे ही गोपियाँ, गोविन्दके निकट गोलोकमें रहती हैं; किन्तु प्रकटलीलाकी तरह परकीयाभावसे नहीं; क्योंकि "श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः" ब्र. सं. ५/५५ इस उक्तिके अनुसार परम-लक्ष्मीस्वरूपा गोपियोंके पक्षमें परकीयाभाव असम्भव है। प्रकटलीलामें भी जो परकीयाभावकी प्रतीति है, वह योगमायाके द्वारा ही उत्कण्ठा वर्धनार्थ दिखाई गई है। 'गोलोक एव' के 'एव' कारसे यह भाव प्रकाशित होता है कि श्रीकृष्णकी यह लीला दूसरी जगह प्रकाशित नहीं होती है।।९।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, जो गोविन्द यद्यपि गोलोकमें ही निवास करते हैं, तथापि अचिन्त्यगुण स्वरूपवाले, श्यामसुन्दर विग्रहवाले, जिन गोविन्दको सन्तजन, प्रेम-नामक अञ्जनसे रञ्जित, भक्तिरूप नेत्रके द्वारा, अपने-अपने हृदयोंमें सदैव सर्वत्र देखते रहते हैं।।१०।।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।११।।
यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१२।।

वे ही परिपूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, कभी-कभी संसारमें भी, अपने अंशसे स्वयं अवतार लेते हैं, इस भावको वर्णन करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, श्रीकृष्ण-नामक जो परमपुरुष अपनी कलाओंके नियमसे, अर्थात् शक्तियोंके परिमित प्रकाशके द्वारा, श्रीराम आदि मूर्तियोंमें स्थित होकर, भुवनोंमें अनेक अवतार धारण करते रहते हैं; किन्तु अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें, तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही, परिपूर्णतम रूपसे प्रगट होते हैं। प्रमाणं यथा—"मत्स्याश्वकच्छप-नृसिंहवराहहंस,-राजन्यविप्रविवुधेषु कृतावतारः। त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश, भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते।।" भा. १०/२/४० ।।११।।

इस प्रकार सर्वावतारित्वरूपसे, श्रीकृष्णका परिपूर्णत्व कहकर, स्वरूपसे भी परिपूर्णत्व कहते हैं—मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंमें, पृथ्वी आदि समस्त विभूतियोंसे भिन्न अखण्ड-अनन्त एवं निखिल स्वरूप जो ब्रह्म हैं; वह ब्रह्म भी, अनेक अवतार लेनेवाले परमप्रभावशाली जिन गोविन्दकी प्रभारूपसे कहा जाता है। तात्पर्य—ब्रह्म एवं श्रीकृष्ण स्वरूपतः एक ही तत्त्व है, तथापि विशिष्टरूपसे साक्षात् प्रकट होनेके कारण, श्रीकृष्ण धर्मीरूपसे कहे जाते हैं एवं अविशिष्ट प्रकट होनेके कारण, ब्रह्म श्रीकृष्णका धर्मरूप कहा जाता है; अतः सूर्य एवं सूर्यकी प्रभाकी तरह श्रीकृष्ण मण्डलस्थानीय हैं एवं ब्रह्म उनकी प्रभास्थानीय है। प्रभा जिस प्रकार मण्डलके अधीन रहती है, उसी प्रकार ब्रह्मकी सत्ता भी श्रीकृष्णके अधीन है; अतएव गीता (१४/२७) में भी कहा है कि 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्' इत्यादि।।१२।।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बि-परसत्त्व-विशुद्धसत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१३।।

आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनःसु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य।
लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१४।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण स्वरूपगत माहात्म्यको दिखाकर, आगेके दो श्लोकोंमें, तद्गत माहात्म्यको दिखाते हैं—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, रजोगुण-तमोगुण-सत्त्वगुण ये तीनों गुण एवं इन तीनोंके विषयका प्रतिपादन करनेवाले वेदोंके द्वारा, जिसका विस्तार किया जाता है, ऐसी बहिरङ्गाशक्तिरूपा जिनकी माया, अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचना करती रहती है, तो भी उस मायासे उनका स्पर्श नहीं है; क्योंकि उनका स्वरूप तो रजोगुण तमोगुणके आश्रयस्वरूप सत्त्वगुणसे परे जो विशुद्धसत्त्वगुण है, अर्थात् रजोगुण तमोगुणसे रहित चित्शक्तिवृत्तिरूप जो विशुद्धसत्त्वगुण है, उस प्रकारके विशुद्धसत्त्ववाला है। कारण श्रीकृष्णमें प्रकृतिके सत्त्व आदि गुण नहीं रहते हैं। अतः श्रीविष्णुपुराणमें कहा है कि "सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः। स शुद्धः सर्वशुद्धेश्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु"।।१३।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, जो अपना स्मरण करनेवाले प्राणियोंके मनमें उपस्थित होकर एवं आनन्द-चिन्मय-रसमय स्वरूपसे प्रतिफलित होकर, अपने लीला-विलासके द्वारा, अनेक भुवनोंको निरन्तर अपने वशमें करते रहते हैं।।१४।।

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवी-महेश-हरि-धामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१५।।
सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१६।।
क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
संजायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्यात्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१७।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, जिस गोविन्दने गोलोक-नामक अपने धाममें एवं उसके नीचे क्रमशः विराजमान वैकुण्ठधाम-शिवधाम एवं देवीधाम आदिमें वे लोकोत्तर प्रभावसमुदाय विस्तारित कर दिए हैं। इस श्लोकमें देवी-महेश आदि धामोंकी गिनती, दाहिनी ओरसे बायीं ओर माननी चाहिए; अन्यथा शास्त्रप्रसिद्ध धामोंकी रचनाका क्रम नहीं बन पायेगा।।१५।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, संसारकी उत्पत्ति, रक्षा एवं प्रलय करनेकी साधन शक्तिस्वरूपा अतुलनीय दुर्गादेवी, जिन गोविन्दकी छायाकी तरह अनुगत होकर, अनेक ब्रह्माण्डोंका भरणपोषण करती रहती है, तो भी वह दुर्गादेवी स्वतन्त्रताके व्यवहारको छोड़कर, जिन गोविन्दकी इच्छाके अनुसार ही चेष्टा करती है।।१६।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, दुग्धको जमानेवाले जामनके सम्बन्धसे, दुग्ध ही जिस प्रकार दधिके रूपमें परिणत हो जाता है, एवं वह दधि अपने उपादानकारण-स्वरूप दुग्धसे पृथक् भी नहीं है; उसी प्रकार जो गोविन्द संसारका प्रलयरूप कार्य करनेके लिए शंकरके रूपको प्राप्त कर लेते हैं।।१७।।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१८।।
यः कारणार्णवजले भजति स्म योग-
निद्रामनन्तजगदण्डरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।१९।।
यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२०।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, जिस प्रकार एक दीपककी शिखा ही, दूसरी बत्तीका संयोग पाकर, दूसरे दीपकके रूपमें परिणत हो जाती है एवं अपने मूलभूत पहले दीपकके समान धर्मको ही प्रकाशित करती रहती है, उसी प्रकार जो गोविन्द, श्रीविष्णुरूपसे प्रकाशित हो जाते हैं।।१८।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, अपने रोमकूपोंमें अनन्तब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले जो गोविन्द, आधारशक्तिरूप शेष-नामक अपनी दूसरी मूर्तिका आश्रय लेकर, कारणसमुद्रके जलमें योगनिद्राका सेवन करते हैं।।१९।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ कि, गोविन्दके अभिन्नस्वरूप जिन महाविष्णुके, एक श्वास लेनेके समयका अवलंबन करके, अपने (महाविष्णुके) रोमकूपोंमें विद्यमान अनन्तब्रह्माण्डाधिपति जीवित बने रहते हैं, वे महाविष्णु भी, जिन गोविन्दके कलाविशेष कहे जाते हैं।।२०।।

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२१।।
यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ–
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।
विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२२।।

सूर्यदेव, सूर्यकन्तिमणिके नामसे विख्यात अपने पत्थरके टुकड़ोंमें, अर्थात् सूर्यकान्तमणियोंमें जिस प्रकार अपने किञ्चित् तेजको प्रकट कर देते हैं, अर्थात् उनके द्वारा दाह आदिक कार्य भी जिस प्रकार स्वयं करते हैं, उसी प्रकार जो गोविन्द, यहाँपर ब्रह्मा होकर, अनेक ब्रह्माण्डोंको बनानेवाले बन जाते हैं; मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ।।२१।।

यदि कोई कहे कि, "सभीलोग सर्वविघ्न निवारणार्थ पहले गणेशकी ही स्तुति करते हैं, अतः उन्हींकी स्तुति करना योग्य है," इस आशंकाको दूर करनेके लिए ब्रह्मा कहते हैं कि—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, पुराणप्रसिद्ध वे गणाधिराज (गणेश), जिन गोविन्दके दोनों पादपल्लवोंको प्रणाम करते समय, अपने मस्तकके दोनों कुंभोंपर धारण करके ही, इन तीनों लोकोंके विघ्नोंका विनाश करनेके लिए समर्थ हो पाये हैं। कैमुत्यन्यायसे श्रीकपिलदेवने भी, माता देवहूतिके प्रति भगवद्ध्यान वर्णन करते समय, श्रीगोविन्दके भजन–पूजन–स्तवन आदिको दृढ़ कर दिया है, यथा—"यत्पादनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्" भा. ३/२८/२२, अर्थात् जिन गोविन्दके चरणारविन्दसे निकली हुई नदियोंमें श्रेष्ठ, श्रीगङ्गाके परमपावन जलको, श्रद्धापूर्वक अपने मस्तकपर धारण कर, स्वयं मङ्गलमय श्रीमहादेवजी और भी अधिक मङ्गलमय हो गए।।२२।।

अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च
कालस्तथात्ममनसीति जगद्त्रयाणि।
यस्माद्भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२३।।
यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२४।।

सब देवताओंको छोड़कर, केवल गोविन्दके भजन करनेके विषयमें, पूर्वोक्त श्लोकमें जो सिद्धान्त है, वह उचित ही है; क्योंकि—

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, समस्त दिशाएँ, काल, आत्मा (जीव), एवं मन आदि इन द्रव्योंसे बने तीनों लोक भी, जिन गोविन्दसे उत्पन्न होते हैं, पुष्ट होते हैं एवं प्रलयकालमें जिन गोविन्दमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं; अतः मैं, आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ।।२३।।

यदि कोई कहे कि, 'कुछ लोग तो सूर्यदेवको ही सर्वेश्वर कहते हैं' इसके उत्तरमें कहते हैं कि—

समस्त ग्रहोंके राजा एवं समस्त देवताओंके मूर्तिस्वरूप, तथा समस्त तेजोमय प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला यह जो सूर्य है, वह भी जिन गोविन्दका नेत्रस्वरूप है और जिनकी आज्ञासे कालचक्रको धारणकर, अहर्निश भ्रमण करता रहता है; अतः मैं तो आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ। "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भोषादग्निश्वेन्द्रश्व मृत्युर्धावति पञ्चमः" इत्यादि श्रुतियोंमें भी कहा है कि, जिन गोविन्दके डरसे वायु चलती रहती है, सूर्यदेव यथा समयपर उदय होते हैं, अग्नि जलती है, इन्द्र वर्षा करता है, मृत्यु भी भागती रहती है। गीता (१५/१२) में भी कहा है कि "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।" संपूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाला सूर्यमें विद्यमान जो तेज है एवं चन्द्रमा तथा अग्निमें जो तेज है, वह मेरा (श्रीकृष्णका) ही है, ऐसा समझो।।२४।।

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२५।।
यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२६।।

श्रुतिशास्त्रोक्त धर्म, पापोंका समुदाय, समस्त वेद, एवं सब प्रकारके तप, तथा ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गपर्यन्त जीवगण भी, जिन गोविन्दके द्वारा दिए गए वैभवसे ही, अपने-अपने प्रभावको प्रकाशित कर पाते हैं; मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ। गीता (१०/८) में भी कहा है कि, "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। मैं (श्रीकृष्ण) ही सबका उत्पत्तिस्थान हूँ, तथा सबकी प्रवृत्ति मेरे द्वारा ही होती है; इस बातको जानकरके ही बुद्धिमान्-जन, भावसे युक्त होकर, मेरा (श्रीकृष्णका) भजन करते हैं।।२५।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान्का भजन करता हूँ कि, जो इन्द्रगोप गहरे लाल रङ्गका एक बरसाती कीड़ा को, अथवा इन्द्रको, अपने-अपने कर्मबन्धनके अनुरूप, फलका भागी बनाते रहते हैं; किन्तु भक्तिमान्-जनोंके कर्मोंको तो समूल जलाते रहते हैं, यही हर्ष की बात है। भक्तोंके प्रति पक्षपातके विषयमें गीता (९/२९) में "समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।" "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।" गीता (९/२२) इन श्लोकोंमें कहा है कि, मैं (श्रीकृष्ण) सभी प्राणियोंमें समानभावसे रहता हूँ, मेरा कोई वैरी या प्यारा नहीं है; तथापि जो व्यक्ति, भक्तिभावपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मेरे निकट रहते हैं एवं मैं उनके निकट रहता हूँ और जो भक्त, अन्य देवताओंको छोड़कर, अनन्यभावसे मेरा स्मरण करते हुए, मेरी ही उपासना करते हैं, अतः मेरेमें ही नित्यसम्बन्ध रखनेवाले, उन भक्तोंके योगक्षेमके

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-
वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः
सञ्चिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।२७।।
(श्रीब्रह्म संहिता)

भारको, अर्थात् अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति एवं प्राप्तवस्तुकी रक्षाके भारको, मैं ही वहन करता रहता हूँ।।२६।।

क्रोध, काम, सख्य, भय, वात्सल्य, मोह गुरुके समान गौरव, और दास्यभाव आदि भावोंके द्वारा, जिन गोविन्दका स्मरण करके, स्मरण करनेवाले जन, उस-उस भावके अनुसार, तदनुरूप शरीरको प्राप्त कर चुके हैं, अतः मैं तो आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्द भगवान्‌का भजन करता हूँ। इस स्तुतिसे ब्रह्माके ऊपर प्रसन्न हुए श्रीगोविन्द, ब्रह्माके प्रति बोले कि, "धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन्। यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी।।" ब्र. सं. ५/६१। अन्य सभी धर्मोंको छोड़कर, विश्वासपूर्वक केवल मेरा (श्रीकृष्ण) ही भजन करो, क्योंकि जैसी-जैसी श्रद्धा होती है, वैसी-वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।।२७।।

श्रीदामोदराष्टकम्

नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं,
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम्।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं,
परामृष्टमत्यं ततो द्रुत्य गोप्या।।१।।

जिनके कपोलोंपर दोदुल्यमान मकराकृत-कुण्डल क्रीड़ा कर रहे हैं, जो गोकुल नामक अप्राकृत चिन्मय धाममें परम शोभायमान हैं, जो दधिभाण्ड फोड़नेके कारण माँ यशोदाके भयसे भीत होकर ओखलके ऊपरसे कूदकर अत्यन्त वेगसे दौड़ रहे हैं और जिन्हें माँ यशोदाने उनसे भी अधिक वेगपूर्वक दौड़कर पकड़ लिया है; ऐसे उन सच्चिदानन्द-स्वरूप सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।।१।।

रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं,
कराम्भोज–युग्मेन सातङ्कनेत्रम्।
मुहुःश्वासकम्प – त्रिरेखाङ्ककण्ठ –
स्थित ग्रैव–दामोदरं भक्तिबद्धम्।।२।।
इतीदृक् स्वलीलाभिरानन्द कुण्डे,
स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम्।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं,
पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे।।३।।
वरं देव! मोक्षं न मोक्षावधिं वा,
न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह।
इदन्ते वपुर्नाथ! गोपालबालं,
सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः।।४।।

जननीके हाथमें लठियाको देखकर मार खानेके भयसे डरकर जो रोते–रोते बारम्बार अपनी दोनों आँखोंको अपने हस्तकमलसे मसल रहे हैं, जिनके दोनों नेत्र भयसे अत्यन्त विह्वल हैं, रोदनके आवेगसे बारम्बार श्वास लेनेके कारण त्रिरेखायुक्त कण्ठमें पड़ी हुई मोतियोंकी माला आदि कण्ठभूषण कम्पित हो रहे हैं, और जिनका उदर (माँ यशोदाकी वात्सल्य–भक्तिके द्वारा) रस्सीसे बँधा हुआ है, उन सच्चिदानन्द–स्वरूप दामोदरकी मैं वन्दना करता हूँ।।२।।

जो इस प्रकार दामबन्धनादि–रूप बाल्य–लीलाओंके द्वारा गोकुलवासियोंको आनन्द–सरोवरमें नित्यकाल सरावोर करते रहते हैं, और जो ऐश्वर्यपूर्ण ज्ञानी भक्तोंके निकट "मैं अपने ऐश्वर्यहीन प्रेमी भक्तोंद्वारा जीत लिया गया हूँ"—ऐसा भाव प्रकाश करते हैं, उन दामोदर श्रीकृष्णकी मैं प्रेमपूर्वक बारम्बार वन्दना करता हूँ।।३।।

हे देव! आप सब प्रकारके वर देनेमें पूर्ण समर्थ हैं। तो भी मैं आपसे चतुर्थपुरुषार्थरूप मोक्ष या मोक्षकी चरम सीमारूप श्रीवैकुण्ठ आदि लोक भी नहीं चाहता और न मैं श्रवण और कीर्त्तन आदि नवधा भक्तिद्वारा प्राप्त किया जानेवाला कोई दूसरा वरदान ही आपसे माँगता हूँ। हे नाथ! मैं तो आपसे इतनी ही कृपाकी भीख माँगता हूँ कि आपका यह बालगोपालरूप मेरे हृदयमें नित्यकाल विराजमान रहे। मुझे और दूसरे वरदानसे कोई प्रयोजन नहीं है।।४।।

इदन्ते मुखाम्भोजमव्यक्तनीलै -
वृतं कुन्तलैः स्निग्ध-रक्तैश्च गोप्या।
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे,
मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः।।५।।
नमो देव दामोदरानन्त विष्णो!
प्रसीद प्रभो! दुःखजालाब्धिमग्नम्।
कृपादृष्टि-वृष्ट्यातिदीनं बतानु
गृहाणेश! मामज्ञमेध्यक्षिदृश्यः।।६।।
कुबेरात्मजौ बद्धमुर्त्यैव यद्वत्,
त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ,
न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह।।७।।

हे देव! अत्यन्त श्यामलवर्ण और कुछ-कुछ लालिमा लिए हुए चिकने और घुँघराले बालोंसे घिरा हुआ तथा माँ यशोदाके द्वारा बारम्बार चुम्बित आपका मुखकमल और पके हुए बिम्बफलकी भाँति अरुण अधर-पल्लव मेरे हृदयमें सर्वदा विराजमान रहें। मुझे लाखों प्रकारके दूसरे लाभोंकी आवश्यकता नहीं है।।५।।

हे देव! हे (भक्तवत्सल) दामोदर! हे (अचिन्त्य शक्तियुक्त) अनन्त! हे (सर्वव्यापक) विष्णो! हे (मेरे ईश्वर) प्रभो! हे (परमस्वतन्त्र) ईश! मुझपर प्रसन्न होवें। मैं दुःखसमूहरूप समुद्रमें डूबा जा रहा हूँ। अतएव आप अपनी कृपादृष्टिरूप अमृतकी वर्षाकर मुझ अत्यन्त दीन-हीन शरणागत पर अनुग्रह कीजिए एवं मेरे नेत्रोंके सामने साक्षात् रूपसे दर्शन दीजिए।।६।।

हे दामोदर! जिस प्रकार आपने दामोदर रूपसे ओखलमें बँधे रहकर भी (नलकूबर और मणिग्रीव नामक) कुबेरके दोनों पुत्रोंका (नारदके शापसे प्राप्त) वृक्षयोनिसे उद्धार कर उन्हें परम प्रयोजनरूप अपनी भक्ति भी प्रदान की थी, उसी प्रकार मुझे भी आप अपनी प्रेम भक्ति प्रदान कीजिए—यही मेरा एकमात्र आग्रह है। किसी भी अन्य प्रकारके मोक्षके लिए मेरा तनिक भी आग्रह नहीं है।।७।।

नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने,
त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीय-प्रियायै,
नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम्।।८।।
(श्रीसत्यव्रतमुनिप्रोक्तं)

हे दामोदर! आपके उदरको बाँधनेवाली महान् रज्जुको प्रणाम है, निखिल ब्रह्मतेजके आश्रय और सम्पूर्ण विश्वके आधारस्वरूप आपके उदरको नमस्कार है। आपकी प्रियतमा श्रीराधारानीके चरणोंमें मेरा बारम्बार प्रणाम है और आपके अलौकिक लीला-विलासको भी मेरा सैकड़ों बार प्रणाम है।।८।।

श्रीचौराग्रगण्यपुरुषाष्टकम्

व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं, गोपाङ्गनानां च दुकुलचौरम्।
अनेक-जन्मार्जित-पापचौरं, चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि।।१।।
श्रीराधिकाया हृदयस्य चौरं, नवांबुदश्यामलकान्तिचौरम्।
पदाश्रितानां च समस्तचौरं, चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि।।२।।
अकिंचनीकृत्य पदाश्रितं यः, करोति भिक्षुं पथि गेहहीनम्।
केनाप्यहो भीषणचौर ईदृग्, दृष्टःश्रुतो वा न जगत्त्रयेऽपि।।३।।

व्रजमें प्रसिद्ध, माखन चुरानेवाले एवं गोपियोंके चीर चुरानेवाले, अपने आश्रितजनोंके अनेक जन्मोंके द्वारा उपार्जित पापोंको चुरानेवाले—चौराग्रगण्यपुरुषको मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

श्रीमती राधिकाके हृदयको चुरानेवाले, नूतन-जलधारकी श्यामकान्ति चुरानेवाले एवं निजचरणाश्रितोंके समस्त पाप-ताप चुरानेवाले—चौराग्रगण्यपुरुषको मैं प्रणाम करता हूँ।।२।।

जो अपने चरणाश्रितोंको निष्किञ्चन बनाकर, मार्गमें घूमनेवाले अनिकेत-भिक्षुक बना देता है, हाय! ऐसा भयंकर चोर तो किसीने तीनों लोकोंमें भी देखा या सुना नहीं।।३।।

यदीय नामापि हरत्यशेषं, गिरि प्रसारानपि पापराशीन्।
आश्चर्यरूपो ननु चौर ईदृग्, दृष्टः श्रुतो वा न मया कदापि।।४।।
धनं च मानं च तथेन्द्रियाणि, प्राणांश्च हृत्वा मम सर्वमेव।
पलायसे कुत्र धृतोऽद्य चौर, त्वं भक्तिदाम्नासि मया निरुद्धः।।५।।
छिनत्सि घोरं यमपाशबन्धं, भिनत्सि भीमं भवपाशबन्धम्।
छिनत्सि सर्वस्य समस्तबन्धं, नैवात्मनो भक्तकृतं तु बन्धम्।।६।।
मन्मानसे तामसराशिघोरे, कारागृहे दुःखमये निबद्धः।
लभस्व हे चौर! हरे! चिराय, स्वचौर्यदोषोचितमेव दण्डम्।।७।।
कारागृहे वस सदा हृदये मदीये
मद्भक्तिपाशदृढबन्धननिश्चलः सन्।
त्वां कृष्ण हे! प्रलयकोटिशतान्तरेऽपि
सर्वस्वचौर! हृदयान्नहि मोचयामि।।८।।

जिसका नाममात्र लेना भी, पर्वतके समान विशाल पापसमूहको भी समूल हर लेता है, ऐसे आश्चर्य रूपवाला चोर तो मैंने कभी भी कहीं देखा या सुना नहीं।।४।।

हे चोर! मेरे धन-मान-इन्द्रियाँ-प्राण एवं सर्वस्वको हर कर, कहाँ भागे जा रहे हो? क्योंकि आज तो तुम भक्तिरूप-रज्जूसे धारण कर, मेरे द्वारा रोक लिए गए हो।।५।।

क्योंकि तुम, यमराजके भयंकर पाशबन्धनको तो काट देते हो एवं संसारके भयंकर पाशबन्धनको विदीर्ण कर देते हो तथा सभीजनोंके समस्त बन्धनको काट देते हो; किन्तु अपने प्रेमीभक्तके द्वारा रचे गए, अपने प्रेममय बन्धनको, तो तुम नहीं काट पाते हो।।६।।

हे मेरा सर्वस्व चुरानेवाले चोररूप—हरे! मैंने, आज तुमको अज्ञानरूप-अन्धकार समुदायसे भयंकर एवं दुःखमय मेरे मनरूपी-कारागारमें बन्द कर लिया है; अतः अपनी चोरीरूप-दोषके उचित दण्डको ही, बहुत समयतक प्राप्त करते रहो।।७।।

हे मेरा सर्वस्व चुरानेवाले कृष्ण! मेरी भक्तिरूप-पाशके दृढ़बन्धनमें निश्चल होकर, मेरे हृदयरूप-कारागारमें सदैव निवास करते रहो; क्योंकि मैं तो अपने हृदयरूप-कारागारसे, करोड़ों कल्पोंमें भी विमुक्त नहीं करूँगा। इस अष्टकमें "उपजाति"-नामक छन्द है।।८।।

श्रीनन्दनन्दनाष्टकम्

सुचारु – वक्त्रमण्डलं सुकर्ण – रत्नकुण्डलम्।
सुचर्चिताङ्ग–चन्दनं नमामि नन्दनन्दनम्।।१।।

सुदीर्घ नेत्रपङ्कजं शिखि – शिखण्ड – मूर्धजम्।
अनङ्गकोटि–मोहनं नमामि नन्दनन्दनम्।।२।।

सुनासिकाग्र – मौक्तिकं स्वच्छन्द दन्तपंक्तिकम्।
नवाम्बुदाङ्ग–चिक्कणं नमामि नन्दनन्दनम्।।३।।

करेण वेणुरञ्जितं गती – करीन्द्रगञ्जितम्।
दुकूल–पीत शोभनं नमामि नन्दनन्दनम्।।४।।

जिनका मुखमण्डल अत्यन्त सुन्दर है, जिनके सुन्दर कानोंमें रत्नजड़ित कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, जिनके सारे अंग चन्दनद्वारा चर्चित (लिप्त) हैं, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं प्रणाम करता हूँ।।१।।

जिनके नेत्र प्रफुल्लित कमलके समान बड़े–बड़े और सुन्दर हैं, जिनके मस्तक पर मयूर–पंखोंका मनोहर चूड़ा सुशोभित हो रहा है, जो करोड़ों कामदेवको भी मोहित करनेवाले हैं उन श्रीनन्दनन्दन को मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।।२।।

जिनकी सुन्दर नासिकाके अग्रभागमें गजमुक्ता शोभित है, जिनके दाँतोंकी पंक्ति अत्यन्त उज्ज्वल है, जिनकी अंग–कान्ति नवीन मेघसे भी अधिक सुन्दर और सुचिक्कण है, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।।३।।

जिनके कर–कमलोंमें वेणु विराजित है, जिनकी गमन–भङ्गी मतवाले गजराजकी गतिका भी तिरस्कार करती है, जिनके श्याम अङ्गोंपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।।४।।

त्रिभङ्ग – देह – सुन्दरं नखद्युति – सुधाकरम्।
अमूल्य रत्न-भूषणं नमामि नन्दनन्दनम्।।५।।

सुगन्ध – अङ्गसौरभमुरोविराजि – कौस्तुभम्।
स्फुरच्छ्रीवत्सलाञ्छनं नमामि नन्दनन्दनम्।।६।।

वृन्दावन – सुनागरं विलासानुग – वाससम्।
सुरेन्द्रगर्व-मोचनं नमामि नन्दनन्दनम्।।७।।

व्रजाङ्गना – सुनायकं सदा सुख – प्रदायकम्।
जगन्मनः प्रलोभनं नमामि नन्दनन्दनम्।।८।।

श्रीनन्दनन्दनाष्टकं पठेद् य श्रद्धयान्वितः।
तरेद्भवाब्धिं दुस्तरं लभेत्तदंघ्रियुग्मकम्।।९।।

जिनका त्रिभङ्ग ललित देह परम शोभायमान हो रहा है, जिनके पद-नखकी कान्ति चन्द्रको भी लज्जित कर रही है, जिन्होंने अमूल्य रत्न-भूषणोंको धारण कर रखा है, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।।५।।

जिनका श्रीअङ्ग सुन्दर सुगन्धसे परिपूर्ण है, जिनके विशाल वक्षःस्थलपर कौस्तुभ-मणि और श्रीवत्सलाञ्छन-चिह्न सुशोभित हो रहे हैं, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।।६।।

जो वृन्दावनके सुनागर परम सुन्दर लीला करनेवाले हैं, जो विलासानुरूप सुन्दर वस्त्र परिधान करते हैं, जो देवराज इन्द्रके गर्वको चूर्ण-विचूर्ण करनेवाले हैं, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।।७।।

जो ब्रजाङ्गनाओंके सुनायक हैं, जो सर्वथा सुख प्रदान करनेवाले हैं, जो जगतके सभी प्राणियों (स्थावर और जङ्गम) के चित्तको मोहित करनेवाले हैं, उन श्रीनन्दनन्दनको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।।८।।

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस श्रीनन्दनन्दनाष्टकका पाठ करते हैं, वे इस दुस्तर भव-सागरको अनायास ही तर कर श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंको प्राप्त कर लेते हैं।।९।।

श्रीकृष्णचन्द्राष्टकम्

अम्बुदाञ्जनेन्द्रनील-निन्दि-कान्ति-डम्बरः
कुंकुमोद्यदर्क - विद्युदंशु - दिव्यदम्बरः।
श्रीमदङ्ग - चर्चितेन्दु - पीतनाक्त - चन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।१।।
गण्ड - ताण्डवाति - पण्डिताण्डजेश - कुण्डल -
श्चन्द्र - पद्मषण्ड - गर्व - खण्डनास्यमण्डलः।
बल्लवीषु वर्धितात्म - गूढ़भाव - बन्धनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।२।।
नित्यनव्य - रूपवेशहार्द - केलिचेष्टितः
केलिनर्म - शर्मदायि - मित्रवृन्द - वेष्टितः।
स्वीय-केलि-काननांशु-निर्जितेन्द्र-नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।३।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिए अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जिनकी कान्तिकी छटा नूतन-जलधर, अञ्जन एवं इन्द्रनीलमणिका भी तिरस्कार करनेवाली है एवं जिनका पीताम्बर कुंकुम, उदय होनेवाले सूर्य तथा बिजलीकी किरणोंसे भी अधिक शोभायमान है; और जिनका श्रीविग्रह कर्पूर-केसरसे मिले हुए चन्दनसे चर्चित है।।१।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जिनके दोनों कपोलोंपर नृत्य करनेमें परमकुशल मकरकुण्डल विराजमान हैं एवं जिनका मुखमण्डल चन्द्रमा तथा कमलसमूहोंके गर्वका खण्डन करनेवाला है, और जो ब्रजकी गोपियोंके ऊपर अपने गूढभावके बन्धनको बढ़ाते रहते हैं।।२।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जिनका रूप-वेषभूषा-प्रेमभरी क्रीड़ाएँ एवं प्रेममयी चेष्टाएँ, ये सभी नित्य नवीन हैं एवं जो खेलके समय परिहासमय वाक्योंसे सुख देनेवाले मित्रमण्डलसे सदैव घिरे रहते हैं और जो अपने क्रीड़ा-कानन श्रीवृन्दावनकी किरणोंके द्वारा, इन्द्रके नन्दनवनको पराजित करते रहते हैं।।३।।

प्रेमहेम – मण्डितात्म – बन्धुताभिनन्दितः
क्षौणिलग्न-भाल-लोकपाल-पालि-वन्दितः।
नित्यकालसृष्ट – विप्र – गौरवालि – वन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।४।।
लीलयेन्द्र-कालियोष्ण-कंस-वत्स-घातक-
स्तत्तदात्म-केलि-वृष्टि-पुष्ट-भक्तचातकः।
वीर्यशील – लीलयात्म – घोषवासि – नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।५।।
कुञ्ज – रासकेलि – सीधु – राधिकादि – तोषण –
स्तत्तदात्म-केलि-नर्म-तत्तदालि-पोषणः।
प्रेम-शील-केलि-कीर्ति-विश्वचित्त-नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र-नन्दनः।।६।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जो प्रेमरूप-सुवर्णके द्वारा विभूषित मनवाले बन्धुवर्गसे सदैव आनन्दित रहते हैं अथवा पूर्वोक्त गुणविशिष्ट बन्धुजन जिनका अभिनन्दन करते हैं एवं जिनके ललाट भूतलपर संलग्न हैं, ऐसे इन्द्र आदि लोकपालोंकी श्रेणीसे जो प्रतिदिन वन्दित होते रहते हैं और जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक होकर भी, प्रतिदिन प्रातःकाल आदि यथोचित समयमें, ब्राह्मण एवं गुरुजनोंकी श्रेणीकी वन्दना करते रहते हैं।।४।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जो इन्द्र एवं कालियनागकी गर्मीको अनायास ही ठण्डी करनेवाले हैं तथा कंस एवं वत्सासुरको अनायास मारनेवाले हैं एवं इन्द्रादिकोंके गर्वखण्डन आदि अपनी क्रीड़ारूप वर्षाके द्वारा, जो भक्तरूप-चातकोंको पुष्ट करनेवाले हैं और जो अपने पराक्रम, विशुद्ध स्वभाव तथा विशुद्ध लीला आदिके द्वारा, अपने ब्रजवासियोंको आनन्दित करनेवाले हैं।।५।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जो अपनी निकुञ्जलीला एवं रासलीलारूप-सुधाके द्वारा, श्रीराधिका आदि गोपियोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं एवं जो निकुञ्जलीला एवं रासलीला आदिरूप अपनी क्रीड़ाओंमें होनेवाले हास-परिहासके द्वारा श्रीराधिका आदिकोंकी सखियोंका पोषण करनेवाले हैं और जो अपने लोकोत्तर प्रेम-स्वभाव-क्रीड़ा-कीर्ति आदिके द्वारा, सभीके चित्तको आनन्दित करनेवाले हैं।।६।।

रासकेलि – दर्शितात्म – शुद्धभक्ति – सत्पथः
स्वीय–चित्र–रूपवेश–मन्मथालि–मन्मथः।
गोपिकासु नेत्रकोण – भाववृन्द – गन्धनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः।।७।।
पुष्पचायि – राधिकाभिमर्ष – लब्धि – तर्षितः
प्रेमवाम्य – रम्य – राधिकास्य – दृष्टि – हर्षितः।
राधिकोरसीह लेप एष हारिचन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः।।८।।
अष्टकेन यस्त्वनेन राधिकासुवल्लभं
संस्तवीति दर्शनेऽपि सिन्धुजादि – दुर्लभम्।
तं युनक्ति तुष्टचित्त एष घोषकानने
राधिकाङ्ग – सङ्ग – नन्दितात्म – पादसेवने।।९।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जो कामगन्धशून्य रासलीलाके द्वारा अपनी विशुद्धभक्तिके सन्मार्गको दिखानेवाले हैं एवं अपने विचित्र रूप तथा वेषके द्वारा कामश्रेणीके मनका मन्थन करनेवाले हैं और जो गोपियोंके ऊपर अपने नेत्रके कोनेसे ही भावसमूहकी सूचना करनेवाले हैं।।७।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणोंकी सेवा प्रदान करें कि जो पुष्पोंका चयन करनेवाली श्रीमती राधिकाके स्पर्शकी प्राप्तिके विषयमें तृष्णासे युक्त रहते हैं एवं प्रेममयी कुटिलतासे रमणीय राधिकाके श्रीमुखके दर्शनसे जो हर्षित रहते हैं और जो इस ब्रजमें राधिकाके वक्षःस्थलपर मनोहर चन्दनके लेपस्वरूप हैं।।८।।

जो व्यक्ति, राधिकाके प्राणप्यारे एवं लक्ष्मी आदि दिव्याङ्गनाओंके लिए, जिनका दर्शन भी दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्णकी स्तुति, इस अष्टकके द्वारा करते हैं, प्रसन्न चित्तवाले श्रीकृष्ण, उस व्यक्तिको ब्रजमण्डलके श्रीवृन्दावनमें, राधिकाके अङ्ग–सङ्गसे प्रसन्न हुए, अपने श्रीचरणोंकी सेवामें लगा लेते हैं। इस अष्टकमें 'तूणक'—नामक छन्द है।।९।।

श्रीश्रीमधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।१।।

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।२।।

वेणुर्म्मधुरो रेणुर्म्मधुरः पाणिर्म्मधुरः पादो मधुरो।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।३।।

गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।४।।

मधुरापतिके होठ मधुर हैं, उनका मुख मधुर है, नयन मधुर हैं, उनका हृदय मधुर है, गमन भङ्गी मधुर है, अहो! उनका सब कुछ मधुर है।।१।।

उनकी वाणी मधुर है, चरिताबलि मधुर है, उनके वसन मधुर हैं, उनका बोलना मधुर है, उनकी चाल मधुर है, उनका भ्रमण मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सब कुछ मधुर है।।२।।

उनका वेणु मधुर है, उनकी चरण-रेणु मधुर है, उनके हाथ मधुर हैं, उनके चरणद्वय मधुर हैं, उनका नृत्य मधुर है, उनका सख्य मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।३।।

उनका गान मधुर है, पान मधुर है, भोजन मधुर है, शयन मधुर है, रूप मधुर है, तिलक मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।४।।

करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।५।।

गुञ्जा मधुरा, माला मधुरा यमुना मधुरा वीचो मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।६।।

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
हृष्टं मधुरं श्लिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।७।।

गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्म्मधुरा सृष्टिर्म्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।८।।

(श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित)

उनकी करनी मधुर है, तरण (उद्धार करना) मधुर है, हरण मधुर है, उनका रमण और शमन (दण्ड) भी मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।५।।

उनकी गुञ्जा मधुर है, माला मधुर है, उनकी यमुना मधुर है, उनकी तरंगें भी मधुर हैं, जल और कमल भी मधुर हैं, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।६।।

उनकी गोपियाँ मधुर हैं, लीला मधुर है, उनसे युक्त (सम्बन्धित) अलंकारादि सभी वस्तुएँ मधुर हैं, उनका भोजन मधुर है, उनका आनन्द और आलिङ्गन मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।७।।

आपके गोप मधुर हैं, गायें मधुर हैं, आपकी यष्टि मधुर है, सृष्टि मधुर है, आपका दलन (असुरोंका) और फलन (फलदान) भी मधुर है, अहो! मधुराधिपतिका सबकुछ मधुर है।।८।।

गीतम्

देव! भवन्तं वन्दे!
मन्मानस-मधुकरमर्पय निज-पद-पङ्कज-मकरन्दे।।ध्रु.।।

यद्यपि समाधिषु विधिरपि पश्यति, न तव नखाग्रमरीचिम्।
इदमिच्छामि निशम्य तवाच्युत!, तदपि कृपाद्भुतवीचिम्।।
भक्तिरुदञ्चति यद्यपि माधव!, न त्वयि मम तिलमात्री।
परमेश्वरता तदपि तवाधिक,-दुर्घटघटन-विधात्री।।
अयमविलोलतयाद्य सनातन, कलिताद्भुत-रसभारम्।
निवसतु नित्यमिहामृतनिन्दिनि, विन्दन् मधुरिमसारम्।।
(श्रीरूप गोस्वामीपाद कृत)

हे भगवान् श्रीकृष्ण! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। कृपया मेरे मनरूप भ्रमरको अपने चरणकमलोंके मकरन्दमें लगा लीजिए, अर्थात् उसको अपने चरणारविन्दोंका रस चखा दीजिए, जिससे वह अन्यत्र आसक्त न हो सके। यद्यपि ब्रह्मा भी समाधियोंमें तुम्हारे चरणनखोंके अग्रभागकी एक किरणको भी नहीं देख पाते हैं, तो भी हे अच्युत! तुम्हारी कृपाकी आश्चर्यमयी तरङ्गको सुनकर कि आपकी प्राप्ति केवल आपकी कृपासे ही साध्य है, मैं ऐसा चाहता हूँ। हे माधव! यद्यपि तुम्हारे श्रीचरणोंके प्रति मेरी तिलमात्र भी भक्ति नहीं है, फिर भी तुम्हारी परमेश्वरता तो असम्भवको भी सम्भव बनानेवाली है, उसीके द्वारा मेरा मनोरथ पूरा कर दीजिए। हे सनातन! तुम्हारे चरणारविन्द, अमृतका भी तिरस्कार करनेवाले हैं, अतः मेरा मनरूप—मधुकर तृष्णारहित होकर, निश्चलतापूर्वक तुम्हारे चरणारविन्दोंमें ही नित्यनिवास करता रहे, यही मेरी प्रार्थना है।

n

श्रीश्रीराधा-विनोदविहारि-तत्त्वाष्टकम्

(श्रीकृष्णस्य गौर-कान्ति-प्राप्ति-हेतुः)

[नित्यलीलाप्रविष्ट-श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव-गोस्वामी-महाराजेन-विरचितम्]

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्ण-चरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम्।।१।।
सेव्य-सेवक-सम्भोगे द्वयोर्भेदः कुतो भवेत्।
विप्रलंभे तु सर्वस्य भेदः सदा विविर्द्धते।।२।।
चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वं भेदाभेदमचिन्त्यकम्।
शक्ति-शक्तिमतोरैक्यं युगपद्वर्त्तते सदा।।३।।

श्रीमती राधारानीके मान करनेपर उनके विरहमें अतिशय निमग्न होनेसे जिनकी कृष्णवर्णरूप कान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधा जैसी हुई थी, उन राधाके चिह्नोंसे (कान्तिसे) युक्त-विग्रह—श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ। अथवा (मान भङ्ग होनेपर) श्रीमती राधाद्वारा आलिङ्गित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी वन्दना करता हूँ।।१।।

जब सेव्य अर्थात् भोक्ता भगवान् अपने भोग्य सेवकको उसके साथ मिलित होकर सम्यक् रूपसे भोग करते हैं, तब उनमें भेद ही कहाँ रहता है? अर्थात् उनमें अभेद ही माना जाता है। दूसरी तरफ, विप्रलंभ अर्थात् विरह उपस्थित होनेपर उन सबमें भेद विशेषरूपसे उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।।२।।

शक्ति और शक्तिमान्का ऐक्य-स्वरूप, चिल्लीला-मिथुन-तत्त्व नित्यकाल अचिन्त्य भेदाभेदरूपमें युगपत् वर्त्तमान रहता है।

अर्थात्, परतत्त्व-वस्तु कभी भी निःशक्तिक नहीं है। उस तत्त्वमें शक्ति और शक्तिमान् एकत्व रूपमें नित्य विराजमान रहते हैं। वे पूर्ण चेतनमय लीलापुरुषोत्तम, स्वयं मिथुन-विग्रह हैं अर्थात् स्त्री-पुरुष (शक्ति-शक्तिमान्) के सम्मिलित विग्रह हैं। वही मिथुनविग्रह श्रीराधा-कृष्ण अथवा गौरतत्त्व हैं। उनमें भेद और अभेदरूप विरुद्ध धर्म उनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे युगपत् नित्य वर्त्तमान रहता है।।३।।

तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया तद् द्विधा स्थितम्।
गौरः कृष्णः स्वयं ह्येतदुभावुभयमाप्नुतः।।४।।
सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः गौर-कान्तिर्विकाशते।
सर्व-वर्णेन हीनस्तु कृष्ण-वर्णः प्रकाशते।।५।।
सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकमेवाद्वितीयकम्।
सर्व-नित्य-गुणैगौरः कृष्णो रसस्तु निर्गुणैः।।६।।
श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म त्यक्त्वा तु निर्गुणं हि तत्।
उपासते मृषा विज्ञाः यथा तुषावघातिनः।।७।।

पर-तत्त्व 'एक' है; परन्तु वह एक होनेपर भी लीलाद्वारा गौर और कृष्ण—पृथक्-पृथक् दो रूपोंमें अवस्थित होता है। वे (दोनों ही) स्वयं परतत्त्ववस्तु हैं, अथवा तत्त्वतः गौर ही स्वयं कृष्ण हैं तथा ये उभय रूप ही उभयताको प्राप्त होते हैं अर्थात् श्रीगौरसुन्दर श्यामसुन्दर कृष्ण होते हैं तथा श्यामसुन्दर कृष्ण गौरसुन्दर होते हैं।।४।।

यहाँपर आधुनिक जड़ वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तद्वारा श्रीगौर और कृष्णरूप उपास्य वस्तुओंका तत्त्व निरूपण किया जा रहा है—

जहाँ समस्त वर्णों (रङ्गों) का एकत्र समावेश होता है, वहाँ 'गौर' कान्तिका विकास होता है। जैसे सूर्यमें समस्त रङ्गोंके वर्त्तमान रहनेसे उनका रङ्ग गौर (गोरा) है। दूसरी तरफ, जहाँ समस्त वर्णोंका अभाव रहता है अर्थात् जहाँ कोई भी रङ्ग नहीं होता, वहाँ कृष्ण अर्थात् काला प्रकाशित होता है क्योंकि वैज्ञानिकोंके मतानुसार काला कोई रङ्ग नहीं है।।५।।

पूर्व श्लोकके 'वर्ण' को इस श्लोकमें 'गुण' शब्दसे इङ्गित कर श्रीगौर-तत्त्वको भी श्रीकृष्णके समान उपास्य तत्त्व प्रतिपादित करते हैं—

सगुण और निर्गुण तत्त्व एक और अद्वितीय है। समस्त सद्गुणोंकी समष्टि ही श्रीगौरसुन्दर हैं तथा निर्गुणमें अर्थात् सर्वप्रकार गुणहीनतामें श्रीकृष्ण रस-स्वरूप हैं। अर्थात् परतत्त्व वस्तु स्वयं रस स्वरूप हैं; रस निर्गुण और अप्राकृत तत्त्व है, प्राकृत नहीं।।६।।

श्रीविनोदविहारी यो राधया मिलितो यदा।
तदाहं वन्दनं कुर्यां सरस्वती-प्रसादतः।।८।।
इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः पठेत् श्रद्धयान्वितः।
कृष्ण-तत्त्वमभिज्ञाय गौरपदे भवेन्मतिः।।९।।

श्रीकृष्ण अथवा गौर—मिथुन ब्रह्म हैं। उनको (उनका भजन) परित्याग कर मिथ्याज्ञानी जन (अज्ञानी) भूसा कूटनेवालोंकी तरह निर्गुण ब्रह्मकी व्यर्थ ही उपासना करते हैं अथवा भूसा कूटनेवाले चावल पानेकी आशासे जिस प्रकार व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीजन भी कृष्णसेवा परित्याग कर निर्गुण ब्रह्मकी उपासना द्वारा केवल श्रम-ही-श्रम प्राप्त करते हैं अर्थात् उससे यथार्थ मुक्ति कभी नहीं मिलती।।७।।

जब श्रीविनोदविहारी कृष्ण श्रीमती राधिकाके साथ मिलित होते हैं, तब श्रील सरस्वतीके प्रसादसे अर्थात् श्रीगुरुदेवकी कृपासे (दर्शन लाभ कर) मैं उनकी वन्दना करता हूँ।।८।।

जो इस तत्त्वाष्टकको श्रद्धापूर्वक प्रतिदिन पाठ करेंगे, वे श्रीकृष्ण तत्त्वको पूर्णरूपसे अवगत होकर श्रीगौरसुन्दरके चरणोंमें मति लाभ करेंगे।।९।।

n

कलयति नयनं दिशि दिशि वलितम्।
पङ्कजमिव मृदु-मारुत-चलितम्।।

केलि-विपिनं प्रविशति-राधा।
प्रतिपद-समुदित मनसिज-वाधा।।

विनिदधति मृदु-मन्थर-पादम्।
रचयति कुञ्जर-गतिमनुवादम्।।

जनयति रुद्र-गजाधिप-मुदितम्।
रामानन्दराय-कवि-गदितम्।।

गीतम्

राधे! जय जय माधवदयिते।
गोकुल –तरुणी मण्डल –महिते।।

दामोदर – रतिवर्धन – वेशे।
हरिनिष्कुट – वृन्दाविपिनेशे।।१।।

वृषभानूदधि – नवशशिलेखे।
ललितासखि! गुणरमितविशाखे।।

करुणां कुरु मयि करुणाभरिते।
सनक सनातन –वर्णितचरिते।।२।।

हे माधव–प्रिये! हे गोकुल–तरुणीपूजिते! हे कृष्णकी रतिवर्द्धन–वेशधारिणि! हे नन्दनन्दनके गृहोद्यानरूप वृन्दावनकी अधीश्वरि! हे श्रीराधिके! तुम्हारी जय हो, जय हो।।१।।

श्रीवृषभानु महाराजरूप समुद्रसे उदित नवचन्द्रकला रूपिणि! हे ललिताकी प्रियसखि! हे विशाखाके लिए सुखकर सौहार्द–कारुण्य–कृष्णानुकूल्यादि गुणोंके द्वारा विशाखाको वशीभूतकारणि! हे कृपापूर्णे! हे सनक–सनन्दन–सनातन द्वारा वर्णित चरितोंवाली श्रीराधे! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम मेरे प्रति करुणा करो।।२।।

श्रीराधाकृपाकटाक्ष-स्तवराज

मुनीन्द्रवृन्द-वन्दिते त्रिलोक-शोक-हारिणी
प्रसन्न-वक्त्र-पङ्कजे निकुञ्ज-भू-विलासिनि।
व्रजेन्द्र-भानु-नन्दिनि व्रजेन्द्र-सूनु-सङ्गते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।१।।
अशोक-वृक्ष-वल्लरी-वितान-मण्डप-स्थिते
प्रवालवाल-पल्लव प्रभाऽरुणांघ्रि कोमले।
वराभय - स्फुरत् - करे प्रभूत - सम्पदालये
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।२।।
अनङ्ग - रङ्ग मङ्गल - प्रसङ्ग - भंगुरभ्रुवां
सविभ्रमं समंभ्रमं दृगन्त-बाण-पातनै।
निरन्तरं वशीकृत - प्रतीति - नन्दनन्दने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।३।।

मुनीन्द्रवृन्द जिनके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करते हैं तथा जो तीनों लोकोंका शोक दूर करने वाली है, स्मित-हास्यसे प्रफुल्लित मुखमण्डल वाली, निकुञ्ज भवनमें विलास करनेवाली, श्रीवृषभानु राजनन्दिनी, श्रीव्रजराजकुमारकी हृदयेश्वरी श्रीमती राधिके! कब मुझे अपने कृपा कटाक्षका पात्र बनाओगी?।।१।।

अशोक-वृक्षके ऊपर चढ़ी हुई लताओंसे निर्मित लतामन्दिरमें विराजमान, मूंगे तथा नवीन लाल-लाल पल्लवोंके समान अरुण कान्तियुक्त कोमल चरणोंवाली, भक्तोंको अभीष्ट वरदान देनेवाली तथा अभयदान देनेके लिए उत्सुक रहनेवाले कर-कमलोंवाली, अपार ऐश्वर्यकी आलय स्वामिनी श्रीमती राधिके! मुझे कब अपने कृपा-कटाक्षका अधिकारी बनाओगी?।।२।।

प्रेम-क्रीड़ाके रंगमंचपर मङ्गलमय प्रसङ्गमें बांकी भृकुटी करके, आश्चर्य प्रकट करते हुए सहसा कटाक्षरूपी वाणोंकी वर्षासे श्रीनन्दनन्दनको निरन्तर वशीभूत करनेवाली हे सर्वेश्वरी राधिके! मुझे कब अपने कृपा-कटाक्षका पात्र बनाओगी?।।३।।

तडित्-सुवर्ण-चम्पक-प्रदीप्त-गौर-विग्रहे
मुखप्रभा-परास्त-कोटि-शारदेन्दुमण्डले।
विचित्र - चित्र - संचरच्चकोर - शावलोचने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।४।।
मदोन्मदाति - यौवने प्रमोद - मान - मण्डिते
प्रियानुराग-रञ्जिते कला-विलास-पण्डिते।
अनन्य-धन्य-कुञ्ज-राज्य-काम केलि-कोविदे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।५।।
अशेष - हाव - भाव-धीर - हीरहार - भूषिते
प्रभूतशातकुम्भ-कुम्भ-कुम्भि कुम्भ-सुस्तनि।
प्रशस्त-मन्द-हास्य-चूर्ण-पूर्ण-सौख्यसागरे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।६।।

विद्युत्, स्वर्ण तथा चम्पक-पुष्पके समान सुनहली कान्तिसे देदीप्यमान गौर-अंगोंवाली, अपने मुखारविन्दकी प्रभासे करोड़ों शरत्कालीन चन्द्रमाओंकी छटाको भी पराभूत करनेवाली क्षण-क्षणमें विचित्र-चित्रोंकी छटा दिखानेवाले चञ्चल-बाल-चकोरके सदृश चञ्चल नेत्रोंवाली हे श्रीमती राधिके! मुझे कब अपने कृपा-कटाक्षका अधिकारी बनाओगी?।।४।।

अपने रूप-यौवनके मदसे प्रमत्त रहनेवाली, आनन्द भरे मानरूप सर्वोत्तम भूषणसे सर्वदा विभूषित रहनेवाली, प्रियतमके अनुरागमें रंगी हुई, कला-विलासमें परम प्रवीण एवं अनन्य-धन्य निकुञ्ज-राज्यके प्रेमकौतुक विद्याकी सर्वोत्तम विद्वान् श्रीमती राधिके! मुझे अपने कृपा-कटाक्षका पात्र कब बनाओगी?।।५।।

सम्पूर्ण हाव-भावरूपी शृङ्गारों तथा धीरतारूपी हीरेके हारोंसे विभूषित अङ्गोंवाली, शुद्ध स्वर्णके कलसों और जयनन्दिनीके गण्डस्थलके समान मनोहर पयोधरोंवाली, प्रशंसित मन्द मुस्कानसे परिपूर्ण, आनन्द सिन्धु सदृश श्रीमती राधिके! क्या मुझे कभी अपनी कृपादृष्टिसे कृतार्थ करोगी?।।६।।

मृणाल-वाल-वल्लरी तरङ्ग-रङ्ग-दोर्लते
लताग्र-लास्य-लोल-नील-लोचनावलोकने।
ललल्लुलन्मिलन्मनोज्ञ मुग्ध - मोहनाश्रिते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।७।।
सुवर्ण-मालिकाञ्चित-त्रिरेख-कम्बु-कण्ठगे
त्रिसूत्र-मङ्गलीगुण-त्रिरत्न-दीप्ति-दीधिति।
सलोल - नीलकुन्तल प्रसून - गुच्छ - गुम्फिते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।८।।
नितम्ब-बिम्ब-लम्बमान-पुष्प-मेखलागुणे
प्रशस्त रत्न-किङ्किणी-कलाप-मध्य मञ्जुले।
करीन्द्र-शुण्ड - दण्डिका - वरोह-सौभगोरुके
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।९।।

जलकी लहरोंसे हिलते हुए कमलके नवीन नालके समान जिनकी कोमल भुजाएँ हैं, पवनके झोंकोंसे जैसे लताका एक अग्रभाग नाचता है, ऐसे चञ्चल नेत्र-नीलिमा झलकाते हुए जो अवलोकन करती हैं, ललचानेवाले, लुभाकर पीछे-पीछे फिरनेवाली, मिलनमें मनको हरनेवाले, मुग्ध मनमोहनको आश्रय देनेवाली, हे वृषभानु किशोरी! कब अपने कृपा-कटाक्ष द्वारा मुझे कृतार्थ करोगी?।।७।।

स्वर्णकी मालाओंसे विभूषित तथा तीन रेखाओंवाले शङ्खकी छटा सदृश सुन्दर कण्ठवाली तथा जिनके कण्ठमें मङ्गलमय त्रिसूत्र बँधा हुआ है, जिससे तीन रङ्गके रत्नोंका भूषण लटक रहा है, रत्नोंसे देदीप्यमान किरणें निकल रही हैं (यह मङ्गल-त्रिसूत्र, नववधूको गलेमें पहनाया जाता है, यह ब्रजकी प्राचीन प्रथा है। दक्षिणमें अब भी यह प्रथा प्रचलित है) तथा दिव्य पुष्पोंके गुच्छोंसे गूंथे हुए काले घुंघराले लहराते केशोंवाली हे सर्वेश्वरी श्रीराधे! कब मुझे अपनी कृपादृष्टिसे अवलोकन कर अपने चरणकमलोंके दर्शनका अधिकारी बनाओगी?।।८।।

जिनके कटि-प्रदेशमें मणिमय किङ्किणी सुशोभित है, जिसमें सोनेके फूल रत्नोंसे जड़े हुए लटक रहे हैं तथा उसकी प्रशंसनीय-झङ्कार अतिशय मनोहर है; गजेन्द्रकी सूंडके समान जिनकी जंघायें अत्यन्त सुन्दर हैं, ऐसी परम सुन्दरी श्रीराधिके! मुझे कब अपने कृपा-कटाक्षका पात्र बनाओगी?।।९।।

अनेक - मन्त्रनाद - मञ्जु - नूपुरारवस्खलत्
समाज-राजहंस-वंश-निक्वणातिगौरवे।
विलोल-हेम-वल्लरी विडम्बि-चारु चङ्क्रमे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।१०।।
अनन्त-कोटि-विष्णुलोक-नम्र-पद्मजार्चिते
हिमाद्रिजा-पुलोमजा-विरिंचजा-वरप्रदे।
अपार-सिद्धि-ऋद्धि-दिग्ध-सत्पदांगुली-नखे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्।।११।।
मखेश्वरि क्रियेश्वरि स्वधेश्वरि सुरेश्वरि
त्रिवेद-भारतीश्वरि प्रमाण-शासनेश्वरि।
रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोद काननेश्वरि
व्रजेश्वरि व्रजाधिपे श्रीराधिके नमोऽस्तुते।।१२।।

अनेकों वेद-मन्त्रोंकी सुमधुर झनकार करनेवाले स्वर्णमय नूपुर जिनके श्रीचरणोंमें ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों मनोहर हंसोंकी पंक्ति कूंज रही हो, चलते समय अङ्गोंकी छबि ऐसी लगती है, मानो स्वर्णलता लहरा रही हो, ऐसी हे जगदीश्वरी श्रीराधे! क्या कभी मैं आपके श्रीचरण-कमलोंकी दासी हो सकूंगा?।।१०।।

अनन्त कोटि वैकुण्ठोंकी स्वामिनी श्रीलक्ष्मीजी भी आपकी पूजा करती हैं तथा श्रीपार्वतीजी, इन्द्राणीजी और सरस्वतीजीने भी आपकी पूजाकर आपसे वरदान पाया है, आपके चरणकमलोंकी एक अंगुलीके नखका भी ध्यान करने मात्रसे अपार सिद्धियोंका समूह बढ़ने लगता है; हे श्रीमती राधिके! कब मुझे अपने कृपा-कटाक्षका पात्र बनाओगी?।।११।।

सब प्रकारके यज्ञोंकी आप स्वामिनी हैं, सम्पूर्ण क्रियाओंकी अधीश्वरी हैं, स्वधादेवीकी स्वामिनी हैं, सभी देवताओंकी अखिलेश्वरी हैं; ऋक्, साम, यजु—इन तीनों वेदोंकी वाणियोंकी स्वामिनी, प्रमाण शासन-शास्त्रकी स्वामिनी, श्रीरमादेवीकी अधीश्वरी, श्रीक्षमादेवीकी भी स्वामिनी, प्रमोद काननकी कुञ्जेश्वरी आप ही हैं; हे श्रीराधिके! कब मुझे कृपाकर अपनी दासी बनाकर युगलसेवामें अधिकार प्रदान करोगी? हे ब्रजेश्वरी, हे व्रजकी अधिष्ठात्री श्रीराधिके! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है।।१२।।

इतीममद्भुतं – स्तवं निशम्य भानुनन्दिनी
करोतु सन्ततं जनं कृपाकटाक्षभाजनम्।
भवेत्तदैव – सञ्चित – त्रिरूप – कर्म – नाशनं
भवेत्तदा–व्रजेन्द्र–सूनु–मण्डल–प्रवेशनम्।।१३।।
राकायां च सिताष्टम्यां दशम्यां च विशुद्धधोः।
एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत्साधकः सुधीः।।१४।।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः।
राधाकृपाकटाक्षेण भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा।।१५।।
उरुदघ्ने नाभिदघ्ने हृद्दघ्ने कण्ठदघ्ने च।
राधाकुण्डजले स्थित्वा यः पठेत्साधकः शतम्।।१६।।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यात् वाक्सामर्थ्यं ततो लभेत्।
ऐश्वर्यं च लभेत्साक्षाद्दृशा पश्यति राधिकाम्।।१७।।
तेन सा तत्क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरम्।
येन पश्यति नेत्राभ्यां तत्प्रियं श्यामसुन्दरम्।।१८।।
नित्यलीला – प्रवेशं च ददाति हि व्रजाधिपः।
अतः परतरं प्राप्यं वैष्णवानां न विद्यते।।१९।।

हे वृषभानुनन्दिनी! मेरी इस विचित्र स्तुतिको सुनकर सर्वदाके लिये मुझे अपनी दया दृष्टिका अधिकारी बना लो। बस आपकी दया ही से तो मेरे प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण—तीनों प्रकारके कर्मोंका नाश हो जायगा और उसी क्षण श्रीकृष्णचन्द्रकी परमप्रेष्ठ सखियोंकी मण्डलीमें मञ्जरी–स्वरूपा दासीके रूपमें—उनकी नित्यलीला–विहारमें सदाके लिए प्रवेश हो जायेगा।।१३।।

पूर्णिमाके दिन, शुक्लपक्षकी अष्टमी या दशमीको तथा दोनों पक्षकी एकादशी और त्रयोदशीको, जो शुद्ध बुद्धिवाला भक्त इस स्तोत्रका प्रीतिपूर्वक पाठ करेगा, वह जो भावना करेगा वही प्राप्त होगा, अन्यथा निष्काम भावनासे पाठ करने पर श्रीराधाजीकी दयादृष्टिसे पराभक्ति प्राप्त होगी।।१४–१५।।

इस स्तोत्रसे श्रीराधा–कृष्ण युगलका साक्षात्कार होता है। उसकी विधि इस प्रकार है कि श्रीगोवर्द्धनके समीप श्रीराधाकुण्डके जलमें जंघाओं तक या नाभिपर्यन्त छाती तक या कण्ठ तक जलमें खड़े होकर इस स्तोत्रका सौ बार पाठ करे। इस प्रकार कुछ

दिनोंतक पाठ करनेपर सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। दर्शनार्थी भक्तको इन्हीं नेत्रोंसे साक्षात् श्रीराधाजीका दर्शन होता है। श्रीराधाजी प्रकट होकर प्रसन्नतापूर्वक महान् वरदान देती हैं (अथवा अपने चरणोंकी महावर (आलता) भक्तके मस्तक पर लगा देती हैं)। इससे श्रीश्यामसुन्दर तत्काल ही प्रकट होकर नित्यलीलाओंमें प्रवेश प्रदान करते हैं। इससे बढ़कर वैष्णवोंके लिए कोई भी वस्तु नहीं है।।१६-१९।।

n

श्रीराधिकाष्टकम् (१)

दिशि दिशि रचयन्तीं संचरन्नेत्रलक्ष्मी-
विलसित-खुरलीभिः खञ्जरीटस्य खेलाम्।
हृदयमधुपमल्लीं बल्लवाधीशसूनो-
रखिल-गुण-गभीरां राधिकामर्चयामि।।१।।

मैं, उन श्रीमती राधिकाकी पूजा करता हूँ कि, जो प्रत्येक दिशामें विचरण करनेवाले, अपने नेत्रोंकी शोभारूप विलासोंके अभ्यासोंके द्वारा, खञ्जनपक्षीके खेलकी रचना करती रहती हैं, अर्थात् राधिका जिस दिशाकी ओर दृष्टिपात करती हैं, वह दिशा मानो खञ्जनमालासे व्याप्त हो जाती है। तात्पर्य—जिनके दोनों नेत्र खञ्जनके समान हैं एवं जो नन्दनन्दन श्रीकृष्णके हृदयरूपभ्रमरके लिए, मल्लिकाके पुष्पके समान है। भ्रमरके लिए मल्लिका जिस प्रकार आनन्ददायिनी है, उसी प्रकार राधिका श्रीकृष्णके हृदयके लिए आनन्ददायिनी हैं तथा जो समस्त गुणोंके कारण अतिशय गम्भीर हैं।।१।।

पितुरिह वृषभानोरन्ववाय–प्रशस्तिं
जगति किल समस्ते सुष्ठु विस्तारयन्तीम्।
व्रजनृपतिकुमारं खेलयन्तीं सखीभिः
सुरभिणि निजकुण्डे राधिकामर्चयामि।।२।।

शरदुपचित–राका–कौमुदीनाथ–कीर्ति–
प्रकर–दमनदीक्षा–दक्षिण–स्मेरवक्त्राम्।
नटदघभिदपाङ्गोत्तुङ्गितानङ्ग – रङ्गा
कलित–रुचि–तरङ्गां राधिकामर्चयामि।।३।।

मैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी पूजा करता हूँ जो अपने पिता श्रीवृषभानुजीके वंशकी प्रशंसाको, इस समस्त जगत्में भली प्रकार विस्तारित करती रहती हैं एवं जो पुष्पोंके परागसे सुगन्धित अपने कुण्डमें, ललिता आदि अपनी सखियोंके सहित, व्रजराजकुमार श्रीकृष्णको खेल कराती रहती हैं, अर्थात् सखियों सहित श्रीकृष्णको जलसे सींचती रहती हैं।।२।।

श्रीराधिकाके अनुपम मुखमण्डलका एवं माधुर्यकी आधारताका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिकाकी पूजा करता हूँ जिनका मन्दहास्ययुक्त मुखारविन्द, शरद् ऋतुमें वृद्धिको प्राप्त चन्द्रमाकी कीर्तिके समूहको दमन करनेकी दीक्षामें निपुण है, अर्थात् शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रमासे भी परम मनोहर है एवं श्रीकृष्णके चञ्चल कटाक्षपातसे जिनका अनङ्गरङ्ग परमवृद्धिको प्राप्त हो रहा है तथा जिनके श्रीअङ्गमें शोभाकी तरङ्गें नृत्य करती रहती हैं।।३।।

विविध-कुसुम-वृन्दोत्फुल्ल-धम्मिल्ल-धाटी-
विघटित-मद-घूर्णत् केकि-पिच्छ-प्रशस्तिम्।
मधुरिपु-मुख-बिम्बोद्गीर्ण-ताम्बूल-राग-
स्फुरदमल - कपोलां राधिकामर्चयामि।।४।।
अमलिन-ललितान्तःस्नेह-सिक्तान्तरङ्गा-
मखिल-विधविशाखा-सख्य-विख्यात-शीलाम्।
स्फुरदघभिदनर्घ - प्रेम - माणिक्य - पेटीं
धृत - मधुर - विनोदां राधिकामर्चयामि।।५।।
अतुल-महसि वृन्दारण्यराज्येऽभिषिक्तां
निखिल-समय-भर्तुः कार्तिकस्याधिदेवीम्।
अपरिमित-मुकुन्द-प्रेयसी-वृन्दमुख्यां
जगदघहर - कीर्तिं राधिकामर्चयामि।।६।।

मैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी पूजा करता हूँ जो अनेक प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित, अपने केशपाशके बलपूर्वक आक्रमणके द्वारा, मदमाते मयूरके पंखोंकी प्रशंसाको तिरस्कृत करनेवाली हैं एवं जिनके निर्मल कपोल, श्रीकृष्णके मुखबिंबसे निकलते हुए तांबूलरसकी लालिमासे स्फूर्ति पा रहे हैं।।४।।

श्रीराधिका अपनी सखियोंकी एवं अपने नायककी मुख्य प्रेमपात्री हैं, इस भावको वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी पूजा करता हूँ जिनका अन्तःकरण ललिता सखीके निर्मल आन्तरिक स्नेहसे सिक्त (सरस) रहता है एवं जिनका शीलस्वभाव विशाखा सखीकी समस्त प्रकारकी मित्रतासे विख्यात है एवं जो श्रीकृष्णके दमदमाते हुए प्रेमरूपी अमूल्य रत्नोंकी मंजूषास्वरूप हैं तथा जो मधुरविनोदको धारण करती रहती हैं।।५।।

मैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी पूजा करता हूँ जो अतुलनीय प्रभाववाले एवं महोत्सववाले श्रीवृन्दावनके राज्यपदपर अभिषिक्त हैं (ब्रह्ममोहनलीलामें एक कोनेमें ही करोड़ों ब्रह्माण्डोंके दृष्टिगोचर करा देनेसे एवं वैकुण्ठसे भी अतिशय श्रेष्ठ मथुरामण्डलके भी उत्तमप्रदेश होनेके कारण, वृन्दावनका प्रभाव अतुलनीय है। यह वृन्दावन सर्वदा वसन्तऋतुसे सेवित होनेके कारण एवं आनन्दमय श्रीकृष्णके द्वारा

हरिपदनख–कोटी–पृष्ठ–पर्यन्त–सीमा–
तटमपि कलयन्तीं प्राणकोटेरभीष्टम्।
प्रमुदित–मदिराक्षी–वृन्द–वैदग्ध्य–दीक्षा–
गुरुमति–गुरुकीर्तिं राधिकामर्चयामि।।७।।
अमल–कनक–पट्टोद्घृष्ट–काश्मीर–गौरीं
मधुरिम–लहरीभिः संपरीतां किशोरीम्।
हरिभुज–परिरब्धां लब्ध–रोमाञ्च–पालिं
स्फुरदरुण–दुकूलां राधिकामर्चयामि।।८।।

अधिष्ठित होनेके कारण, सर्वदा उत्सवरूप बना रहता है); अतः इस प्रकारके वृन्दावनके प्राज्य–राज्यके आधिपत्यसे, श्रीराधिकाका उत्कर्ष, पराकाष्ठाको प्राप्त कर रहा है (श्रीराधिकाके राज्याभिषेककी कथा श्रीरूपगोस्वामी–कृत "श्रीदानकेलिकौमुदी" नामक ग्रन्थमें निबद्ध है) एवं जो राधिका, सभी मासोंकी अधिपति कार्तिकमासकी अधिष्ठात्री देवी हैं एवं जो श्रीकृष्णके असंख्य प्रेयसीवृन्दमें मुख्य हैं; अर्थात् जो श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी हैं तथा जिनकी कीर्ति, समस्त जगत्के पापोंको हरनेवाली है।।६।।

श्रीमती राधिकाके लोकोत्तर पतिव्रताधर्मको दिखाते हुए कहते हैं कि—मैं, उन श्रीमती राधिकाकी पूजा करता हूँ जो श्रीकृष्णके पादपद्मोंके सूक्ष्म नखाग्र–भागको, अपने करोड़ों प्राणोंकी अपेक्षा, अधिक प्रियतम जानती हैं, अर्थात् जो कृष्णप्राण हैं एवं उनसे भिन्न कुछ नहीं जानती हैं एवं जो हर्षभरी गोपाङ्गनाश्रेणीको, अनेक प्रकारकी चातुरीकी शिक्षा देनेमें दीक्षागुरु हैं, अतः जिनकी महती कीर्ति विद्यमान है।।७।।

श्रीराधिकाके माधुर्यका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—मैं, उन श्रीमती राधिकाजीकी पूजा करता हूँ जो निर्मल निकष–पाषाणपर पीसे हुए, कुंकुमके समान गौरवर्णवाली हैं एवं जो माधुर्यकी तरङ्गोंसे परिव्याप्त हैं, नित्य किशोरी हैं तथा जो श्रीकृष्णकी भुजाओंसे आलिङ्गित होते ही, पुलकावलीको प्राप्त हो जाती हैं और जिनकी ओढ़नी चमकीले अरुणवर्णवाली है।।८।।

तदमल – मधुरिम्णां काममाधाररूपं
परिपठति वरिष्ठं सुष्ठु राधाष्टकं यः।
अहिम–किरण–पुत्री–कूल–कल्याण–चन्द्रः
स्फुटमखिलमभीष्टं तस्य तुष्टस्तनोति।।९।।
(श्रीमद्रूप गोस्वामी विरचितं)

जो व्यक्ति, श्रीमती राधिकाजीके स्वरूप–गुण–विभूति आदि माधुर्योंके यथेष्ट आधारस्वरूप, इस उत्कृष्ट "राधिकाष्टक" का भली प्रकार प्रेमपूर्वक पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त अभीष्टको, सूर्यपुत्री यमुनाके कमनीय–कूलके कल्याणचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर, स्पष्ट ही विस्तारित करते रहते हैं। इस अष्टकमें "मालिनी" नामक छन्द है।।९।।

n

श्रीराधिकाष्टकम् (२)

रसवलित–मृगाक्षी–मौलिमाणिक्यलक्ष्मीः
प्रमुदित – मुरवैरि – प्रेमवापी – मराली।
व्रजवर – वृषभानोः पुण्यगीर्वाणवल्ली
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।१।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो रसिकस्त्रियोंके मुकुटस्थ मणियोंकी शोभास्वरूपा हैं एवं जो हर्षित हुए श्रीकृष्णके प्रेमरूप–सरोवरकी हंसीस्वरूपा हैं तथा जो व्रजमें सर्वश्रेष्ठ श्रीवृषभानु गोपराजके पुण्यकी कल्पलतास्वरूपा हैं।।१।।

स्फुरदरुण – दुकूल – द्योतितोद्यन्नितम्ब–
स्थलमभि – वरकाञ्चि – लास्यमुल्लासयन्ती।
कुचकलस–विलास–स्फीत–मुक्तासर–श्रीः
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।२।।

सरसिजवर–गर्भाखर्व–कान्तिः समुद्यत्–
तरुणिम – घनसाराश्लिष्ट – कैशोर – सधुः।
दर–विकसित–हास्य–स्यन्दि–बिम्बाधराग्रा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।३।।

अति–चटुलतरं तं काननान्तर्मिलन्तं
व्रजनृपति – कुमारं वीक्ष्य शङ्काकुलाक्षी।
मधुर–मृदु–वचोभिः संस्तुता नेत्रभङ्ग्या
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।४।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो देदीप्यमान रक्तवर्णके रेशमी वस्त्रसे सुशोभित अपने नितंबस्थलपर, श्रेष्ठ करधनीसे नृत्यको प्रकाशित करती हुईं, अपने कुचरूप–कलसोंके ऊपर शोभायमान स्थूल मुक्ताहारको शोभासे युक्त हैं।।२।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो श्रेष्ठकमलकी कर्णिकाके समान विशाल कान्तिसे युक्त हैं एवं जिनका किशोरावस्थारूप–अमृत, प्रगट होनेवाली युवावस्थारूप–कर्पूरसे मिश्रित है तथा जिनके बिंबाधरका अग्रभाग किंचित् विकसित हास्यरसका विस्तार करता रहता है।।३।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जिनके दोनों नेत्र, वनमें मिलते हुए अतिशय चंचल, ब्रजराजकुमार श्रीकृष्णको देखकर, शङ्कासे व्याकुल हो जाते हैं एवं जो मधुर तथा कोमल–वचनोंके द्वारा और नेत्रोंके संकेतके द्वारा, परिचित हो जाती हैं।।४।।

व्रजकुल-महिलानां प्राणभूताखिलानां
पशुप-पति-गृहिण्याः कृष्णवत् प्रेमपात्रम्।
सुललित-ललितान्तःस्नेह-फुल्लान्तरात्मा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।५।।
निरवधि सविशाखा शाखियूथ-प्रसूनैः
स्रजमिह रचयन्ती वैजयन्तीं वनान्ते।
अघ-विजय-वरोरःप्रेयसी श्रेयसी सा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।६।।
प्रकटित-निजवासं स्निग्ध वेणु-प्रणादै-
र्द्रुतगति हरिमारात् प्राप्य कुञ्जे स्मिताक्षी।
श्रवण-कुहर-कण्डूं तन्वती नम्रवक्त्रा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।७।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो समस्त ब्रजाङ्गनाओंकी प्राणस्वरूपा हैं एवं जो गोपराजपत्नी-श्रीयशोदाकी श्रीकृष्णके समान स्नेहभाजन हैं तथा जिनकी अन्तरात्मा, ललिता-सखीके सुमनोहर आन्तरिक स्नेहसे, फूली नहीं समाती हैं।।५।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो श्रीवृन्दावनमें सदैव साथ रहनेवाली, विशाखा-सखीके सहित; अनेक वृक्षोंके पुष्पों द्वारा, वैजयन्तीमालाको बनाती हुई विद्यमान रहती हैं, अतएव अघविजयी-श्रीकृष्णके श्रेष्ठ वक्षःस्थलकी अतिशय प्यारी हैं एवं परम मङ्गलमयी हैं।।६।।

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जिनके नेत्र, स्निग्ध बंशीकी ध्वनियोंके द्वारा, निकुञ्जमें अपनी स्थितिको प्रकाशित करनेवाले, श्रीकृष्णको शीघ्र गतिसे प्राप्तकर, किंचित् विकसित हो जाते हैं एवं किसी बहानेसे, अपने कर्णछिद्रको खुजाती हुईं, अपने मुखको नीचा कर लेती हैं।।७।।

अमल–कमल–राजि–स्पर्शि–वात–प्रशीते
निजसरसि निदाघे सायमुल्लासिनीयम्।
परिजन–गण–युक्ता क्रीडयन्ती बकारिं
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु।।८।।

पठति विमलचेता मृष्टराधाष्टकं यः
परिहृत–निखिलाशा–सन्ततिः कातरः सन्।
पशुप – पति – कुमारः काममामोदितस्तं
निजजन – गणमध्ये राधिकायास्तनोति।।९।।
(श्रीमद् रघुनाथदास गोस्वामि विरचित)

वे श्रीमती राधिका, मुझको अपनी सेवामें कब स्नान करायेंगी अर्थात् निमग्न करेंगी? जो ग्रीष्मऋतुमें सायंकालके समय, उल्लाससे युक्त होकर तथा ललिता आदि अपने सेवकवर्गसे सम्मिलित होकर, निर्मल कमलश्रेणीको स्पर्श करनेवाली वायुके कारण, अतिशय शीतल, राधाकुण्ड–नामक अपने सरोवरमें, श्रीकृष्णको क्रीड़ा कराती रहती हैं।।८।।

निर्मल चित्तवाला जो व्यक्ति, अन्य समस्त आशाओंकी श्रेणीको छोड़कर, कातर होकर, इस विशुद्ध "राधिकाष्टक" का पाठ करता है, उस व्यक्तिको गोपराजकुमार श्रीकृष्ण, यथेष्ट प्रसन्न होकर, श्रीमती राधिकाके अपने परिकरवर्गमें सम्मिलित कर लेते हैं। इस अष्टकमें "मालिनी" नामक छन्द है।।९।।

श्रीराधिकाष्टकम् (३)

कुंकुमाक्त-काञ्चनाब्ज-गर्वहारि-गौरभा
पीतनाञ्चिताब्ज-गन्धकीर्ति निन्दि-सौरभा।
बल्लवेश-सूनु-सर्व-वाञ्छितार्थ-साधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका।।१।।

कौरविन्द-कान्ति-निन्दि-चित्र-पट्ट-शाटिका
कृष्ण-मत्तभृङ्ग-केलि-फुल्ल-पुष्प-वाटिका।
कृष्ण-नित्य-सङ्गमार्थपद्मबन्धु-राधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका।।२।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जिनके श्रीविग्रहकी कान्ति, कुंकुमसे युक्त सुवर्णकमलके गर्वका अपहरण करनेवाली है एवं जिनके श्रीअङ्गकी सुगन्ध; केसरसे युक्त कमलकी सुगन्धके यशका तिरस्कार करने वाली है तथा जो गोपराजकुमार श्रीकृष्णके अभिलषित सभी प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली है।।१।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें जिनकी चित्र-विचित्र रेशमी साड़ी प्रवालकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली हैं एवं जो श्रीकृष्णरूप-मत्तभ्रमरकी क्रीड़ाके लिए, विकसित पुष्पवाटिका-स्वरूप हैं तथा श्रीकृष्णके नित्य मिलनके लिए, जो सूर्यकी आराधना करती रहती हैं।।२।।

सौकुमार्य–सृष्ट–पल्लवालि–कीर्ति–निग्रहा
चन्द्र – चन्दनोत्पलेन्दु–सेव्य – शीत–विग्रहा।
स्वाभिमर्ष–बल्लवीश–काम–ताप–बाधिका
मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका।।३।।
विश्ववन्द्य–यौवताभिवन्दितापि या रमा
रूप–नव्य–यौवनादि–सम्पदा न यत्समा।
शील–हार्द–लीलया च सा यतोऽस्ति नाधिका
मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका।।४।।
रास–लास्य गीत–नर्म–सत्कलालि–पण्डिता
प्रेम–रम्य–रूप वेश–सद्गुणालि–मण्डिता।
विश्व–नव्य–गोप–योषिदालितोऽपि याधिका
मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका।।५।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो अपनी सुकुमारताके द्वारा, नवपल्लवश्रेणीके यशका तिरस्कार करती रहती हैं एवं जिनका शीतल श्रीविग्रह चन्द्र–चन्दन–कमल एवं कर्पूर आदि परमशीतल पदार्थोंके द्वारा सेवा करने योग्य है अर्थात् उन सबसे भी अधिक शीतल है, तथा जो अपने स्पर्शमात्रसे, गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके कन्दर्पजनित तापको दूर करनेवाली हैं।।३।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो लक्ष्मीदेवी, विश्ववन्दनीय युवतियोंके द्वारा अभिवन्दित होकर भी, अपने रूप एवं नवीनयौवन आदि सम्पत्तिके द्वारा, जिनके समान नहीं है एवं वही लक्ष्मीदेवी, अपने स्वभावप्रेम तथा क्रीड़ा आदिके द्वारा भी, जिनसे अधिक नहीं हैं।।४।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो रासलीलामें नृत्य–गीत–परिहास आदि सुन्दर कलाश्रेणीमें पण्डित हैं एवं लोकोत्तर–प्रेम, रमणीय रूप, वेषभूषा एवं श्रेष्ठ गुणावलीसे जो विभूषित हैं तथा जो समस्त नवीन गोपाङ्गनाश्रेणीसे भी अधिक हैं।।५।।

नित्य-नव्य-रूप केलि-कृष्णभाव-सम्पदा
कृष्णराग-बन्ध-गोप-यौवतेषु-कम्पदा।
कृष्ण-रूप-वेश-केलि-लग्न-सत्समाधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका।।६।।
स्वेद-कम्प-कण्टकाश्रु-गद्गदादि-सञ्चिता-
मर्ष-हर्ष-वामतादि-भाव-भूषणाञ्चिता।
कृष्ण-नेत्र-तोषि-रत्न-मण्डनालि-दाधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका।।७।।
या क्षणार्ध-कृष्ण-विप्रयोग-सन्ततोदिता-
नेक-दैन्य-चापलादि-भाववृन्द-मोदिता।
यत्नलब्ध-कृष्णसङ्ग-निर्गताखिलाधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका।।८।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो अपने नित्य नवीन रूप एवं नित्य नवीन अपनी क्रीड़ा तथा नित्य नवीन अपनी कृष्णभावरूपी-सम्पत्तिके द्वारा, श्रीकृष्णके अनुरागमें बँधी हुईं, गोप-युवती श्रेणियोंमें कंप देनेवाली हैं एवं श्रीकृष्णके रूप-वेश-क्रीड़ा आदिके अनुभवमें, जिनकी सुन्दर समाधि लग जाती है।।६।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो स्वेद-कंप-पुलक-अश्रु एवं गद्गद आदि सात्त्विकभावोंसे संयुक्त हैं एवं प्रणयकोप, हर्ष तथा प्रेममयी कुटिलता आदि भावरूपी भूषणोंसे जो विभूषित हैं; तथा जो श्रीकृष्णके नेत्रोंको सन्तुष्ट करनेवाली रत्नजटित भूषणोंकी श्रेणीको धारण करनेवाली हैं।।७।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिए अपने पादपद्मोंकी सेवा प्रदान करती रहें कि, जो श्रीकृष्णके आधेक्षणके वियोगसे, निरन्तर उदय होनेवाली दीनता-चंचलता आदि अनेक भावोंसे व्यथित हो जाती हैं एवं अपने द्वारा अथवा श्रीकृष्णके द्वारा किए गए दूतीप्रेक्षण आदि प्रयत्नके कारण, प्राप्त हुए श्रीकृष्णके मिलनसे, समस्त मानसिक व्यथाओंसे रहित हो जाती हैं।।८।।

अष्टकेन यस्त्वनेन नौति कृष्णवल्लभां
दर्शनेऽपि शैलजादि-योषिदालि-दुर्लभाम्।
कृष्णसङ्ग-नन्दितात्म-दास्य-सीधु-भाजनं
तं करोति नन्दितालि-सञ्चयाशु सा जनम्।।९।।
(श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी विरचित)

जिनका दर्शन, पार्वती आदि अङ्गनाश्रेणीके लिए भी दुर्लभ हैं, कृष्णप्रेयसी उन श्रीमती राधिकाकी स्तुति, जो व्यक्ति इस अष्टकके द्वारा करता है, उस व्यक्तिको, अपनी सखीसमुदायको प्रसन्न करनेवाली श्रीमती राधिका, श्रीकृष्णके सङ्गसे प्रसन्न होकर, शीघ्र ही अपनी सेवारूप-अमृतका पात्र बना लेती हैं। इस अष्टकमें 'तूणक' नामक छन्द हैं।।९।।

n

श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम्

वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे
मत्त-द्विप-प्रवर-कौतुक-विभ्रमेण।
संदर्शयस्व युवयोर्वदनारविन्द-
द्वन्द्वं विधेहि मयि देवि! कृपां प्रसीद।।१।।

हे देवि राधिके! तुम दोनों (राधा-कृष्ण) मत्तगजेन्द्रके कौतुकविलासवाटिकारूप, वृन्दावनके क्रीड़ाकुञ्जमें नित्य विहार करते रहते हो, अतः हे गान्धर्विके! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ एवं कृपा कर तुम दोनोंके युगल मुखारविन्दका दर्शन करा दो।।१।।

हा देवि! काकुभर-गद्‌गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके! निजगणे गणनां विधेहि।।२।।
श्यामे! रमारमण-सुन्दरता-वरिष्ठ-
सौन्दर्य-मोहित-समस्त-जगज्जनस्य।
श्यामस्य वामभुज-बद्धतनुं कदाहं
त्वामिन्दिरा-विरल-रूपभरां भजामि?।।३।।
त्वां प्रच्छदेन मुदिरच्छविना पिधाय
मञ्जीर-मुक्त-चरणां च विधाय देवि!
कुञ्जे व्रजेन्द्र-तनयेन विराजमाने
नक्तं कदा प्रमुदितामभिसारयिष्ये?।।४।।

हे देवि गान्धर्विके! मैं विशिष्ट पीड़ासे युक्त हूँ, अतः आज भूमिपर दण्डके समान गिरकर, कातरतासे भरी हुई, गद्‌गद वाणीसे प्रार्थना करता हूँ कि, मुझ अज्ञानी जनपर कृपा करके, अपने परिकरोंमें मेरी भी गिनती कर लीजिए।।२।।

हे श्रीमती श्यामे! आपका श्रीविग्रह, नारायण भगवान्‌की सुन्दरतासे भी श्रेष्ठ, अपने सौन्दर्यके द्वारा समस्त जगत्‌जनोंको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दरकी बायीं भुजासे निबद्ध है, अर्थात् आप श्रीकृष्णके वामाङ्गमें विराजमान हैं एवं आपके रूपकी समता प्राप्ति लक्ष्मीदेवीके लिए भी दुर्लभ है; मैं तुम्हारी इस प्रकारकी छविका कब भजन किया करूँगा?।।३।।

हे देवि राधिके! मैं तुम्हारी सखी बनकर मेघकी सी कान्तिवाली ओढ़नीके द्वारा, तुम्हारे शरीरको ढककर एवं तुम्हारे चरणोंको नूपुरोंसे रहित बनाकर, प्रसन्न हुई तुमको, नन्दनन्दनसे सुशोभित निकुञ्जमें रात्रिमें कब पहुँचाऊँगा, अर्थात् पूर्वोक्त रूपवाली तुम्हारा कब अभिसार कराऊँगा?।।४।।

कुञ्जे प्रसून-कुल-कल्पित-केलि-तल्पे
संविष्टयोर्मधुर-नर्म-विलास-भाजोः।
लोक - त्रयाभरणयोश्चाणाम्बुजानि
संवाहयिष्यति कदा युवयोर्जनोऽयम्?।।५।।
त्वत्कुण्ड-रोधसि विलास-परिश्रमेण
स्वेदाम्बु-चुम्बि-वदनाम्बुरुह-श्रियौ वाम्।
वृन्दावनेश्वरि! कदा तरुमूलभाजौ
संवीजयामि चमरीचय-चामरेण?।।६।।
लीनां निकुञ्जकुहरे भवतीं मुकुन्दे
चित्रैव सूचितवती रुचिराक्षि! नाहम्।
भुग्नां भ्रुवं न रचयेति मृषारुषां त्वा-
मग्रे व्रजेन्द्र-तनयस्य कदा नु नेष्ये?।।७।।

हे देवि! निकुञ्जमें पुष्पसमुदायके द्वारा बनायी हुई क्रीड़ामयी शय्यापर शयन करनेवाले एवं मधुर परिहासमय विलासोंका सेवन करनेवाले तथा तीनों लोकोंके आभरणस्वरूप तुम दोनोंके चरणारविन्दोंकी सेवा, यह जन कब कर पायेगा? अहह! ऐसा शुभदिन मुझे कब प्रात होगा?।।५।।

हे वृन्दावनेश्वरि! तुम्हारे कुण्डके तीरपर विलासके परिश्रमसे तुम दोनोंके मुखारविन्दोंकी शोभा, पसीनेकी बूँदोंसे युक्त हो जायगी एवं तुम दोनों जब कल्पवृक्षके नीचे मणिमय सिंहासनपर विराजमान हो जाओगे, तब मैं, रत्नदण्डसे सुशोभित चँवरके द्वारा संजीवन करूँगा अर्थात् तुम दोनोंके ऊपर मैं कब चँवर डुलाऊँगा?।।६।।

हे सुन्दरलोचने राधिके! देखो, तुम जब कौतुकवश निकुञ्जके गुप्तस्थानरूप-बिलमें छिप जाओगी, तब श्रीकृष्णको तुम्हारे छिपनेका पता लग जानेपर तुम्हारे निकट आ जानेपर, तुम मुझसे पूछोगी कि—"हे रूपमंजरी! श्रीकृष्णको मेरे छिपनेका स्थान तुमने क्यों बतलाया?" तब मैं उत्तर दूँगी कि—"नहीं, नहीं, मैंने नहीं बताया; किन्तु तुम्हारे छिपनेकी सूचना चित्रा सखीने दी है। अतः मेरे ऊपर टेढ़ी भ्रुकुटी न कीजिए।" इस प्रकार मेरे ऊपर मिथ्याकोप करनेवाली तुमको देखकर; मैं, श्रीकृष्णके आगे तुम्हारी अनुनय विनय कब करूँगा? ऐसा शुभदिन कब उपस्थित होगा?।।७।।

वाग्युद्ध-केलि-कुतुके व्रजराज-सूनुं
जित्वोन्मदामधिकदर्प-विकासि-जल्पाम्।
फुल्लाभिरालिभिरनल्पमुदीर्यमाण -
स्तोत्रां कदा नु भवतीमवलोकयिष्ये?।।८।।
यः कोऽपि सुष्ठु वृषभानु-कुमारिकायाः
संप्रार्थनाष्टकमिदं पठति प्रपन्नः।
सा प्रेयसा सह समेत्य धृतप्रमोदा
तत्र प्रसाद-लहरीमुररीकरोति।।९।।
(श्रीमद्रूपगोस्वामी विरचित)

उस समय तुम वाणीके युद्धरूप क्रीड़ाकौतुकमें, श्रीकृष्णको जीतकर अत्यन्त हर्षित हो जाओगी एवं तुम्हारा वाग्विलास अधिक दर्पको विकसित करनेवाला होगा; तब अपनी स्वामिनीकी विजयसे प्रफुल्लित हुई सखियाँ, तुम्हारी भारी स्तुति करेंगी, ऐसी स्थितिमें मैं तुम्हारा कब दर्शन करूँगा?।।८।।

जो व्यक्ति शरणागत होकर, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाके इस प्रार्थनाष्टकका श्रद्धापूर्वक पाठ करता है, उस पाठकके निकट प्रसन्न हुई राधिका अपने प्रियतम श्रीकृष्णके सहित उपस्थित होकर, उसके ऊपर अपनी प्रसन्नताकी तरङ्गोंको अङ्गीकार करती हैं। इस अष्टकमें "वसन्ततिलका" नामक छन्द हैं।।९।।

श्रीयुगलकिशोराष्टकम्

नवजलधर-विद्युद्द्योत-वर्णौ प्रसन्नौ
वदन-नयन-पद्मौ चारु-चन्द्रावतंसौ।
अलक-तिलक-भालौ केशवेश-प्रफुल्लौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।१।।

हे मन! तुम, नव जलधर और विद्युत् सदृश श्याम-गौर अंगकान्ति विशिष्ट सदैव प्रसन्न मुखारविन्द और नयनकमल द्वारा सुशोभित, अतिशय मनोज्ञ चन्द्राकार शिरोभूषणयुक्त, मनोहर अलका-तिलक सुशोभित ललाटवाले, घुँघराले केश एवं सुन्दर वेश-विन्यासमे युक्त श्रीराधाकृष्ण युगल किशोरकी बारम्बार आराधना करो।।१।।

वसन-हरित-नीलौ चन्दनालेपनाङ्गौ
मणि-मरकत दीप्तौ स्वर्णमाला-प्रयुक्तौ।
कनक-वलय-हस्तौ रासनाट्य प्रसक्तौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।२।।
अति-मतिहर-वेशौ रङ्ग-भङ्गी-त्रिभङ्गौ
मधुर-मृदुल-हास्यौ कुण्डलाकीर्ण-कर्णौ।
नटवर-वर-रम्यौ नृत्यगीतानुरक्तौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।३।।
विविध-गुण-विदग्धौ वन्दनीयौ सुवेशौ
मणिमय मकराद्यैः शोभिताङ्गौ स्फुरन्तौ।
स्मित-नमित कटाक्षौ धर्म कर्म प्रदत्तौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।४।।

हे मन! तुम पीले और नीले रङ्गके वस्त्रोंको धारण करनेवाले, अङ्गोंमें चन्दनके लेप द्वारा सुशोभित हेम और नीलमणि सदृश दीप्तिशाली, गलेमें स्वर्णमाला और हाथोंमें कनक-वलय धारण करनेवाले तथा रास-नृत्यमें आसक्त चित्त श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी पुनः-पुनः आराधना करो।।२।।

हे मन! तुम अतिशय मनोहर वेशधारी, ललित-त्रिभङ्ग-भङ्गिमायुक्त सुमधुर-मन्द मुस्कानवाले कानोंमें कुण्डल-परिहित नट-समूहमें श्रेष्ठ रमणीय नवकिशोर नटवर युगल, नृत्य-गीत-वाद्यमें सर्वदा अनुरक्त श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी निरन्तर आराधनामें लगे रहो।।३।।

हे मन! तुम विविध गुणविशिष्ट और कला-विलासमें सुचतुर रसिक-शेखर, सुर-नर-मुनि सबके वन्दनीय, सुन्दर-वेशभूषा-विभूषित, मणिमय मकर-कुण्डल आदि अलंकारोंसे अलंकृत अङ्गोंवाले, मनोहारी मन्द-मुसकान लसित कटाक्षयुक्त, भक्तवर्गको धर्म-कर्म अर्थात् प्रेम-सेवा प्रदान करनेवाले अथवा भक्तोंके धर्म-कर्म सब कुछ हरण करनेवाले श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी निरन्तर आराधनामें तत्पर रहो।।४।।

कनक-मुकुट-चूडौ पुष्पितोद्भूषिताङ्गौ
सकल-वन-निविष्टौ सुन्दरानन्द-पुञ्जौ।
चरण-कमल-दिव्यौ देवदेवादि-सेव्यौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।५।।
अति-सुवलित-गात्रौ गन्धमाल्यैर्विराजौ
कति कति रमणीनां सेव्यमानौ सुवेशौ।
मुनि-सुर-गण-भाव्यौ वेदशास्त्रादि-विज्ञौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।६।।
अति-सुमधुर-मूर्तौ दुष्ट-दर्प-प्रशान्तौ
सुरवर - वरदौ द्वौ सर्वसिद्धि - प्रदानौ।
अतिरसवश-मग्नौ गीतवाद्यैर्वितानौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।७।।

हे मन! तुम स्वर्ण-मुकुटोंसे अलंकृत चूड़ा (मस्तक) विशिष्ट, विविध प्रकारके पुष्पोंसे विभूषित अङ्गवाले, वृन्दावनके समस्त वनोंमें विहार करनेवाले, निविड़ आनन्दके पुंज-स्वरूप, देवदेवादि द्वारा परिसेवित अलौकिक सौन्दर्यविशिष्ट चरण-कमल वाले श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी पुनः-पुनः आराधनामें तत्पर रहो।।५।।

हे मन! तुम अति सुवलित गात्र विशिष्ट गन्ध-माल्यादि द्वारा विभूषित, अगणित ब्रजसुन्दरियों द्वारा परिसेवित शोभनीय वेशवाले मुनि देववृन्द द्वारा परिभाषित वेद-शास्त्रादिमें पारङ्गत श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी निरन्तर आराधनामें तत्पर रहो।।६।।

हे मन! तुम अत्यन्त सुमधुर रूपधारी, दुष्टजनोंके दर्पको चूर्ण करनेवाले देववृन्दके अग्रणी महादेव प्रभृतिके भी वरदाता तथा सर्वप्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले आनन्द चिन्मय रसमें अत्यन्त निमग्न तथा नृत्य-गीत-वाद्यादि परिपाटीका विशेष रूपमें विस्तार करनेवाले युगल किशोर श्रीश्रीराधाकृष्णकी पुनः-पुनः आराधनामें निमग्न रहो।।७।।

अगम-निगम-सारौ सृष्टि-संहार-कारौ
वयसि नवकिशोरौ नित्यवृन्दावनस्थौ।
शमनभय-विनाशौ पापिनस्तारयन्तौ
भज भज तु मनो रे राधिका-कृष्णचन्द्रौ।।८।।

इदं मनोहरं स्तोत्रं श्रद्धया यः पठेन्नरः।
राधिका-कृष्णचन्द्रौ च सिद्धिदौ नात्र संशयः।।९।।

हे मन! तुम, निगमागमके सार-स्वरूप अपने-अपने अशांशों द्वारा ही सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले नित्य नव किशोर वयःमें अवस्थित, नित्य वृन्दावनके योगपीठमें विराजमान, मृत्यु-भयको दूर करनेवाले, पापियों और तापियोंका निस्तार करनेवाले श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरकी आराधनामें सर्वदा निमग्न रहो।।८।।

जो लोग (साधक) इस परम मनोहर युगलकिशोराष्टकका श्रद्धापूर्वक पाठ करेंगे, वे लोग निखिल सिद्धियोंके दाता श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरके श्रीचरणकमलोंकी सेवा रूप सिद्धिको अवश्य प्राप्त होंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।।९।।

n

श्रीराधाकुण्डाष्टकम्

वृषभदनुजनाशान्नर्मधर्मोक्तिरङ्गै -
र्निखिल-निजसखीभिर्यत् स्वहस्तेन पूर्णम्।
प्रकटितमपि वृन्दारण्यराज्ञ्या प्रमोदै-
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।१।।

श्रीकृष्णको श्रीमती राधिका जिस प्रकार प्रिय हैं, उसी प्रकार उनका कुण्ड भी प्रिय है; अतः उसीका आश्रय लेनेकी आकांक्षासे प्रार्थना करते हुए, श्री रघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं कि-

व्रजभुवि मुरशत्रोः प्रेयसीनां निकामै—
रसुलभमपि तूर्णं प्रेमकल्पद्रुमं तम्।
जनयति हृदि भूमौ स्नातुरुच्चैः प्रियं य-
त्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।२।।

अतिशय सुगन्धीवाला मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय जिसे श्रीवृन्दावनकी महारानी श्रीराधिकाने हर्षपूर्वक प्रकट किया है तथा अरिष्टासुरके नाशके बाद, राधिकाकी समस्त सखियोंने, श्रीकृष्णके साथ हास-परिहासमयी धर्मोक्तियोंके राग-रङ्ग के सहित अपने हाथोंसे परिपूर्ण किया है।

श्रीकृष्णका सखियोंके साथ परिहास (श्रीगोपालचम्पूः, पूर्व, पूरण ३१, पृष्ठ ७३० से) इस प्रकार है—श्रीकृष्ण राधिकासे बोले—हे राधिके! देखो, मैंने तो श्यामकुण्ड बनाकर कृतार्थता प्राप्त कर ली है, किन्तु तुमने तो ऐसा पुण्यमय कोई भी कार्य नहीं किया है, अतः गुणियोंके बीचमें तुम्हारी गणना किस प्रकार होगी? इसके उत्तरमें श्रीराधिकाकी सखी हँसती हुई बोलीं—बैलको मारकर तुमने पाप ही कमाया है, अतः तुम्हीं प्रायश्चित करनेके अधिकारी हो, हम सब नहीं। श्रीकृष्ण हँसकर बोले—यह वृष अर्थात् धर्म या बैल नहीं था; किन्तु बैलका रूप धारण करनेवाला यह असुर तो धर्मका एवं गो-समूहका विरोधी था, अतः उसकी पक्षपातिनी होनेके कारण, उसका पाप तुम्हारे ऊपर ही लगता है, इसलिए प्रायश्चित करना तुम्हारा ही कर्तव्य है। उसमें भी "प्रजाके द्वारा किया हुआ पाप, राजाको ही लगता है" इस नीतिके अनुसार, यह पाप तुम्हारी महारानी राधिकाको ही लगता है, अतः उनको ही कुण्डनिर्माणरूप प्रायश्चित करना चाहिये। इसके उत्तरमें सखियाँ बोलीं—अच्छा, जो हो; तो भी यह दोष तो आपके सम्बन्धसे ही
प्राप्त हुआ है, अतः उसको दूर करनेके लिए हमको भी आपके किये हुए कार्यका ही अनुकरण करना चाहिये। यह कहकर राधिकाके साथ मिलकर सभी सखियोंने राधाकुण्डका निर्माण परिपूर्ण किया।।१।।

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जो अपनेमें स्नान करनेवालोंके हृदयरूप-भूमिमें उस प्रेम-रूप-

अघरिपुरपि यत्नादत्र देव्याः प्रसाद–
प्रसरकृतकटाक्षप्राप्तिकामः प्रकामम्।
अनुसरति यदुच्चैःस्नानसेवानुबन्धै।
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।३।।
व्रजभुवनसुधांशो प्रेमभूमिर्निकामं
व्रजमधुरकिशोरीमौलिरत्नप्रियेव ।
परिचितमपि नाम्ना यच्च तेनैव तस्या–
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।४।।
अपि जन इह कश्चिद् यस्य सेवाप्रसादैः
प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्रसूनोः।
सपदि किल मदीशा–दास्यपुष्पप्रशस्या
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।५।।

कल्पवृक्षको शीघ्र ही उत्पन्न कर देता है कि, जो अतिशय प्रिय प्रेमरूप–कल्पवृक्ष, श्रीकृष्णकी द्वारकावासिनी पटरानियोंके विशिष्ट मनोरथोंके द्वारा भी, व्रजभूमिमें प्राप्त करना दुर्लभ है, अर्थात् सत्यभामाके सम्बन्धसे द्वारकावासिनी पटरानियोंने साधारण कल्पवृक्ष तो प्राप्त कर लिया था किन्तु ब्रजवासियोंका सा लोकोत्तर प्रेमरूप–कल्पवृक्ष तो प्राप्त नहीं कर पाईं।।२।।

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, श्रीमती राधिकाकी प्रसन्नतासे विस्तारित उन्हींके कृपाकटाक्षको पानेकी कामनावाले श्रीकृष्ण भी, अतिशय स्नानरूप–नित्यसेवाके द्वारा जिस राधाकुण्डका प्रयत्नपूर्वक यथेष्ट अनुसरण करते रहते हैं।।३।।

अतिशय मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जो ब्रजरूप–भुवनके चन्द्रमाका अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रका ब्रजाङ्गनाओं की शिरोमणिस्वरूपा प्रियतमा राधिकाकी तरह यथेष्ट प्रीतिपात्र है, एवं जिसको श्रीकृष्णने ही श्रीराधिकाके नामोंसे परिचित किया है।।४।।

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जिसकी सेवाकी कृपासे इस संसारमें कोई भी व्यक्ति, ब्रजराजकुमार श्रीकृष्णकी प्रेमरूप–कल्पलता शीघ्र ही बन सकता है; वह कल्पलता मेरी स्वामिनी श्रीमती राधिकाके दासभावरूप पुष्पसे प्रशंसनीय है।।५।।

तटमधुरनिकुञ्जाः क्लृप्तनामान उच्चै-
र्निरपरिजनवर्गैः संविभज्याश्रितास्तैः।
मधुकर-रुतरम्या यस्य राजन्ति काम्या-
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।६।।
तटभुवि वरवेद्यां यस्य नर्मातिहृद्यां
मधुरमधुरवार्तां गोष्ठचन्द्रस्य भंग्या।
प्रथयति मिथ ईशा प्राणसख्यालिभिः सा
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।७।।
अनु दिनमतिरङ्गैः प्रेममत्तालिसंघै-
र्वरसरसिजगन्धैर्हारिवारिप्रपूर्णे ।
विहरत इह यस्मिन् दम्पती तौ प्रमत्तौ
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे।।८।।

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवनका आधार है कि जिसके तटपर मधुर-रसके उद्दीपक निकुञ्जसमूह शोभा पा रहे हैं। वे निकुञ्जसमूह श्रीराधिकाके निजी सेविकाओंके द्वारा अपने-अपने नाम निर्देशपूर्वक बाँट कर आश्रित किये हैं, अर्थात् पूर्वतटमें चित्रासुखद, अग्निकोणमें इन्दुलेखासुखद, दक्षिणमें चंपकलतासुखद, नैर्ऋत्यकोणमें रङ्गदेवीसुखद, पश्चिममें तुङ्गविद्यासुखद, वायुकोणमें सुदेवीसुखद, उत्तरमें ललितासुखद एवं ईशानकोणमें विशाखासुखद— नामवाले निकुञ्जसमूह विशेषरूपसे अधिकृत हैं एवं भ्रमरोंकी गुञ्जारसे रमणीय हैं तथा सभीके वांछनीय हैं।।६।।

अतिशय मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवनका आधार है कि, जिसके तटकी भूमिपर, श्रेष्ठ वेदीपर विराजमान हमारी स्वामिनी श्रीमती राधिका, अपनी प्राणप्यारी सखियोंके सहित, ब्रजचंद्र श्रीकृष्णकी परिहासमयी अतिशय मनोहर मीठी-मीठी बातको, संकेतपूर्वक परस्पर विस्तारित करती रहती हैं।।७।।

अतिशय मनोहर या विशेष सुगन्धित वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवनका अवलंबन है कि, उत्तम कमलोंकी सुगन्धिके कारण मनोहर जलसे परिपूर्ण जिस राधाकुण्डमें, श्रीराधा-कृष्णरूप वे दोनों दम्पती प्रेमोन्मत्त होकर, प्रेमसे मत्त हुई अपनी सखीश्रेणीके सहित, प्रतिदिन विशेष राग-रङ्गपूर्वक विहार करते रहते हैं।।८।।

अविकलमति देव्याश्चारु कुण्डाष्टकं यः
परिपठति तदीयोल्लासिदास्यार्पितात्मा।
अचिरमिह शरीरे दर्शयत्येव तस्मै
मधुरिपुरतिमोदैः श्लिष्यमाणां प्रियां ताम्।।९।।
(श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित)

जो व्यक्ति, श्रीराधिकाके मनोहर दास्यभावमें, अपने मनको लगाकर, श्रीराधिकाके इस मनोहर राधाकुण्डके अष्टकको, स्थिर–बुद्धिपूर्वक भावसे पढ़ता है, उस व्यक्तिके लिए श्रीकृष्ण, इस शरीरमें ही अतिशय हर्ष–परम्परासे युक्त, निज प्रेयसी श्रीराधिकका शीघ्र ही दर्शन करा देते हैं। इस अष्टकमें 'मालिनी' नामक छन्द है।।९।।

n

श्रीश्यामकुण्डाष्टकम्

वृषभ–दनुज नाशाननतरं यत् स्वगोष्ठी–
मयसि वृषभ–शत्रो मा स्पृश त्वं वदन्त्याम्।
इति वृषरविपुत्र्यां कृष्णपार्ष्णि प्रखातं
तदति–विमल–नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।१।।

वृषभासुरके वधके पश्चात्, 'हे वृषभ–शत्रु'! तुम हमारी गोष्ठीमें आ रहे हो, हमें स्पर्श मत करो—श्रीमती राधिकाके द्वारा ऐसा कहने पर श्रीकृष्णने अपनी ऐड़ीके प्रहारसे जिसको प्रकट किया है, वह अत्यन्त विमल जलसे परिपूर्ण श्रीश्यामकुण्ड ही हमारी गति है।।१।।

त्रिजगति निवसद् यत् तीर्थवृन्दं तमोघ्नं
व्रजनृपति-कुमारेणाहृतं तत सम्भ्रम्।
स्वयमिदमवगाढं यन्महिम्नः प्रकाशं
तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।२।।
यदति-विमल नीरे तीर्थरूपे प्रशस्ते
त्तमपि कुरु कृशांगि! स्नानमत्रैव राधे।
इति विनय वचोभिः प्रार्थनाकृत् स कृष्ण—
स्तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।३।।
वृषभ-दनुज-नाशादुत्थ-पापं समाप्तं
द्युमणि-सख-जयोच्चैर्वर्जयित्वेति तीर्थम्।
निजमखिल-सखीभिः कुण्डमेव प्रकाश्यं
तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।४।।

तीनो लोकोंमें पापनाशक जितने भी तीर्थ हैं व्रजेन्दनन्दन श्रीकृष्णने उन सबको बुलाकर जहाँ एकत्र निवास कराया है और ये ही उनकी अत्यन्त प्रगाढ़ महिमाका द्योतक है वे अत्यन्त विमल जलसे परिपूर्ण श्रीश्यामकुण्ड ही हमारी गति हैं।।२।।

'हे कृशाङ्गि राधे! तुम भी इस पवित्र जलसे परिपूर्ण सुन्दर तीर्थरूप इस पावन कुण्डमें स्नान करो'—श्रीकृष्ण द्वारा श्रीमती राधिकाको भी जिसमें स्नान करनेके लिए प्रार्थना की गयी है, वही पवित्र जलसे युक्त श्रीश्यामकुण्ड ही हमारी गति हैं।।३।।

कृष्णकी एड़ीके आघातसे प्रकट होने वाले कुण्ड (श्यामकुण्ड) में स्नान करनेसे कृष्णके कुण्डमें अवस्थित निखिल तीर्थोंके द्वारा श्रीकृष्णका वृषभासुरके विनाशसे उत्पन्न पापको नष्ट होते देखकर वृषभानुनन्दिनी श्रीमतीराधिकाने अपनी अखिल सखियोंके साथ ठीक वैसे ही एक-दूसरे कुण्डका प्रकाश किया था वही विमल जलसे युक्त श्रीश्यामकुण्ड ही हमारी गति हों।।४।।

यदति सकल-तीर्थैस्त्यक्तवाक्यैः प्रभीतैः
सविनयमभियुक्तै कृष्णचन्द्रे निवेद्य।
अगतिकगति-राधा वर्जनान्नो गतिः का
तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।५।।
यदति-विकल-तीर्थं कृष्णचन्द्रं प्रसुस्थं
अति-लघु-नति-वाक्यैः सुप्रसन्नेति राधा।
विविध-चटुल-वाक्यैः प्रार्थनाढ्या भवन्ती
तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।६।।
यदतिललित-पादैस्तां प्रसाद्याप्ततैर्थ्यै-
स्तदतिशय-कृपार्द्रैः संगमेन प्रविष्टैः।
व्रज नवयुव-राधाकुण्डमेव प्रपन्नं
तदति-विमल-नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।७।।

निखिल तीर्थोंको श्रीमती राधिकाजी द्वारा अपने प्रकटित कुण्डमें प्रवेश करनेसे निषेध करने पर उन्होंने (निखिल तीर्थोंने) अत्यन्त भयभीत होकर विनयपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीचरणोंमें—अगतियोंकी एकमात्र गति श्रीमती राधिकाजी हमें त्याग देनेपर हमारी क्या गति होगी? इस प्रकार जहाँ पर निवेदन किया था, वही अत्यन्त पवित्र जलयुक्त श्रीश्यामकुण्ड ही मेरी गति हैं।।५।।

जहाँ पर तीर्थोंको अतिशय विकल देखकर श्रीकृष्णके द्वारा उनको सेवाधिकार (श्रीकुण्डमें प्रवेशाधिकार) प्रदान करनेके लिए श्रीमती राधिकाके प्रति अनुनय-विनय भरे वचनोंसे भङ्गीपूर्वक प्रार्थना करने पर श्रीमती राधिकाने अतिशय कोमल प्रणतियुक्त वचनोंसे श्रीकृष्णसे ऐसा कहा था कि—'मैं सुप्रसन्न हूँ' वही अतिशय विमल जलयुक्त श्रीश्यामकुण्ड ही मेरी गति हैं।।६।।

जिस श्यामकुण्डमें प्रविष्ट हुए तीर्थोंने अतिशय मनोज्ञ पद्योंके द्वारा श्रीमती राधिकाको सुप्रसन्न कर तथा श्रीमती राधिकाकी अपने प्रति कृपा लक्ष्यकर द्रवीभूत होकर (जलरूपसे) दोनों कुण्डोंके मध्यवर्ती स्थानको भेदकर ब्रजके नवीन युव-द्वन्द्व (युगलकिशोर) के श्रीराधाकुण्डमें आश्रय ग्रहण किया था, वही अतिशय विमल जलसे युक्त श्रीश्यामकुण्ड मेरी एकमात्र गति हैं।।७।।

यदति–निकट तीरे क्लप्त–कुञ्जं सुरम्यं
सुवल–बटु–मुखेभ्यो राधिकाद्यैः प्रदत्तम।
विविध–कुसुम–वल्ली–कल्पवृक्षादि–राजं
तदति–विमल–नीरं श्यामकुण्डं गतिर्मे।।८।।

परिपठति सुमेधाः श्यामकुण्डाष्टकं यो
नव–जलधर–रूपे स्वर्णकान्त्यां च रागात्।
व्रज–नरपति–पुत्रस्तस्य लभ्यः सुशीघ्रं
सह सगण–सखीभी राधया स्यात् सुभज्यः।।९।।

जिनके अतिशय निकट तटपर श्रीमती राधिका आदि सखियोंने विविध कुसुमवल्लियों तथा कल्पवृक्षोंसे सुशोभित कुञ्जोंका निर्माणकर सुबल और मधुमङ्गल वटु प्रमुख सखाओंको प्रदान किया था, वह अतिशय विमल जलयुक्त श्रीश्यामकुण्ड ही मेरी गति हैं।।८।।

जो सुमेधा (बुद्धिमान) व्यक्ति इस श्यामकुण्डाष्टकका प्रीतिपूर्वक पाठ करते हैं, नवजलधरकान्ति युक्त श्रीकृष्ण और स्वर्णकान्ति विशिष्ट श्रीराधिकाके प्रति अनुराग हेतु उनको ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण सखियोंसे परिवेष्टित श्रीमती राधिकाके सहित सहज ही भजनीय होते हैं तथा सुशीघ्र ही प्राप्त होते हैं।।९।।

श्रीगोवर्धनवासप्रार्थनादशकम्

निजपतिभुजदण्डच्छत्रभावं प्रपद्य
प्रतिहतमदधृष्टोद्दण्डदेवेन्द्रगर्व ।
अतुलपृथुलशैलश्रेणिभूप! प्रियं मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।१।।

प्रमदमदनलीलाः कन्दरे कन्दरे ते
रचयति नवयूनोर्द्वन्द्वमस्मिन्नमन्दम्।
इति किल कलनार्थं लग्नकस्तद्द्वयोर्मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।२।।

हे अतुल विस्तारवाली पर्वतश्रेणीके भूप! श्रीमन् गोवर्धन! आप मुझको अपने निकट निवास प्रदान कीजिए। आपके निकट रहना ही मुझको प्रिय लगता है, क्योंकि आप अपने स्वामी श्रीकृष्णके भुजारूप-दण्डके ऊपर छत्रभावको प्राप्त होकर, ऐश्वर्यके मदसे धृष्ट एवं उद्दण्ड, देवेन्द्रके गर्वको विनष्ट करनेवाले हो!।।१।।

हे गोवर्धन! आप, मुझको अपने निकट ही निवास प्रदान कीजिए; क्योंकि नवयुवकस्वरूप श्रीराधाकृष्णकी युगलजोड़ी, आपकी प्रत्येक कन्दरामें, हर्षप्रद प्रेममयी लीलाओंको विशेषरूपसे करती रहती हैं। मैं, उन दोनोंकी लीलाओंको देखनेके लिए मध्यस्थ बनना चाहता हूँ।।२।।

अनुपम – मणिवेदी – रत्नसिंहासनोर्वी–
रुहझर–दरसानुद्रोणि–संघेषु रंगैः।
सह बल–सखिभिः संखेलयन् स्वप्रियं मे
निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।३।।

रसनिधि–नवयूनोः साक्षिणीं दानकेले–
र्द्युतिपरिमलविद्धां श्यामवेदीं प्रकाश्य।
रसिकवरकुलानां मोदमास्फालयन्मे
निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।४।।

हे गोवर्धन! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिए। यदि कहो कि, श्रीराधाकृष्णकी लीलाएँ तो संकेत आदि वनोंमें भी होती हैं, उनके निकट ही क्यों नहीं रहना चाहते हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, आप तो अपने प्यारे श्रीकृष्णको अपनी अनुपम मणिमयी वेदियोंपर, रत्नमय सिंहासनपर, वृक्षोंके नीचे एवं झरनोंमें, दरारोंमें, शिखरोंके ऊपर तथा गुफाओंकी श्रेणीमें, बलदेव एवं श्रीदामा आदि सखाओंके साथ कौतुकपूर्वक क्रीड़ा कराते हुए प्रसन्न करते रहते हो।।३।।

हे गोवर्धन! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिए; क्योंकि आप रसनिधि नवयुवक–श्रीराधाकृष्णकी दानकेलिकी साक्षिणी एवं कान्ति तथा मनोहर गन्धसे युक्त, श्यामवेदीको प्रकाशित करके, रसिकश्रेष्ठ श्रीकृष्णभक्तोंके आनन्दको बढ़ाते हुए विद्यमान हो।।४।।

हरिदयितमपूर्वं राधिका-कुण्डमात्म-
प्रियसखमिह कण्ठे नर्मणाऽऽलिंग्य गुप्तः।
नवयुवयुग-खेलास्तत्र पश्यन् रहो मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।५।।

स्थल-जल-तल-शष्पैर्भूरुहच्छायया च
प्रतिपदमनुकालं हन्त संवर्धयन् गाः।
त्रिजगति निजगोत्रं सार्थकं ख्यापयन्मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।६।।

यदि कहो कि, मेरे निकटवर्ती बहुतसे स्थान हैं, तुम कौनसे स्थानमें रहना चाहते हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि—

हे गोवर्धन! आप, मुझे अपने निकटवर्ती राधाकुण्डमें निवास दे दीजिए; क्योंकि वह राधाकुण्ड, श्रीकृष्णका अतिशय प्रिय है, अतः अपूर्व है; और तुम्हारा भी प्यारा सखा है; इसी कारण आप, उस राधाकुण्डको परिहासपूर्वक कण्ठमें आलिङ्गन करके, उसी राधाकुण्डमें गुप्त होकर नवयुवक श्रीराधाकृष्णकी क्रीड़ाओंको देखते रहते हो। मेरे लिए भी वही एकान्तस्थान उचित है। मैं भी वहींपर बैठकर, राधाकृष्णकी लीलाओंको आपकी तरह अनुभव करता रहूँ।।५।।

हे गोवर्धन! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिए; क्योंकि आप स्थल-जल-तल-तृण एवं वृक्षोंकी छायाके द्वारा, प्रतिक्षण पग-पगपर, गोगणकी वृद्धि करते हुए "गाः वर्धयतीति" इस व्युत्पत्तिके अनुसार अपने गोवर्धन नामको, तीनों लोकोंमें सार्थक विख्यात करते रहते हो। अतः आपके निकट निवास स्थान प्राप्त हो जानेसे, आपके निकट गोचारणार्थ आनेवाले, मेरे इष्टदेव श्रीकृष्णका दर्शन, मुझे भी सम्भव हो सकता है।।६।।

सुरपतिकृत-दीर्घद्रोहतो गोष्ठरक्षां
तव नव-गृहरूपस्यान्तरे कुर्वतैव।
अघ-बक-रिपुणोच्चैर्दत्तमान! द्रुतं मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।७।।
गिरिनृप! हरिदासश्रेणीवर्येति-नामा-
मृतमिदमुदितं श्रीराधिकावक्त्रचन्द्रात्।
व्रजजन-तिलकत्वे क्लृप्त! वेदैः स्फुटं मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।८।।

यदि कहो कि, तुम अपने मनमें, जो-जो भावना करके, मेरे निकट निवास चाहते हो, उन भावनाओंकी पूर्ति तो श्रीवृन्दावनके किसी प्रदेशमें निवास करनेपर भी हो सकती है, फिर मेरे निकट ही क्यों निवास करना चाहते हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि—

हे गोवर्धन! आप, मुझे अपने निकट शीघ्र ही निवास दे दीजिए, क्योंकि नवीन गृहरूप आपके भीतर स्थापित किए हुए ब्रज की, इन्द्रके द्वारा किए गए विशाल द्रोहसे रक्षा करते हुए, अघारि एवं बकारि श्रीकृष्णने, आपके लिए विशेष सम्मान दिया है। श्रीकृष्णका यह स्वभाव है कि, अपने द्वारा सम्मानित व्यक्तियोंके निकट निवास करनेवाले, अयोग्य जनपर भी कृपा कर देते हैं, अतः आपके निकट रहनेसे, मेरे ऊपर भी श्रीकृष्ण कृपा हो सकती है।।७।।

यदि कहो कि "पंचयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्" इत्यादि उक्तिमें, श्रीकृष्णके देहरूपसे निरूपित, श्रीवृन्दावनके किसी प्रदेशमें निवास करनेसे, सभी अभीष्टोंकी सिद्धि हो जायेगी, फिर मेरे निकट ही क्यों निवास करना चाहते हो? इसके उत्तरमें कहते हैं कि—

हे गिरिराज महाराज! देखो, श्रीमती राधिकाके मुखचन्द्रसे "हन्तायमद्रिरवला हरिदासवर्यः" भा. १०/२१/१८ इत्यादि रूपसे, आपका "आप हरिदासोंकी श्रेणीमें श्रेष्ठ हो" यह नामरूपी-अमृत प्रकट हुआ है; अतः सब वेदोंने आपको, ब्रजके अभिनव तिलकरूपसे प्रतिष्ठित कर दिया है, यह बात स्पष्ट है। इसलिए "अधिकस्याधिकं फलम्" इस न्यायके अनुसार, श्रेष्ठतमके निकट निवास करना ही योग्य है; अतः हे गोवर्धन! मुझे अपने निकट ही निवासस्थान प्रदान कर दीजिए।।८।।

निज-जनयुत-राधाकृष्णमैत्रीरसाक्त-
व्रजनर-पशु-पक्षि ब्रात-सौख्यैकदातः।
अगणित-करुणत्वान्मामुरीकृत्य तान्तं
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।९।।
निरुपधि-करुणेन श्रीशचीनन्दनेन
त्वयि कपटि-शठोऽपि त्वत्प्रियेणार्पितोऽस्मि।
इति खलु मम योग्यायोग्यतां तामगृह्णन्
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन! त्वम्।।१०।।

यदि कहो कि, अपने अभीष्टको, किसी दूसरे व्रजवासीसे ही मांग लो, मेरी प्रार्थनासे क्या प्रयोजन है? इसके उत्तरमें कहते हैं कि—

आप तो सखी-सखागणरूप स्वजनोंसे परवेष्टित, श्रीराधाकृष्णकी मित्रतारूप-रससे युक्त, ब्रजके नर-नारी, पशु-पक्षी आदि प्राणीमात्रके अद्वितीय सुखदाता हो, अर्थात् परमदयालु होनेके कारण, श्रीकृष्णके हस्तके स्पर्शमात्रसे स्वयं उठकर, श्रीकृष्णके वाम-हस्तपर विराजमान होकर, ब्रजवासीमात्रकी रक्षा करनेवाले हो; अतः ऐसे दयालुको छोड़कर, दूसरे कौनसे व्यक्तिसे, अपने अभीष्टकी प्रार्थना करूँ? यदि कहो कि, मैंने अपने नीचे प्रविष्ट करके जिन ब्रजवासियोंकी रक्षा की थी, वे तो श्रीकृष्णकी प्रीतिसे युक्त थे, तुम तो उस प्रीतिके लेशसे रहित हो; अतः तुम्हारे लिए अपने निकट किस प्रकार निवास दूँ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, हे गोवर्धन! आप अनन्त करुणासे युक्त हो; अतः मुझ दीन-दुःखीको भी अङ्गीकार करके, अपने निकट निवासस्थान दे दीजिए। तात्पर्य—आप अपनी सहज करुणासे अपने निकट बसाकर, मुझको श्रीकृष्णका प्रीतिपात्र भी बना दोगे।।९।।

मुझ जैसे अयोग्य व्यक्तिके लिए, अपने निकट निवास देनेके विषयमें मुख्य कारण सुनिए—यद्यपि मैं कपटी एवं शठ हूँ, तो भी मुझे परमदयालु शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यदेवने तुम्हारे निकट अर्पित कर दिया है। श्रीशचीनन्दन आपके परमप्रिय हैं, अतः प्रियके वाक्य, प्रियजनको अवश्य ही मान लेने चाहिए। यदि कहो कि, पुरुषोत्तमक्षेत्रसे तुमको यहाँ भेजनेवाले श्रीशचीनन्दनका कुछ प्रयोजन अवश्य होगा, सो बात नहीं है; क्योंकि वे तो अकारण

रसद–दशकमस्य श्रील–गोवर्धनस्य
क्षितिधर–कुलभर्तुर्यः प्रयत्नादधीते।
स सपदि सुखदेऽस्मिन् वासमासाद्य साक्षा–
च्छुभद–युगलसेवारत्नमाप्नोति तूर्णम्।।११।।
(श्रीमद् रघुनाथदास गोस्वामी विरचित)

करुणा–वरुणालय हैं। इसलिए हे गोवर्धन! मेरी उस योग्यता एवं अयोग्यताको ग्रहण न करते हुए, कृपया आप मुझे अपने निकट ही निवासस्थान प्रदानकर दीजिए।।१०।।

यह "गोवर्धनवासप्रार्थनादशक" भक्तिरसको देनेवाला है; अतः, जो व्यक्ति, पर्वतकुलके स्वामी श्रीमान् गोवर्धनके, इस दशकका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करता है, वह व्यक्ति, सुखप्रद इस गोवर्धनमें शीघ्र ही साक्षात् निवास पाकर, शुभप्रद श्रीराधाकृष्णकी सेवारूपरत्नको, शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। इस प्रार्थनादशकमें "मालिनी" नामक छन्द है।।११।।

n

श्रीराधा प्रार्थना

कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाधा
किमपरवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे।
यदि वदति च किञ्चित् स्मेरहासोदित श्री–
र्द्विजवरमणिपंक्त्या मुक्तिशुक्त्या तदा किम्।।१।।
श्यामसुन्दर शिखण्डशेखर स्मेरहास मुरलीमनोहर।
राधिकारसिक मां कृपानिधे स्वप्रियाचरणकिंकरीं कुरु।।२।।
प्राणनाथवृषभानुनन्दिनी–श्रीमुखाब्ज–रसलोलषट्पद।
राधिकापदतले कृतस्थितिं त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर।।३।।
संविधाय दशने तृणं विभो प्रार्थये व्रजमहेन्द्रनन्दन।
अस्तु मोहन तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया।।४।।

n

श्रीवृन्दावनाय नमः।

श्रीवृन्दावनाष्टकम्

न योगिसद्धिर्न ममास्तु मोक्षो, वैकुण्ठलोकेऽपि न पार्षदत्वम्।
प्रेमापि न स्यादिति चेत्तरां तु, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।१।।
तार्णं जनुर्यत्र विधिर्ययाचे, सद्भक्तचूड़ामणिरुद्धवोऽपि।
वीक्ष्यैव माधुर्यधूरां तदस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।२।।
किं ते कृतं हन्ततपः क्षितीति, गोप्योऽपि भूमे स्तुवते रस कीर्तिम्।
येनैव कृष्णांघ्रिपदांकितेऽस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।३।।

यदि योगसिद्धि मुझे प्राप्त न हो तो इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है, यदि मेरी मुक्ति न हो तो इससे भी मेरी हानि नहीं है, यदि वैकुण्ठलोकमें मुझे पार्षदभाव न मिले तो भी मेरी कोई क्षति नहीं है, और यदि भगवद्विषयक विशाल प्रेम भी मेरे हृदयमें न हो तो भी मेरा निवास तो श्रीवृन्दावनमें ही होता रहे।।१।।

जिस वृन्दावनके माधुर्यकी विशालताको देखकर, जगद्गुरु ब्रह्मा एवं श्रेष्ठभक्तोंके चूड़ामणि उद्धवने भी, जिस वृन्दावनमें तृणसम्बन्धी जन्मकी याचना की थी, अतः मेरा निवास तो इस वृन्दावनमें ही होता रहे।।२।।

रासलीलामें श्रीकृष्णके अन्तर्हित हो जानेपर, प्रेमकी पताका–रूप–गोपियोंने भी "किं ते कृतं क्षिति! तपो" भा. १०/३०/१० अर्थात् हे पृथ्वीदेवि! तुमने ऐसा कौनसा अपूर्व तप किया है कि, जिससे तुम वृन्दावनमें श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शरूप उत्सवसे पुलकित रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो रही हो, इत्यादि रूपसे भूमिके यशकी स्तुति जिस ध्येयसे की थी, उसी ध्येयसे मेरा नित्यनिवास तो श्रीकृष्णचरणचिह्नोंसे अंकति इस वृन्दावनमें ही होता रहे।।३।।

गोपांगनालंपटतैव यत्र, यस्यां रसः पूर्णतमत्वमाप।
यतो रसो वै स इति श्रुतिस्त-न्ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।४।।
भाण्डीर – गोवर्धन – रासपीठै – स्त्रीसीमके योजन – पंचकेन।
मिते विभुत्वादमितेऽपि चास्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।५।।
यत्राधिपत्यं वृषभानुपुत्र्या, येनोदयेत् प्रेमसुखं जनानाम्।
यस्मिन्ममाशा बलवत्यतोऽस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।६।।
यस्मिन् महारासविलासलीला, न प्राप यां श्रीरपि सा तपोभिः।
तत्रोल्लसन्मंजु-निकुंजपुंजे, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।७।।

गोपाङ्गनाओंकी प्रेममयी आसक्ति ही जिसमें प्रधान है एवं प्रेममयी जिस आसक्तिमें ही रसको परिपूर्णता मिली है, क्योंकि "निश्चितरूपसे रसके मूर्तिमान स्वरूप तो रसिकशेखर वे नन्दनन्दन ही हैं" इस भावको करनेवाली 'रसो वै स' इत्यादि रूपवाली श्रुति भी जिसमें प्रमाण है; अतः मेरा निवास तो उस वृन्दावनमें ही होता रहे।।४।।

मेरा नित्यनिवास तो इस वृन्दावनमें ही होता रहे कि—जो भाण्डीरवट, गोवर्धन एवं रासपीठ इन तीन विशिष्टस्थलोंके कारण, तीन सीमावाला है एवं व्यापक होनेके कारण अपरिमित होकर भी जो पाँच योजनसे परिमित है।।५।।

जिस वृन्दावनमें श्रीवृषभानुनन्दिनीका आधिपत्य है एवं जिस वृन्दावनके द्वारा भक्तजनमात्रमें भगवद्सम्बन्धी प्रेमसुख प्रकट हो सकता है तथा जिस वृन्दावनमें मेरी बलवती आशा है, अतः मेरा नित्यनिवास तो इस वृन्दावनमें ही होता रहे।।६।।

महारासविलासकी जिस लीलाको नारायणपत्नी लक्ष्मीदेवी, अनेक तपस्याओंके द्वारा भी नहीं प्राप्त कर पाईं, वह महारासविलासलीला जिस वृन्दावनमें नित्य ही होती रहती है; अतः मेरा नित्यनिवास तो शोभायमान एवं मनोहर निकुञ्जपुञ्जसे युक्त उस वृन्दावनमें ही होता

रहे।।७।।

सदा रुरु–न्यंकुमुखा विशंकं, खेलन्ति कूजन्ति पिकालिकीराः।
शिखण्डिनो यत्र नटन्ति तस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः।।८।।
वृन्दावनस्याष्टकमेतदुच्चैः, पठन्ति ये निश्चलबुद्धयस्ते।
वृन्दावनेशांघ्रि–सरोजसेवां, साक्षाल्लभन्ते जनुषोऽन्त एव।।९।।
(श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्ति ठाकुर विरचितं)

जिस वृन्दावनमें रुरु (काला मृग), न्यंकु (अनेक सींगोवाला मृग) आदि अनेक मृग, निःशंक खेलते रहते हैं एवं कोयल–भ्रमर–तोता आदि अनेक पक्षी जिसमें गूँजते रहते हैं एवं मयूरगण जिसमें नाचते रहते हैं, उस वृन्दावनमें ही मेरा नित्यनिवास होता रहे।।८।।

निश्चलबुद्धिवाले जो व्यक्ति वृन्दावनके इस अष्टकका ऊँचे–स्वरसे भावपूर्वक पाठ करते हैं, वे व्यक्ति वृन्दावनाधीश्वर श्रीराधाकृष्णके पादपद्मोंकी सेवाको, इस जन्मके अन्तमें ही साक्षात् प्राप्त कर लेते हैं। इस अष्टकमें "उपजाति" नामक छन्द है।।९।।

n

श्रीयमुनाष्टकम्

भ्रातुरन्तकस्य पत्तनेऽभिपत्तिहारिणी
प्रेक्षयातिपापिनोऽपि पापसिन्धुतारिणी।
नीरमाधुरीभिरप्यशेषचित्तबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।१।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो अपने भाई यमराजके नगरमें, अर्थात् यमालयमें जानेसे रोकनेवाली हैं एवं अपने दर्शनमात्रसे पापीजनोंको भी पापसिन्धुसे पार लगानेवाली हैं, अपने जलकी माधुरीश्रेणीके द्वारा सभी व्यक्तियोंके चित्तको अपनेमें निबद्ध करनेवाली हैं।।१।।

हारिवारिधारयाभिमेण्डितोरुखाण्डवा
पुण्डरीकमण्डलोद्यदण्डजालिताण्डवा ।
स्नानकामपामरोग्रपापसंपदन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।२।।
शीकराभिमृष्टजन्तु-दुर्विपाकमर्दिनी
नन्दनन्दनान्तरंगभक्तिपूरवर्धिनी ।
तीरसंगमाभिलाषिमंगलानुबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।३।।
द्वीपचक्रवालजुष्टसप्तसिन्धुभेदिनी
श्रीमुकुन्दनिर्मितोरुदिव्यकेलिवेदिनी ।
कान्तिकन्दलीभिरिन्द्रनीलवृन्दनिन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।४।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जिसने अपनी मनोहर जलधाराके द्वारा, इन्द्रके विशाल खाण्डव-नामक वनको विभूषित कर दिया है एवं जिसके ऊपर खिले हुए श्वेतकमलवृन्दोंमें, खञ्जन आदि पक्षियोंके नृत्य होते रहते हैं तथा अपनेमें स्नान करनेकी इच्छावाले पापियोंके भयंकर पापरूपी-सम्पत्तिको जो अन्धी बना देती हैं अर्थात् जो अपनेमें स्नान करनेकी इच्छामात्रसे महापातकोंको विनष्ट करनेवाली हैं।।२।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो अपने जलविन्दुसे स्पर्श करनेवाले प्राणीमात्रके, दुष्कर्मजनित फलको विनष्ट करनेवाली हैं एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गभक्ति, अर्थात् रागानुगाभक्तिकी धाराको बढ़ानेवाली हैं तथा अपने तटपर निवास करनेकी अभिलाषावाले व्यक्तिमात्रका कल्याण करनेवाली हैं।।३।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो सप्तद्वीपमण्डलसे सेवित सातों समुद्रोंका भेदन करनेवाली हैं, अर्थात् सात समुद्रोंको भेदकर, दूसरी नदियोंकी तरह उनमें विलीन न होकर, पार जानेवाली हैं; अतः अचिन्त्य प्रभावशाली हैं एवं जो श्रीकृष्णके द्वारा निर्मित विशाल दिव्यक्रीड़ाओंको जाननेवाली हैं,

माथुरेण मण्डलेन चारुणाभिमण्डिता
प्रेमनद्धवैष्णवाध्ववर्धनाय पण्डिता।
ऊर्मिदोर्विलासपद्मनाभपादवन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।५।।
रम्यतीररंभमाणगोकदम्बभूषिता
दिव्यगन्धभाक्कदम्बपुष्पराजिरूषिता ।
नन्दसूनुभक्तसंघसंगमाभिनन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।६।।

अर्थात् अपना आश्रय करनेवाले भक्तोंके हृदयमें उन दिव्यलीलाओंको प्रकटित करनेवाली हैं तथा अपनी शोभाकी ध्वजाओंके द्वारा इन्द्रनीलमणियोंके समूहका तिरस्कार करनेवाली हैं अर्थात् जिसका जल, इन्द्रनीलमणियोंसे भी सुन्दर श्यामवर्णवाला है। नैयायिक लोग यमुना जलमें शुक्ल रूपकी जो कल्पना करते हैं, वह इस उक्तिसे निरस्त हो जाती हैं; क्योंकि अचिन्त्यवस्तुमें तर्क करना उचित नहीं है। आकाशमें फेंके हुए यमुना जलमें शुक्लताकी उपलब्धि तो सूर्य एवं नक्षत्रोंकी प्रभासे कही जा सकती है।।४।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो परम मनोहर मथुरामण्डलके द्वारा मण्डित हैं एवं प्रेमसे बँधे हुए वैष्णवमार्गको अर्थात् रागानुगी भक्तिसंप्रदायको बढ़ानेके लिए पण्डित (निपुण) हैं, अर्थात् अपनेमें स्नान करनेवाले वैष्णवके हृदयमें, रागानुगाभक्तिको स्वयं प्रगट करनेवाली हैं तथा अपनी तरङ्गरूप भुजाओंके विलासके द्वारा, श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वन्दना करनेवाली हैं।।५।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो परमरमणीय अपने दोनों तीरोंपर रँभाते हुए गोगणसे विभूषित हैं एवं दिव्यगन्धसे युक्त कदंबपुष्पोंकी पंक्तिसे युक्त हैं तथा नन्दलालके भक्तोंके सम्मेलनसे हर्षित होती रहती हैं।।६।।

फुल्लपक्षमल्लिकाक्षहंसलक्षकूजिता
भक्तिविद्धदेवसिद्धकिन्नरालिपूजिता ।
तीरगन्धवाहगन्धजन्मबन्धरन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।७।।
चिद्विलासवारिपूरभूर्भुवःस्वरापिनी
कीर्तितापि दुर्मदोरुपापमर्मतापिनी।
बल्लवेन्द्रनन्दनाङ्गरागभङ्गगन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी।।८।।
तुष्टबुद्धिरष्टकेन निर्मलोर्मिचेष्टितां
त्वामनेन भानुपुत्रि! सर्वदेववेष्टिताम्।
यः स्तवीति वर्धयस्व सर्वपापमोचने
भक्तिपूरमस्य देवि! पुण्डरीकलोचने।।९।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो फूले हुए पंखोंवाले लाखों राजहंसोंके द्वारा शब्दायमान है, अर्थात् जिसके ऊपर लाखों राजहंस गूँजते रहते हैं एवं जो हरिसेवामें आसक्त मनवाले देव-सिद्ध-नर-किन्नर आदिकी पंक्तिसे पूजित हैं तथा अपने तीरपर बहनेवाले वायुके लेशमात्र सम्बन्धसे, प्राणियोंके पुनर्जन्मके बन्धनको काटनेवाली हैं।।७।।

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहें कि, जो चिद्विलास अर्थात् ब्रह्मविद्यामें अपने जलप्रवाहके द्वारा भूः, भुवः, स्वः—नामक तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाली हैं अर्थात् सातों समुद्रोंकी तरह, भू आदि तीनों लोकोंको भेद कर पार जानेवाली हैं एवं अपना नामसंकीर्तन करनेमात्रसे भी दुर्दमनीय विशाल पापोंके मर्मको जलानेवाली हैं तथा व्रजराजकुमार श्रीकृष्णके अङ्गरागको धारण करनेसे परम सुगन्धित हैं।।८।।

हे सूर्यपुत्रि! देवि! यमुने! सन्तुष्ट बुद्धिवाला जो व्यक्ति, इस अष्टकके द्वारा निर्मल तरङ्गरूप चेष्टावाली एवं सभी देवताओंसे परिवेष्ठित स्वरूपवाली तुम्हारी स्तुति करता है, उस पाठक व्यक्तिके भक्तिप्रवाहको तुम, अविद्यापर्यन्त समस्त पापोंसे विमुक्त करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्णमें बढ़ाती रहो। आपके श्रीचरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है।।९।।

श्रीललिताष्टकम्

राधामुकुन्द पदसम्भवघर्मबिन्दु -
निर्मञ्छनोपकरणीकृत देहलक्षाम्।
उत्तुङ्ग-सौहृद-विशेषवशात् प्रगल्भां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।१।।
राका-सुधा-किरण-मण्डल-कान्ति-दण्डि
वक्त्रश्रियं चकित-चारू चमूरूनेत्राम्।
राधाप्रसाधनविधान - कलाप्रसिद्धां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।२।।
लास्योल्लसद्भुजग - शत्रुपतत्रचित्र-
पट्टांशुकाभरण-कञ्चुलिकाञ्चिताङ्गीम्।
गोरोचनारुचि-विगर्हण गौरिमाणं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।३।।

श्रीराधामाधवके श्रीचरणकमलोंकी झलकती हुई पसीनेकी बूँदोंको पोंछनेमें जिनका शरीर नियुक्त है और अत्यन्त उन्नत सौह्लाद-रससे जो सदैव अवश रहती हैं, उन सौन्दर्य, माधुर्य और गांभीर्य आदि विभिन्न गुणोंसे मनोहारिणी प्रगल्भा श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ।।१।।

जिनके श्रीमुखमण्डलकी शोभा पूर्ण चन्द्रमण्डलकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है, जिनके नेत्र चकित हुई हिरणीके नेत्रोंकी भाँति अतिशय चञ्चल हैं और श्रीमती राधिकाकी वेश-रचनाकी कलामें असाधारण निपुणताके कारण सुप्रसिद्ध हैं, उन स्त्रीजनोचित अशेष गुणोंकी खान श्रीललिता देवीको नमस्कार करता हूँ।।२।।

उद्धत नृत्यमें अतिशय उल्लसित मयूरके रङ्ग-बिरङ्गे विचित्र पंखों जैसे सुन्दर रंगीन पट्टवस्त्र, झलकते हुए सीमन्त और हारादि विचित्र रत्नाभूषणों और अति विचित्र कंचुकीसे जिनका श्रीअङ्ग अत्यन्त विभूषित है तथा जो अपनी गौरकान्तिसे गोरोचनाकी कान्तिको भी पराभूत करती हैं, उन असीम गुणवती ललिता देवीको नमस्कार करता हूँ।।३।।

धूर्ते व्रजेन्द्रतनये तनु सुष्ठु-वाम्यं
मा दक्षिणा भव कलंकिनि लाघवाय।
राधे गिरं शृणु हितामिति शिक्षयन्तीं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।४।।
राधामभि-व्रजपतेः कृतमात्मजेन
कूटं मनागपि विलोक्य विलोहिताक्षीम्।
वाग्भङ्गिभिस्तमचिरेण विलज्जयन्तीं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।५।।
वात्सल्य-वृन्दवसतिं पशुपालराज्ञ्याः
सख्यानुशिक्षणकलासु गुरूं सखीनाम्।
राधाबलावरज जीवितनिर्विशेषां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।६।।

हे कलङ्किनि! राधिके! तुम मेरी हितकर बातें सुनो। व्रजेन्द्रनन्दन बड़े धूर्त हैं। उनके प्रति तुम दाक्षिण्य भाव-अनुकूलता प्रकाश मत करो, बल्कि सर्वतोभावेन प्रतिकूलता ही प्रकाश करो, इस प्रकार श्रीमती राधिकाको जो शिक्षा देती हैं, उन समस्त गुणोंकी खान मनोहारिणी श्रीललिता देवीको नमस्कार करता हूँ।।४।।

श्रीमती राधिकाके प्रति श्रीकृष्णकी थोड़ी-सी भी छल-चातुरीपूर्ण बातोंको सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर जो "आप बड़े सत्यवादी हैं, सरल हैं और विशुद्ध प्रणयी हैं"—इत्यादि वचन-भङ्गी द्वारा श्रीकृष्णको लज्जित करती हैं, वे सब गुणोंकी निधान परम मनोहरा ललिताजीको प्रणाम करता हूँ।।५।।

जो गोपराज श्रीनन्द महाराजकी राजमहिषी श्रीमती यशोदा देवीके वात्सल्य रसकी निवासभूमि हैं, सारी सखियोंको सख्य-विषयक शिक्षा देनेवाली गुरु हैं तथा श्रीमती राधिका एवं दाऊजीके छोटे भैया जिनके प्राण-स्वरूप हैं, उन निखिल गुणवती परम मनोहारिणी श्रीललिता देवीको नमस्कार करता हूँ।।६।।

यां कामपि व्रजकुले वृषभानुजायाः
प्रेक्ष्य स्वपक्ष–पदवीमनुरूद्धयमानाम्।
सद्यस्तदिष्ट–घटनेन कृतार्थयन्तीं
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।७।।
राधा – व्रजेन्द्रसुत – संगम – रङ्गचर्यां
वर्यां विनिश्चितवतीमखिलोत्सवेभ्यः।
तां गोकुलप्रियसखी–निकुरम्बमुख्यां
देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि।।८।।
नन्दन्नमुनि ललिता–गुण–लालितानि
पद्यानि यः पठति निर्मल–दृष्टिरष्टौ।
प्रीत्या विकर्षति जनं निजवृन्दमध्ये
तं कीर्त्तिदापति–कुलोज्ज्वल–कल्पवल्ली।।९।।

व्रज भरमें कहीं भी किसी युवतीको देखकर उसमें अपनी प्रियसखी श्रीमती राधिकाके प्रति स्वपक्षकी गन्ध जान लेनेपर, उसी समय उसकी सारी मनोकामनाओंको पूर्णकर उसे कृतार्थ कर देती हैं, उन सर्वगुणसम्पन्न परम मनोहारिणी श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ।।७।।

श्रीराधा–गोविन्दका परस्पर मिलन कराकर उनका मनोविनोद करना ही जिनका सर्वाभीष्ट कार्य है और दूसरे निखिल उत्सवोंसे इस विनोदन कार्यमें ही जिनकी अधिक स्पृहा है, गोकुलकी प्रिय सखियोंमें भी सर्वप्रधाना, सारे गुणोंकी धाम स्वरूपा श्रीललिता देवीको नमस्कार करता हूँ।।८।।

जो व्यक्ति आनन्दित होकर निर्मल अन्तःकरणसे लालित्यगुणोंसे सुललित इस ललिताष्टकका पाठ करता है, कीर्तिदादेवीके पति श्रीवृषभानु महाराजके कुलकी उज्ज्वल कल्पलतास्वरूप श्रीराधिका उनको प्रीतिपूर्वक आकर्षण करके अपनी सखियोंमें गिनती हैं।।९।।

श्रीकृष्णनामाष्टकम्

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला,-द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त।
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं, परितस्त्वां हरिनाम! संश्रयामि।।१।।
जय नामधेय! मुनिवृन्दगेय!, जनरञ्जनाय परमक्षराकृते!।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं, निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि।।२।।

हे हरिनाम! मैं, आपका सर्वतोभावसे आश्रय ग्रहण करता हूँ, क्योंकि आपका महत्त्व विचित्र है। देखो, समस्त श्रुतियोंकी मुकुटमणिरूप उपनिषद्स्वरूप रत्नोंकी मालाकी चमचमाती हुई कान्तिके द्वारा, आपके चरणकमलोंके अन्तभागकी अर्थात् नखोंकी आरती उतारी जाती है और मुक्तमुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं। तात्पर्य—सर्वोपनिषदोंके पुरुषार्थरूपसे प्रतिपाद्य एवं मुक्तमुनिकुलसेव्य आप ही हैं। श्रुतिस्मृति प्रमाणं यथा—"सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति", "एतत् साम गायन्नास्ते", "निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्", "एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्। योगिनां नृप! निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।।" इत्यादि। योगिनां—भगवद्-योगभाजां मुक्तानामित्यर्थः।।१।।

यदि कहें कि, पापोंसे आक्रान्त तेरे जैसेको अपना आश्रय कैसे दे दूँगा? तब कहते हैं—

हे मुनियोंके द्वारा गायन करने योग्य एवं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिए ही, अक्षरोंकी आकृति धारण करनेवाले हरिनाम! आपकी जय हो, अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे अथवा अपने उत्कर्षको प्रकट करें। प्रभो! वह उत्कर्ष यह है कि, आप तो अनादरपूर्वक अर्थात् सांकेत्य परिहासादिके रूपसे, किंचित् उच्चारित होनेपर भी, लिङ्गदेहपर्यन्त समस्त भयङ्कर पापसमूहको समूल नष्ट कर देते हैं। अतः मुझे भी अपनी शरणागति अवश्य प्रदान करेंगे तथा अपने प्रभावका स्मरण करके, मुझको भी पवित्र कर दीजिए; क्योंकि मैं, आपके यशका प्रचारक हूँ, यह भावार्थ है। श्रुतिस्मृति प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११/५/१२ तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद त्र तस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे।।" भा. ६/२/१४ "सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।" ह. भ.

यदाभासोऽप्युद्यन्कवलितभवध्वान्तविभवो
दृशं तत्त्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नामतरणे!
कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति?।।३।।

यद्ब्रह्मसाक्षात्कृतिनिष्ठयापि, विनाशमायाति विना न भोगैः।
अपैति नाम! स्फुरणेन तत्ते, प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः।।४।।

वि. ११/३९३ परिहासोपहासाद्यै-र्विष्णोर्नाम गृणन्ति ये। कृतार्थास्तेऽपि मनुजास्तेभ्योऽपीह नमो नमः।।" ह. भ. वि. ११/३२४ प्रमादादपि संस्पृष्टो यथाऽनलकणोदहेत्। तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्।।" "सकल-निगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम् इति स्मरणाच्च चिदात्मकाक्षराकारं नाम। यथा नामिनः कृष्णस्य चिद्रूपस्य हंसशूकरादिवपुश्चिद्रूपमेव तद्वत्"।।२।।

नामाभास, केवल पापोंको ही जलाकर निवृत्त नहीं होता; अपितु, अपने वाच्य श्रीकृष्ण आदि स्वरूपमें भक्तिको भी प्रकाशित करता है, यह कहते हैं—

हे भगवन्नामरूप सूर्य! इस संसारमें, कौन प्रवीण पण्डितजन, आपकी असमोर्ध्व महिमाको, यथार्थरूपेण कहनेमें समर्थ हैं? अर्थात् कोई भी नहीं। क्योंकि आपका आभासमात्र भी प्रकट होकर, संसारमें अज्ञानरूप अन्धकारके वैभवको, कवलित (ग्रास) कर लेता है और तत्त्वदृष्टिसे विहीन व्यक्तियोंके लिए, श्रीहरिभक्ति देनेवाली दृष्टि प्रदान करता है।।३।।

अब निष्ठापूर्वक जपा हुआ नाम—भागेके द्वारा ही विनाश्य प्रारब्धकर्मको, भोगके बिना ही, नष्ट कर देता है। इस भावको कहते हैं—

हे नाम भगवन्! जो प्रारब्धकर्म, भोगोंके बिना, ब्रह्मकी अविच्छिन्न तैलधारावत् की गई साक्षात्कारकी निष्ठाके द्वारा भी, विनष्ट नहीं हो पाता; वह प्रारब्धकर्म, आपके स्फूर्तिमात्रसे अर्थात् भक्तोंकी जिह्वापर स्फुरण होनेमात्रसे दूर भाग जाता है, इस बातको वेद उच्चस्वरसे कहते हैं, अर्थात् ब्रह्मविद्याके साक्षात्कारसे, संचित एवं क्रियमाण कर्मोंका नाश तो हो जाता है; किन्तु फल देनेके लिए

अघदमनयशोदानन्दनौ! नन्दसूनो!
कमलनयन - गोपीचन्द्र - वृन्दावनेन्द्राः!
प्रणतकरुण - कृष्णावित्यनेकस्वरूपे
त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय।।५।।
वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम! स्वरूपद्वयं
पूर्वस्मात् परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे-
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति।।६।।

प्रवृत्त पुण्य-पापरूप प्रारब्धकर्मका नाश तो भोगसे ही होता है, ब्रह्मविद्यासे नहीं। परन्तु वह प्रारब्धकर्म भी, नामोच्चारणमात्रसे विनष्ट हो जाता है, इसमें वेद प्रमाण हैं। यथा—"स एवा सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः, उदेति ह वै सर्वपाप्मभ्यो य एवं वेद उदिति तस्य नाम" वह सब पापोंसे छूट गया और वह जीव ही, सब पापोंसे छुटकारा पाता है, जो भगवान्‌के 'उत्' ऐसे नामको जानता है। "भगवन्नामोपासनया सर्व पापापगमोक्तेः प्रारब्धस्याप्यगमः स्पष्टः। इत्थमभिप्रेत्य शाट्यायनिनः पठन्ति—"तस्य पुत्रादायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् इति कौषीतकिनश्च। तत्सुकृत-दुष्कृते विधुनुते, तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपन्त्यप्रिया दुष्कृतम् इति।" एवमाह भगवान् सूत्रकारः—"अतोन्यापि ह्येकेषामुभयोः इति। अस्यार्थः एकेषां नामैकान्तिनां परमानुरागिणां विनैव भोगात् प्रारब्ध्योः सुकृत-दुष्कृतयोरश्लेषो भवतीति स्वीकार्यम्। हि यस्मात्तस्य तावदेव चिरमित्यादिकायाः प्रारब्ध भोगेन नाश्यमिति वदन्त्या श्रुतेरन्या तस्य पुत्रादायमित्यादिका तदर्थिका श्रुतिरस्ति इति"।।४।।

अब भक्तोंको विचित्र आनन्द देनेके लिए, अनेक रूपसे प्रकट होनेके कारण, ये नाम-भगवान् विशेष दयालु हैं, इस भावसे कहते हैं—

"हे नाम भगवन्! पूर्वोक्त रूपसे अतर्क्य महिमावाले; आपमें मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे। आपके अनेक स्वरूप इस प्रकारके हैं—"हे अघदमन! हे यशोदानन्दन! हे नन्दसूनो! हे कमलनयन! हे गोपीचन्द्र! हे वृन्दावनेन्द्र! हे प्रणतकरुण! हे कृष्ण! इत्यादि"।।५।।

सूदिताश्रितजनार्तिराशये, रम्यचिद्घन-सुखस्वरूपिणे।
नाम! गोकुलमहोत्सवाय ते, कृष्ण! पूर्णवपुषे नमो नमः।।७।।

आपकी अतिशय दयालुता प्रसिद्ध है; अतः आपका ही आश्रय लेता हूँ, इस भावसे कहते हैं—

हे नाम! आपके वाच्य एवं वाचकरूपसे दो स्वरूप, संसारमें प्रकट होते हैं, अर्थात् 'वाच्य' शब्दसे सच्चिदानन्द-विग्रहवाले परमात्मा लिए जाते हैं और 'वाचक' शब्दसे श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि वर्णसमूहरूप नाम कहलाते हैं। इन दोनोंके मध्यमें पहले वाच्यकी अपेक्षा, दूसरे वाचक श्रीकृष्ण आदि नाम-स्वरूपवाले आपको हम अधिक दयालु जानते हैं; क्योंकि जो प्राणी, आपके वाच्य-स्वरूपके प्रति अनेक अपराध कर चुका है, वह भी, वाचक-स्वरूप आपकी जिह्वाके स्पर्शमात्रसे, उपासना करके, सदैव आनन्दसमुद्रमें गोता लगाता रहता है। अत्र विषये स्मृति प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११/३७५ "मम नामानि लोकेस्मिन् श्रद्धया यस्तु कीर्तयेत्। तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशयः।। नामनामिनोरभेदस्तु—ह. भ. वि. ११/५०३ नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः। पूर्णः शुद्धो नित्युमुक्तोऽभिन्नत्वानामनामिनोः, इत्यत्र प्रतिपादितः"।।६।।

बत्तीस प्रकारके सेवापराध तो, नामके द्वारा नष्ट हो सकते हैं, पर साधुनिन्दा आदि दश-नामापराध, किससे नष्ट होंगे? इसके उत्तरमें, वे भी नामके द्वारा ही नष्ट होंगे, इस भावसे कहते हैं—

"हे आश्रितोंके पीड़ासमूहको नष्ट करनेवाले, रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले, गोकुलके महोत्सवस्वरूप एवं व्यापक स्वरूपवाले हे कृष्णनाम! पूर्वोक्त गुणविशिष्ट आपके प्रति मेरा बारम्बार नमस्कार है।" यहाँ पर पीड़ा समूहसे सभी अपराधोंका ग्रहण है, अर्थात् नामापराधीकी नामापराधरूप सब पीड़ाओंको नाम ही नष्ट करता है। अत्र विषये स्मृति प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११/५२५-५२६ "जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथंचन। सदा संकीर्तयन् नाम तदेक-शरणो भवेत्।। नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्। अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि यत्।। अपराधविमुक्तो हि नाम्नि यत्नं समाचरेत्" इति।।७।।

नारदवीणोज्जीवन!,　　सुधोर्मि-निर्यास-माधुरीपूर!।
त्वं कृष्णनाम! कामं, स्फुर मे रसेन रसेन सदा।।८।।
(श्रीमद्रूप गोस्वामिविरचित)

हे नारदकी वीणाको सचेत करनेवाले! हे अमृतमय तरङ्गोंके सारके समान मधुरताके समूह! हे कृष्णनाम! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर, सदैव स्फूर्ति पाते रहें। इस प्रकारकी प्रार्थना श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धमें भी है। नामकी कृपाके बिना, जिह्वा नाम लेनेमें समर्थ नहीं है, यही तात्पर्यार्थ है। मुख्यतया श्रीकृष्णनाम स्फुरणे प्रार्थना प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११/४९८ "नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं मे परंतप!" इति।।८।।

श्रीवृन्दादेव्यष्टकम्

गांगेय-चांपेय-तडिद्विनिन्दि,-रोचिः-प्रवाह-स्नपितात्मवृन्दे!।
बन्धूक-बन्धु-द्युति-दिव्यवासो, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।१।।
बिंबाधरोदित्वर-मन्दहास्य,-नासाग्र -मुक्ताद्युति-दीपितास्ये!।
विचित्र-रत्नाभरणश्रियाढ्ये!, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।२।।

बन्धूक एवं बन्धु-नामक पुष्पोंकी-सी कान्तिवाले दिव्य वस्त्रोंको धारण करनेवाली देवि! वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको नमस्कार करते हैं; क्योंकि तुम सुवर्ण, चमेलीके पुष्प, एवं बिजलीकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाली अपनी कान्तिके प्रवाहके द्वारा अपने परिकरको सराबोर कर देनेवाली हो!।।१।।

रत्नमय आभरणोंकी विचित्र शोभासे युक्त हे वृन्दे! देवि! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको नमस्कार करते हैं; क्योंकि तुम्हारा श्रीमुख बिम्बफलके समान रक्तवर्णवाले ओष्ठोंसे निकलनेवाले मन्दहास्यसे युक्त है एवं नासिकाके अग्रभागमें विराजमान मोतीकी कान्तिसे प्रकाशमान है।।२।।

समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ श्री,-कृष्णस्य वृन्दावन-धन्य-धाम्नि।
दत्ताधिकारे! वृषभानु-पुत्र्या, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।३।।
त्वदाज्ञया पल्लव-पुष्प-भृङ्ग,-मृगादिभिर्माधव-केलिकुञ्जाः।
मध्यादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।४।।
त्वदीय-दूत्येन निकुञ्ज-यूनो,-रत्युत्कयोःकेलि-विलास-सिद्धिः।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद्, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।५।।
रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दा,-वने त्वदीशांघ्रि-सरोज-सेवा।
लभ्या च पुंसां कृपाया तवैव, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।६।।
त्वं कीर्त्यसे सात्वत-तंत्रविद्भि,-र्लीलाभिधाना किल कृष्ण-शक्तिः।
तवैव मूर्तिस्तुलसी नृलोके, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।७।।

हे वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको नमस्कार करते हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके परमधन्य उस वृन्दावनधाममें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाने तुमको अधिकार दिया है कि जो धाम समस्त वैकुण्ठोंका भी शिरोमणि है।।३।।

हे वृन्दे! हम तुम्हारे चरणाविन्दोंको प्रणाम करते हैं; क्योंकि तुम्हारी आज्ञाके द्वारा पत्र-पुष्प-भृङ्ग-एवं मृग आदि तथा वसन्त आदि समस्त ऋतुओंके द्वारा अलंकृत किये जानेवाले श्रीकृष्णके क्रीड़ानिकुञ्ज सदैव शोभा पाते रहते हैं।।४।।

हे वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको बारंबार प्रणाम करते हैं; क्योंकि रतिक्रीड़ाके उत्सुक निकुञ्जके युवक श्रीराधा-कृष्णकी क्रीड़ाविलासकी सिद्धि तुम्हारे दूतभावसे ही सिद्ध हो पाती है, अतः तुम्हारे सौभाग्यको कौन वर्णन कर सकता है?।।५।।

हे वृन्दे! हम तुम्हारे चरणोंको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं; क्योंकि श्रीरासलीलाके दर्शनकी अभिलाषा, वृन्दावनमें वास एवं तुम्हारे स्वामी श्रीराधाकृष्णके चरणारविन्दोंकी सेवा मनुष्योंको तुम्हारी कृपासे ही उपलब्ध होती है।।६।।

हे वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको नमस्कार करते हैं; क्योंकि वैष्णवसिद्धान्तके विज्ञजन तुमको श्रीकृष्णकी लीलाशक्तिके नामसे पुकारते हैं एवं मनुष्यलोकमें वृक्षरूपवाली तुलसीदेवी भी तुम्हारी ही मूर्ति मानी जाती है।।७।।

भक्त्या विहीना अपराध-लक्षैः, क्षिप्ताश्च कामादि-तरंग-मध्ये।
कृपामयि! त्वां शरणं प्रपन्ना, वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्।।८।।
वृन्दाष्टकं यः शृणुयात् पठेद् वा, वृन्दावनाधीश-पदाब्ज-भृङ्गः।
स प्राप्य वृन्दावन-नित्यवासं, तत् प्रेमसेवां लभते कृतार्थः।।९।।

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचित—स्तवामृतलहर्यां
श्रीवृन्दादेव्यष्टकं संपूर्णम्।

—★—

हे कृपामयी देवि! वृन्दे! हम तुम्हारे चरणारविन्दोंको भावपूर्वक प्रणाम करते हैं; क्योंकि हम सब श्रीहरिभक्तिसे विहीन हैं, अतएव लाखों प्रकारके अपराधोंसे काम आदि दुस्तर समुद्रोंकी तरंगोंमें फेंके जा रहे हैं, अतएव आपकी शरणमें आ रहे हैं।।८।।

n

नित्यलीला-प्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी 'आचार्य केशरी' की उपदेशावली

१—श्रीगुरुपादपद्मकी विश्रम्भ सेवा द्वारा ही भगवद्भक्ति प्राप्त होती है।

२—श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी निष्कपट सेवा ही गुरु-सेवा है।

३—कीर्त्तनाख्या भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण भक्ति-अङ्ग है।

४—कीर्तनके माध्यमसे ही भक्तिके दूसरे अङ्ग साधित होते हैं।

५—कुसङ्गका त्याग ही निर्जन है अर्थात् साधु-वैष्णव-सङ्गमें भजन ही निर्जन-भजनका तात्पर्य है।

६—सर्वदा हरिकथाका प्रचार ही हरि-कीर्तन है।

७—सर्वदा हरिकथा कहना या श्रीहरि-सेवामय कथामें निमग्न रहना ही मौनावस्था है।

८—श्रीरूपानुगत्यमें गौर-भजन ही श्रीराधाकृष्णका विप्रलम्भ भजन है।

९—सद्गुरुका चरणाश्रय करके हरि सेवा करनी चाहिए।

१०—तन-मन-वचन द्वारा किसीको उद्वेग नहीं देना चाहिए।

११—सत्पथमें रहकर अर्थोपार्जन द्वारा जीविका निर्वाह करना चाहिए।

१२—श्रीभगवान एक हैं, अनेक नहीं हैं; यह सदैव स्मरण रखो।

१३—ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान हैं, वे सर्वशक्तिमान एवं सर्वावतारी हैं। उनकी सेवा करना ही प्राणिमात्रका प्रधान कर्तव्य है; अन्य सभी कार्य आनुसङ्गिक या गौण हैं।

१४—जो लोग भगवानका कोई आकार नहीं मानते वे नास्तिक हैं, उनका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिए।

१५—श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति ही जीवोंका चरम-प्रयोजन है।

१६—अन्याभिलाषिता शून्य, ज्ञान-कर्मादि द्वारा अनाच्छादित कृष्णप्रीतिमूला तन-मन-वचन-सर्वेन्द्रियों द्वारा आनुकूल्यमयी कृष्णसेवा ही हमारा प्राण है।

n

नित्यलीला प्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'श्रीलप्रभुपाद' की उपदेशावली

१—'परं विजयते श्रीकृष्ण-संकीर्तनम्'—यही श्रीगौड़ीय मठके एकमात्र उपास्य हैं।

२—विषय विग्रह श्रीकृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, तदतिरिक्त सभी उनके भोग्य हैं।

३—जो हरि-भजन नहीं करते, वे सभी निर्बोध और आत्मघाती हैं।

४—श्रीहरिनाम-ग्रहण और भगवत् साक्षात्कार दोनों एक ही बात हैं।

५—जो पञ्च-मिश्रित धर्मोंका पालन करते हैं, वे भगवान्‌की सेवा नहीं कर सकते।

६—मुद्रण-यन्त्रके स्थापन, भक्ति-ग्रन्थोंके प्रचार और नाम-हाटके प्रचार द्वारा ही श्रीमायापुरकी (श्रीचैतन्य महाप्रभुका जन्मस्थान) प्रकृत सेवा होगी।

७—हम सत्कर्मी, कुकर्मी अथवा ज्ञानी-अज्ञानी नहीं हैं; हम तो अकैतव हरिजनोंके पाद-त्राण वाहक, "कीर्त्तनीयः सदा हरिः" मन्त्रमें दीक्षित हैं।

८—केवल आचार-रहित प्रचार कर्म-अङ्गके अन्तर्गत है। परस्वभावकी निंदा न कर आत्म-संशोधन करना चाहिए; यही मेरा उपदेश है।

९—माथुर-विरह-कातर ब्रजवासियोंकी सेवा करना ही हमारा परम धर्म है।

१०—यदि हम श्रेय-पथ चाहते हैं, तो असंख्य जनमतका परित्याग करके भी श्रौतवाणीका ही श्रवण करना चाहिए।

११—पशु, पक्षी, कीट, पतंग प्रभृति लक्ष-लक्ष योनियोंमें रहना अच्छा है, तथापि कपटताका आश्रय करना उचित नहीं, निष्कपट व्यक्तिका मङ्गल होता है।

१२—सरलताका नामान्तर ही वैष्णवता है। परमहंस वैष्णवोंके दास सरल होते हैं; इसलिए वे ही सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं।

१३—जीवोंकी विपरीत रुचिको परिवर्त्तन करना ही सर्वश्रेष्ठ दयालुताका परिचय है। महामायाके दुर्गके बीचसे यदि एक जीवकी भी रक्षा कर सको, तो अनन्त कोटि अस्पतालोंके निर्माणकी अपेक्षा उसमें अनन्तगुना परोपकारका कार्य होगा।

१४—हम इस जगतमें कोई काठ-पत्थरके कारीगर होने नहीं आए हैं; हम तो श्रीचैतन्यदेवकी वाणीके वाहक मात्र हैं।

१५—हम इस जगतमें अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन करते-करते हमारा देहपात होनेसे ही इस देह धारणकी सार्थकता है।

१६—श्रीचैतन्यदेवके मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीरूप गोस्वामीके पादपद्मकी धूल ही हमारे जीवनकी एकमात्र आकांक्षाकी वस्तु है।

१७—हमारा "निरपेक्ष सत्य" भाषण अन्य मनुष्योंको अप्रीतिकर होगा, इस भयसे यदि सत्य कथनका परित्याग करूँ तो मेरा

श्रौत-पथका परित्याग कर अश्रौत पथका ग्रहण करना हो गया, मैं अवैदिक नास्तिक हो गया—सत्यस्वरूप भगवान्में मेरा विश्वास नहीं रहा।

१८—निर्गुण वस्तुका दर्शन करनेके लिए कोई भी दूसरा पथ नहीं—एकमात्र कानको छोड़कर।

१९—जहाँ हरिकथा होती है, वहीं तीर्थ है।

२०—कीर्तनके माध्यमसे श्रवण होता है और स्मरणका सुयोग प्राप्त होता है। उसी समय अष्टकालीय-लीला-सेवाकी अनुभूति सम्भव है।

२१—श्रीकृष्ण-नामोच्चारणको ही भक्ति समझना चाहिए।

२२—जो प्रतिदिन लक्ष हरिनाम नहीं ग्रहण करते, उनकी दी हुई कोई वस्तु भगवान ग्रहण नहीं करते।

२३—अपराधोंसे दूर रह कर श्रीहरिनाम ग्रहणकी इच्छा कर निरन्तर हरिनाम करते रहनेसे अपराध दूर होंगे और शुद्ध हरिनाम उदित होंगे।

२४—श्रीनाम करते समय जड़-चिन्ताएँ उदित होनेपर श्रीनाम-ग्रहणमें शिथिलता नहीं करनी चाहिए। श्रीनाम-ग्रहणके गौण फलस्वरूप वृथा जड़-चिन्ताएँ क्रमशः दूर हो जाएँगी; इसके लिए घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त आग्रहके साथ तन-मन-वचनसे श्रीनामकी सेवा करनेसे ही श्रीनामी प्रभु अपना परम मङ्गलमय अप्राकृत स्वरूपका दर्शन कराते हैं। श्रीनाम ग्रहण करते-करते अनर्थ दूर होनेपर श्रीनामसे ही रूप, गुण, लीलाकी अपने आप ही स्फूर्ति होती है।

श्रीराधास्तोत्रम्

गृहे राधा वने राधा पृष्ठे पुरः स्थिता।
यत्र यत्र स्थिता राधा राधैवाराध्यते मया।।१।।

जिह्वा राधा श्रुतौ राधा राधा नेत्रे हृदि स्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया।।२।।

पूजा राधा जपो राधा राधिका चाभिवन्दने।
स्मृतौ राधा शिरो राधा राधैवाराध्यते मया।।३।।

गाने राधा गुणे राधा राधिका भोजने गतौ।
रात्रौ राधा दिवा राधा राधैवाराध्यते मया।।४।।

माधुर्ये मधुरा राधा महत्त्वे राधिका गुरुः।
सौन्दर्ये सुन्दरी राधा राधैवाराध्यते मया।।५।।

राधा रससुधासिन्धु राधा सौभाग्यमञ्जरी।
राधा व्रजाङ्गनामुख्या राधैवाराध्यते मया।।६।।

राधा पद्मानना पद्मा पद्मोद्भवसुपूजिता।
पद्मेविवेचिता राधा राधैवाराध्यते मया।।७।।

राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया।।८।।

जिह्वाग्रे राधिकानाम नेत्राग्रे राधिकातनुः।
कर्णे च राधिका-कीर्तिर्मानसे राधिका सदा।।९।।

कृष्णेन पठितं स्तोत्रं राधिका-प्रीतये परम्।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं राधाकृष्णान्तिगो भवेत्।।१०।।

आराधितमनाः कृष्णो राधाराधितमानसः।
कृष्णाकृष्टमना राधा राधाकृष्णेति यः पठेत्।।११।।

(ब्रह्माण्ड पुराण)

n